

# ऋग्वेद अङ्क २३-२४ शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
८४६	२	कीलं	कीलम्	८५०	८	यामेपु	यामेपु
"	"	शीलं	शीलम्	"	११	क्यसु	कसुः
"	५	सम्बन्धिनम्	सम्बन्धि	"	१४	असुधम्	असुधम्
"	६	व्युद्ध	व्युद्ध	८६३	१८	चुच्छ्वो	चुच्छ्वो
८४८	८	हस्तेपु	हस्तेपु	८६४	८	अचुच्छ्व	अचुच्छ्व
"	१४	हस्तेपु	हस्तेपु	८६५	१४	सम+	सम+
८५०	१६	प्रवः	प्रवः	८६६	०	हितियायै	हितियायै
८५१	८	यमोनाम	यमोनाम	"	"	पठ्ठी	पठ्ठी
८५२	१६	मावतम्	मावतम्	८६७	४	शीघ्रम्	शीघ्रम्
"	"	सम्बन्धी	सम्बन्धि	"	१६	मुच्छ्व	मुच्छ्व
"	"	सम्बन्धि	सम्बन्धी	८६८	१५	सारी	सारी
८५३	४	होभूत्	होभूत्	"	१८	मू	मू
"	१८	देवा देवाजाता	देवा देवाजाता	८७०	१४	धारयय	धारयय
८५४	२	वावा	वावा	८७१	०	"	"
"	४	धुनय	धुनय	८७२	५	दिवः	दिवः
"	८	वे मरी	वे मरी	"	१३	श्यम्	श्यम्
८५५	६	धुनय	धुनय	"	२०	सुम्ना	सुम्ना
८५६	५	मनुष्य	मनुष्यः	८७३	११	अमृतः	अमृतः

## अ० मं० १ सू० ४२ मं० १

पूषा देवता घोरपुत्रः कण्व ऋषिर्गायत्रीछन्दः ८।८।८

संपूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो

नपात् । सद्वादेव प्रणस्पुः ॥१॥

सम्	सम् +	-
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव
अध्वनः	मार्गात्	रस्ते से
तिर	सम् + तिर, पारं कुरु (अन्तर्मावितण्यर्थः)	पार कर
वि	वि + तिर, अपनय (अन्तर्मावितण्यर्थः)	दूर कर
अंहः	पाप्मानम्	पाप को
विमुचः	विमुञ्चति सृष्टि काले स्वसकाशात् सर्वाः प्रजा इति विमुक् तस्य अ जापतेः (अ० ६।१५।१)	प्रजापति का

नपात्	पुत्र	पुत्र
सद्व	प्र+सद्व प्रगच्छ (सद्वर्तिर्गतिप्रदानिधं २।१४)	आगे चल
देव	हे देव	हे देव
प्र	+ प्र	—
नः	अस्माकम्	हमारे
पुरः	अग्रे	आगे

संस्कृतार्थः ।

हे पुत्र (अस्मान्) मार्गात्पारं करु हे प्रजापतेः  
पुत्र पाप्मानमपनय, हे देव ! अस्माकमग्रेऽग्रेगच्छ ॥  
भाषार्थः ।

हे पूया देव हमको रस्ते से पार लंघाओ हे प्रजा  
पति के पुत्र पाप को दूर करो हे देव हमारे आगे  
आगे चलो ॥ १ ॥

विनियोग—कठिन दूर के रस्ते में या भय के रस्ते में बलवत्  
हुमा इस सूक्त को जपे या इस से होम करे । (भा० सू० सू० १।१०)  
पूषा पृथिवी को अ० न से घोषण करने और भवसी क्रियाओं  
से भयों को दूर करने से सूर्य्य दधता का हो आमान्तर है (दक्षी  
बृह० दधता २। ६३, पुष्ट्यन्धित्तिपोषयति प्रबुधन् रश्मिभिस्त्वम, )  
यह पथिका को मार्ग दिखाने वाले अष्ट धन को प्राप्त करनेवाले  
पशुओं के रक्षक और मनुष्य के परम हितकारी हैं । इस सूक्त  
को भय युक्त मार्ग में जाने से भय दूर हो जाता है ।

पपादेवता गायत्रीछन्द ॥ ८८८८

यो॒नः॑ पू॒षन् न॒घो॒व॒को॒ दुः॒शे॒व॒ आ॒दि॒

दे॒श॒ति॑ । अ॒प॒स्म॒तं प॒थो॒ज॒हि॑ ॥२॥

यः	यः	जो
नः	अस्मान्	हमको
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव
अघः	घातकः	मारने वाला
वृकः	स्तेन (निघ० ३।२४)	चोर
दुःशेवः	दुर्वृत्तः (वर्णव्यत्ययेनशकारः)	दुराचारी
{ आदिदे॒ शति	आज्ञापयति	आज्ञा करता है
अप	अप +	-
स्म	(परणः)	-

तम्	नम्	उसको
पथः	मार्गात्	रस्ते से
जहि	अप जहि अपाकुरु	हटाओ

संस्कृतार्थः ।

हे पृषन् यो घातकः स्तेनो दुर्वृत्तः (वा) अभ्याना  
ज्ञापयति तं मार्गादपाकुरु ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे पृषा देव जो घातक (वा) चोर दुराचारी हमको  
आज्ञा करता है उसको रस्ते से हटाओ ॥ २ ॥

पृषा देवता गायत्रीछन्दः । ८। ८ ८॥

अप॒त्यं॑ परि॒पन्थि॑नं । मु॒षी॒वाण॑ ह॒र

श्चि॒तम् । दू॒रम॑धि॒स्रुते॑रज ॥ ३ ॥

अप	आ +	-
त्यम्	तम्	उसका

परिऽपन्थि	मार्गप्रतिवन्धकम्	रस्ता रोकने
नम्	(निघ० ३।२४)	वाले को
मुषीवाणम्	तस्करम्	डाकू को
	(निघ० ३।२४)	
हुरऽचि-	कौटिल्यस्य	कुटिलता इकट्ठे
तर्	सञ्चेतारम्	करने वाले को
	(हुरा-कौटिल्येचिष् चयने)	
दूरम्	दूरम्	दूर
अधि	अधि+	-
सुतेः	अधि+सुतेः	मार्ग से
अज	मार्गात् (आ० को०)	
	अप+अज, अपनय	हटाओ

संस्कृतार्थः ।

तं मार्गप्रतिवन्धकं कौटिल्यस्य सञ्चेतारं तस्करं  
मार्गाद्दूरमपनय ॥ ३ ॥

भाषार्थः

रस्ता रोकने वाले कुटिलता को इकट्ठे करने  
वाले उस डाकू को (हमारे) रस्ते से दूर हटाओ ॥ ३ ॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

तव॑तस्य॑द्वया॑वि॒नोऽघ॑शंस॑स्य॒

कस्य॑चित् । प॒दाभि॑ति॒ष्ठत॑पु॒षिम् । ४ ।

तवम्

त्वम्

तू

तस्य

तस्य

उसकी

द्वया॑वि॒नः

अनृतवादिनः

(द्वय विनिप्रत्यय /

झूठे की

{ अघ॑ऽशं-

पाप प्रशंसकस्य

पाप की प्रशंसा करने वाले के

सस्य

कस्य

कस्य+चित्

किसी के

चित्

+चित्

पदा

पादेन

पैर से

अभि

अभि+

तिष्ठ

अभि+तिष्ठ, मर्दय

कुचलो

तपुषिम्

क्रोधम् (निघ० २।१३)

क्रोध को

संस्कृतार्थः ।

(हे पूषन्) त्वं तस्य कस्यचिदनृतवादिनः पाप  
प्रशंसकस्य क्रोधं पादेन मर्दय ॥४॥

भाषार्थः ।

(हे पूषा देव) आप उस झूठे पापकी प्रशंसा करने  
वाले के क्रोधको पैरोंसे कुचलो चाहे वह कोई हो ॥४॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः । ८।८।८॥

आतत्तदस्त्रमन्तुमः पूषन्नवीवृणी

महे । येनपितृनचोदयः ॥५॥

आ	आ+	-
तत्	तत्	उसको
ते	त्वदीयम्	आपकी
दस्त्र	हेउग्र (भा०को०)	हे भयानक
मन्तुमः	हे ज्ञानवान् (मन माने-तुप्रत्य योमतुपच)	हे ज्ञानवान
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव



अवः	रक्षणम्	रक्षा को
वृणीमहे	आ+वृणीमहे	सब ओर से
येन	सर्वतः प्रार्थयामहे	प्रार्थना करते हैं
पितृन्	येन	जिस से
अचोदयः	पितृन्	पितरों को
	प्रेरितवानसि	आपने प्रेरण किया

मंस्थुनार्थः ।

हे उग्र ! ज्ञानवान् पूषन् स्वदीय तद्रक्षणं सर्वतः  
प्रार्थयामहे येन (रक्षणेन त्वमस्मन्-) पितृन्प्रेरित  
वानसि ॥ ५ ॥

मापार्थः ।

हे ज्ञानवाले भयानक पूषादेव (हम) आपकी  
उस रक्षाको सब ओर से प्रार्थना करते हैं जिस(रक्षा)  
से आपने हमारे बड़ों को प्रेरित किया था ॥५॥

ऋषियों की प्रार्थनाएं ऐसी हैं जो इस काल में भी हमारे  
लिए ऐसी ही उपयुक्त हैं जैसे पूर्वकाल में थीं इसीलिए ऋषि मंत्रों  
को द्रष्टा कहे गए हैं उन्होंने मृत और भविष्यत् सब अवस्थाओं  
को परमात्मा को प्रेरण से देख कर मंत्रों का उच्चारण किया है ॥

सामर्थ्य ज्ञाति की इस पतित अवस्था में यह प्रार्थना अत्यन्त  
उपयोगी है ॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः । ८। ८। ८।

अधानोविप्रवसौभग हिरण्यवा-

शीमत्तमं । धनानिसुषणाक्लधि ॥ ६ ॥

अध	अनन्तरम् (धर्ष-यस्य)	फिर
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
विप्रवऽसौ-	हेकृत्स्नसौभाग्य	हे पूर्णसौभाग्य से
भग	युक्त	युक्त
हिरण्यवा-	हेअतिशयेन सुव-	हेसब से अधिक
शीमत्तम	र्णायुधवन्	सुवर्ण के शस्त्र- वाले
धनानि	धनानि	धनों को
सुऽसना	सुप्रापानि (पण-सम्पत्को- खलू प्रत्यया)	सुख से प्राप्त होने वाले
क्लधि	कुरु	करो

संस्कृतार्थः ।

हे कृत्स्नसौभाग्ययुक्त अतिशयेन सुवर्णायुधवन्  
(पूषन्) अनन्तरं धनान्यस्मभ्यं सुप्रापानि कुरु ॥६॥

भाषार्थः ।

हे सम्पूर्ण सौभाग्य से युक्त, सब से अधिक  
सोने के शस्त्र वाले (पूषादेव) फिर हमारे लिये धनों  
को सुख से प्राप्त होने योग्य करो ॥६॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः । टि० टि० ॥

अति॑नः॒ संप्र॑चतो॒ नय॑ सु॒गानः॑ सु॒-

पथा॑क्षुण् । पू॒षन्नि॒हक्र॑तुं वि॒दः । ७।

अति	अति +	-
नः	अस्मान्	हमको
संप्रचतः	प्राप्नुवतः (पसृज-गती)	पहुंचते वालों को
नय	अति+नय,	परे लेजाओ
सुगानः	सुखेन-गन्तुं श- क्येन	सुख से गमन योग्य से
नः	अस्मान्	हमको

सुपथा	शोभन मार्गेण	सुन्दर मार्ग से
कुरु	कुरु- (करि करणे)	करो
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इह	इह	यहां
क्रतुम्	चलम्	चलको
विदः	लभस्व	प्राप्त करो

सस्कृतार्थः।

(ब्राधनाय) प्राप्नुवतः (शत्रून्) अतिक्रम्यास्मान्तय,  
अस्मान्सुखेन गन्तुशक्येन शोभन मार्गेण (गन्तून्)  
कुरु हे पूषन् इह। (अस्मद्रक्षणाय) चलं लभस्व ॥७॥

भाषार्थः।

(केश देने के लिए) प्राप्त होते हुए (शत्रुओं के)  
पार हमको ले जाओ, हमको सुख से जाने योग्य  
सुन्दर मार्ग से (चलनेवाले) करो हे पूषादेव यहां पर  
(हमारी रक्षा के लिये) चल को प्राप्त करो ॥ ७ ॥

देवता मनुष्य की स्तुति और पूजा से चल को प्राप्त करते  
हैं। और उस चल द्वारा उस के शत्रुओं का नाश और उसकी  
रक्षा करते हैं।

पूपादेवता गायत्री छन्दः । ८ । ८ । ८ ।

अभि॒सूय॑व॒सं॒नय॑ न॒न॑व॒ज्वारो॑

अ॒ध॒व॒ने । पू॒ष॒न्नि॒ह॒क्रतु॑वि॒दः । ८ ।

अभि	अभि+	
सूयवसम्	सुशस्यम् (वेशम्)	सुन्दर खेती वाले
नय	अभि+नय	(वेश) को
न	न	की ओर लेजाओ
नवज्वारः	नूतनः सन्तापः (उत्तर रोगे-यम्)	नहीं
अधवने	मार्गाय	नवीन सन्ताप
पूषन्	हे पूषन्	मार्ग के लिए
इह	इह	हे पूषा देव
क्रतुम्	बलम्	यहां पर
विदः	लभस्व	बल को
		प्राप्त करो

संस्कृतार्थः ।

अस्मान् सुशस्यम् (देशम्) प्रति नय मार्गाय  
नूतनः सन्तापो न भवतु हे पूषन्निह (अस्मद्रक्षणाय)  
बलं लभस्व ॥ ८ ॥

मापार्थः

हमें सुन्दर खेती में युक्त (देश) की ओर ले  
जाओ (हमें) मार्ग के लिये नवीन सन्ताप न हो  
हे पूषादेव यहां पर (हमारी रक्षा के लिए) बल को  
प्राप्त करो ॥ ८ ॥

वृत्ति के लिए दूसरे देश में जाने वाला इस मंत्रसे प्रार्थना कर  
सकता है । ऐसा करने से उस को मार्ग में जाने के लिये फलेश नहीं  
होता और पूषा देव उसको ऐसे देश की ओर प्रेरण करते हैं, जो  
सुन्दर खेती से युक्त हो ॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः ॥ ८॥ ८॥ ८॥

शुग्धि॑पू॒र्धिप्रय॑सिच शु॒शीहि॑प्रा-

स्य॑दर॑म् । पू॒षन्नि॑ह॒क्रतु॑विदः । ९ ।

शुग्धि	शक्तोभव	समर्थ हो
पू॒र्धि	पूरय	भरो

प्र.	प्र+	-
यंसि	प्र+यंसि प्रयच्छ (यम्-लोडर्थे-लट)	दो
च	च	और
शिशीहि	तीक्ष्णी कुरु (भर्यात्तेजस्विनः कुरु शी-तनूकरणे)	तेजस्वी घनाओ
प्राप्ति	पूरय (प्रा-पूरणे)	भरो
उदरम्	उदरम्	उदरको
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इह	इह	यहां पर
क्रातुम्	वलम्	बल को
विदः	लभस्व	प्राप्त करो

संस्कृतार्थः ।

शक्तोभव (अस्मान् धनादिभिः) पूरय (अभीष्टम्)  
च प्रयच्छ अस्मान् तेजस्विनः कुरु ( अस्मदीयम् )  
उदरं पूरय हे पूषन्निह (वलम्) लभस्व ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

आप समर्थ हों (हम को धनादि से) पूर्ण करें और (अभीष्ट) दें हम को तेजस्वी बनावें (हमारे) उदर को भरें हे पूषादेव आप यहां पर बल को प्राप्त करें ॥ ९ ॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः।८।८।८॥

नपूषणं मेधामसि सूक्तैरभिगु-  
णीमसि । वसूनि दस्ममीमहे । १० ।

न	न	नहीं
पूषणम्	पूषणम्	पूषा को
१ मेधामसि	निन्दामः	निन्दा करते हैं
२ सुउक्तैः	सूक्तैः	सूक्तों से
अभि	अभि +	-
गुणीमसि	अभि+गुणीमसि गु शब्देऽदिरूपमिवार.	सर्ववस्तुति करते
वसूनि	धनानि	धनों को



दस्मम्	अद्भुतम्	अद्भुत से
हूँ महे	याचामहे	मांगते हैं

संस्कृतार्थः ।

पूषणम् (देवम्) ननिन्दामः (किन्तु) सूक्तैरभि  
स्तुमः, तमद्भुतम् (देवम्) धनानि याचामहे ॥१०॥

भाषार्थः ।

हम पूषादेव की निन्दा नहीं करते (किन्तु) सूक्तों  
से सर्वत्र स्तुति करते हैं हम अद्भुत ( देव से ) धन  
मांगते हैं ॥ १० ॥

(१) यदि हम किसी विपत्ति में प्रस्त हैं तो उसके लिए हम  
पूषा देव को नहीं कोसते किन्तु सब अवस्थामों में उनकी स्तुति  
ही करते हैं । विपत्ति का कारण हमारी असावधानी या किसी  
नियम को भङ्ग करना है पूषादेव तो सदा कृपा ही करते हैं और  
हमारी स्तुति के योग्य हैं ॥

(२) सूक्त का अर्थ सुन्दर वाणी है और हिन्दी में इसका  
पर्याय भजन है ॥

॥ इति द्वाचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

अ० मं० १ सू० ४३ मं०१।

रुद्रो देवता घोरपुत्रः कण्वः कपिर्गायत्रीच्छन्दः ॥८॥८॥८॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीह्लुष्टमाय त-

व्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे । १।

कत्	किम्	कथा
रुद्राय	रुद्राय	रुद्र के लिये
प्रचेतसे	प्रकृष्ट ज्ञान	बड़े बुद्धिमान
मीह्लुः ५-	युक्ताय	के लिये
तमाय	संकृतमाय	अत्यन्त घरसाने
	(मिष्ट सेवने फवस्तु तमप)	वाले के लिये
तव्यसे	अतिशयेन बलवते	महा बली के
वोचेम	कथयाम	हम कहें
शम् ५ तमम्	अतिशयेन सुख-	अत्यन्त सुख के
हृदे	करम्	करने वाले को
	हृदयाय	हृदय के लिये

ऋ० मं०१ सू० ४३ मं०२ ( १०६६ )

संस्कृतार्थः ।

प्रकृष्टज्ञानयुक्ताय (अभीष्टानाम्) सेकृतमायाऽति  
शयेन बलवते रुद्राय हृदयाय शान्तमं किम् (वचनम्)  
कथयाम ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हम बडे बुद्धिमान् ( अभीष्टों के ) अत्यन्त  
वरसाने वाले महा बली रुद्रके लिये हृदय को अत्यन्त  
सुख देने वाले किस (वचन) को कहें ॥१॥

त्रिनिधोग-सय रुद्र यहाँ में इस सूक्त और ऋ० १।११४,  
२।३३, ७।४६ से चारों दिशाओं का उपस्थान किया जात है  
(आ०गृ० सू०४।८।२३)

रुद्र परमात्मा की यह शक्ति है जिस का विकाश बिजली  
की गज्ज के रूप में होता है (देखो बृह० देवता० २।१४ "अरोदी  
वन्तरिक्षेयद् विद्युद्वृष्टिं वदन्मृणाम्") यह मनुष्यों के लिए सर्पों  
को और रोग के नाश करने वाली औषधियों को देने वाले हैं और  
मर्यकर होनेपर भी अपने आर्च्य उपासकों के लिये अत्यन्त मृदु हैं ।

रुद्रो देवता गायत्रीचञ्चन्दः ८।८।८॥

यथा॑नो॒अदि॑तिः॒कर॒ तप॑स्वेनृ॒भ्यो  
यथा॑गर्वे । यथा॑तो॒काय॑रु॒द्रिय॑म् ।२।

यथा	यथा	जिससे
नः	अस्माकम्	हमारे
अदितिः	अदिनिः	अदिति
करत्	कुर्यात्	करे
पशवे	पशवे (पशु-गुणामात्रेण)	पशुके लिये
पुरुषेभ्यः	पुरुषेभ्यः	पुरुषों के लिये
यथा	यथा	जिससे
गवे	गवे	गो के लिये
यथा	यथा	जिस से
पुत्राय	पुत्राय	पुत्र के लिये
रुद्रियम्	रुद्रसम्बन्धि (भेषजम्)	रुद्र वाले(भेषज) को

संस्कृतार्थः ।

यथाऽदितिरस्माकं पशवे पुरुषेभ्यः (च) यथा  
(अस्माकम्) गवे यथा (अस्माकम्) पुत्राय (च) रुद्र  
सम्बन्धि (भेषजम्) कुर्यात् ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

जिस से अदिति हमारे पशुओं के लिए (और) पुरुषों के लिए जिससे (हमारी) गौओं के लिए (और) जिस से (हमारे) पुत्रों के लिए रुद्र सम्बन्धि (भेषज को) करे ॥२॥

इस मंत्र को पिछले के साथ मिला कर पढ़ने से अर्थ पूरा होता है ।

यहां पर अदिति ऐतिलङ्ग शब्द है और सब प्रकार से अर्पित होकर अन्तरिक्ष को घेर कर ठहरने से देखो । बृह० देवत० २ । ४६) रुद्र का ही नामान्तर है ।

मित्रावरुणौ देवते गायत्रीच्छन्दः ८।८।८।

यथानोमित्रोवरुणौ यथारुद्रश्चि  
कतति । यथाविश्वसजोषसः ॥३॥

यथा	यथा	जिस से
नः	अस्मान्	हमको
मित्रः	मित्रः	मित्र
वरुणः	वरुणः	वरुण

यथा	यथा	जिससे
रुद्रः	रुद्रः	रुद्र
चिकेतति	जानीयात् (कित-ज्ञानेलेटिरूपम्)	जाने
यथा	यथा	जिससे
विप्रवे	सर्वे	सब
सऽजोयसः	समानप्रीतयः (जुषी-यसुन्)	समान प्रीति वाले

संस्कृतार्थः ।

यथाऽस्मान् मित्रोवरुणो यथा (अस्मान्) रुद्रो-  
जानीयात् यथा (अस्मान्) समानप्रीनयस्तसर्वे देवाः  
(जानीयुः) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

जिस से हम को मित्र (और) वरुण जिस से  
(हम को) रुद्र देवता जानें जिस से (हम को) समान  
प्रीति वाले सब देवता (जानें) ॥ ३ ॥

इस का अर्थ जो प्रथम मन्त्र के साथ मिलकर पूरा होता है  
"समान प्रीति वाले" अर्थात् सब देवता एक मन होकर हमें अपना  
जानें ॥

रुद्रो देवता गायत्रीचन्द्रः । ८ । ८ । ८ ।

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाप

भेषजम् । तच्छ्रियोः सुमनमीमहे । ४ ।

{ गाथऽप- तिम्	स्तुतिपालकम्	स्तुति के पाल- क को
मेधऽपतिम्	यज्ञपतिम्	यज्ञ के स्वामी को
रुद्रम्	रुद्रम्	रुद्र को
{ जलापऽभे- षजम्	सुमनसोपधो- पेनम्	सुमन रूपोंपधिसे युक्तको
तत्	तत्	उस को
शम्ऽयोः	रंमदासनम् (द्विती कर्मकां) (नित० ४११)	रंम दासन को
सुमनम्	सुमन् (नित० ३११)	सुम को

ई॒म॒हे । या॒चाम॒हे । हम मा॑ंगते हैं ।

संस्कृतार्थः ।

(वयम्) स्तुति पालकं यज्ञपतिं सुखरूपौषधोपेतं  
रुद्रं तद्रोगशमनं सुखम् (च) याचामहे ॥४॥

भावार्थः ।

(हम) स्तुति के पालक यज्ञ के स्वामी सुख रूप  
औषधि से युक्त रुद्र से उस रोगशान्ति (और) सुख  
को मांगते हैं ॥४॥

"उस रोग शान्ति को" जिस का हमने पहले भी अनुभव  
किया हुआ है ॥

रुद्रो देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

यः शु॒क्र॒इ॒व॒सू॒र्यो॑ हि॒र॒ण्य॒मि॒व॒-  
रो॒च॒ते । श्रे॒ष्ठो॑ दे॒वाना॑व॒सुः ।५॥

यः	यः	जो
शु॒क्रः॑ इ॒व	शु॒क्र इ॒व	शु॒क्रकी॑ न्याई
सू॒र्यः॑	सू॒र्यः (इ॒व)	सू॒र्य (की॑ न्याई)



{ हिरण्यम्	सुवर्णमिव	सुवर्ण की न्याई
{ इव		
रोचते	दीप्यते	दीप्तिमान है
श्रेष्ठः	प्रशस्यतरः	श्रेष्ठ
देवानाम्	देवानाम् [मध्ये]	देवताओं के (बीचमें)
वसुः	धनवान् (भा० को०)	धनवान्

संस्कृतार्थः ।

यः शुक्र इव सूर्यः (इव) हिरण्यमिव दीप्यते देवानाम् (मध्ये) प्रशस्यतरो धनवान् (चाऽस्ति) ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

जो शुक्र की न्याई सूर्य (की न्याई) सुवर्ण की न्याई दीप्तिमान है (और) देवताओं के (बीचमें) श्रेष्ठ (और) धनवान् है ॥ ५ ॥

“शुक्र” शुक्र तारे से तात्पर्य हो सकता है । क्योंकि यह सप्त तारों में अधिक प्रकाशवाला है ॥

रुद्रो देवता गायत्रीच्छन्दः । ८। ८। ८।

शंनः करत्यवते स मेषाय मेष्ये ।

नभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

शम्-	सान्त्वनम्	शान्ति को
नः	अस्माकम्	हमारे
करति	कुर्यात् (इहम्-यत् येनश्च लिङ्गं लट्)	करे
अवत	अश्वाय	घोड़े के ताई
सुऽगम्	कुशलम्	कल्याण को
मेषाय	मेषाय	मेंढे के ताई
मेऽयै	मेऽयै	मेड़ के ताई
नृऽभ्यः	पुरुषेभ्यः	पुरुषों के ताई
नारिऽभ्यः	स्त्रीभ्यः	स्त्रियों के ताई
गवे	गवे	गौ के ताई

संस्कृतार्थः ।

( रुद्रः ) अस्माकमश्वाय सान्त्वनं कुर्यात् मेषाय  
मेऽयै नृभ्योनारीभ्यो गवे ( च ) कुशलम् कुर्यात् ॥६॥

भाषार्थः।

(रुद्र) हमारे घोड़े के लिये शान्ति करें (हमारे) मेंढे भेड़ पुरुष स्त्रियों (और) गौ के लिये कल्याण को करें ॥ ६ ॥

विनियोग—सोमयाग के भग्नि मास्त शस्त्र में यह मन्त्र पढ़ा जाता है (भा०धौ० सू० ५१२-०१६१)

मेंढे भेड़ भेड़ों को घर में रख कर उनसे छान उठाना आर्य के लिए निन्दनीय नहीं समझा जाना चाहिये जैसे आज कल समझा जाता है

सोमो देवना गायत्रीच्छन्दः । ८। ८। ८॥

अस्मे सोम श्रियं मधि निधेहि शतं

स्य नृणाम् । सहि श्रवस्तु विनृणाम् । ७।

अस्मे०	अस्मासु	हम में
सोम	हे सोम	हे सोम
श्रियम्	श्रियम्	पेड़वर्ष्य को
अधि	अधि+	—
नि	नि+	—
धेहि	अधि+नि+धेहि (स्थापय)	स्थापन करो

शतस्य	शतस्य	सौ के
नृणाम्	नृणाम्	मनुष्यों के
महि	महन्	बहुत
अवः	यशः	यश को
{ तुविऽनृ कणम् }	प्रभूतबल युक्तम्	बहुत बल से युक्त को

संस्तुतार्थः ।

हे सोम मनुष्याणां शतस्य श्रियमस्मासु स्थापय  
(तथाच) प्रभूतबल युक्तं महद्यशः (अस्मासु स्थापय) ॥७॥

भाषार्थः ।

हे सोम सौ मनुष्यों के ऐश्वर्य को हम में  
स्थापन करो ( और ) बहुत बल से युक्त बड़े यश को  
( हम में स्थापन करो ) ॥७॥

सोम देवता के वर्णन के लिये देखो पृष्ठ ३१२ ।

सोमो देवता गायत्रीछन्दः । ८। ८। ८।

मानः सोमपरिबाधो माऽरातयो-  
जुहुरन्त । धानद्रन्दीवाजैभज ॥८॥

सा	मा	मन
नः	अस्मान्	हमको
{ सोमऽपरि वाधः	सोमयागस्य प्रति बन्धकाः	सोम यज्ञ के रोकने वाले
सा	मा	मत
अरातयः	शत्रवः	शत्रु
जुहुवन्त	हिंसन्तु (य मसख कर्णे-लोडयें-छड़)	पीड़ा दें
आ	आ+	-
नः	अस्मान्	हमको
बुन्दो०	हे सोम	हे सोम
वाजे	बले	बल मैं
भज	आ+भज (भागितः कुरु)	भागी बनाओ

संस्कृतार्थः ।  
सोमयागस्य प्रतिबन्धका अस्मान्माहिंसन्तु,  
शत्रयो मा ( हिंसन्तु ) हे सोम! बलेऽस्मान् भागितः  
कुरु ॥ ८ ॥

सोम याग के रोकने वाले हम को पीड़ा न दें शत्रु  
हम को पीड़ा न दें हे सोम धलमें हमको भागो  
घनाओ ॥ ८ ॥

सोमो देवता अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८॥

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धा-  
मन्नृतस्य । मूर्धानाभासीमवेन आ-  
भूषन्तीः सोमवेदः ॥ ९ ॥

याः	याः	जो
ते	तत्र	तेरी
प्रजाः	प्रजाः	प्रजा
अमृतस्य	मरण रहितस्य	मृत्यु रहित की
परस्मिन्	उत्तमे	उत्तम में
धामन्	स्थाने (सप्तम्यालुक्)	स्थान में

ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत कै
मूर्धा	शिरस्थानीयः	(सृष्टि का) मस्तक
नाभा	नाभि स्थानीयः	(सृष्टि की) नाभि
सोम	हे सोम	हे सोम
वेनः	कामयस्व वेन-कान्तौ-लेटिरूपम्	प्यार करो
{ आभूष- न्तीः	आभूषन्तीः (भूष-मलद्वारेकमपि दातृ प्रत्ययः)	सब ओर सजानी हुई को
सोम	हे सोम	हे सोम
वेदः	जानीहि (विद्-प्रानेलेटिरूपम्)	जानो

संस्कृतार्थः ।

हे सोम ! ऋतस्योत्तमेस्थाने (वर्तमानस्य) मरण  
रहितस्य तव याः प्रजाः ( सन्ति ) ( जगतः ) शिरः  
स्थानीयो नाभिस्थानीयः ( च त्वम् ) ( ताः प्रजाः )  
कामयस्व, हे सोम ! आभूषन्तीः ( ताः प्रजाः ) जानीहि ।

मापार्थः ।

हे सोम ! ऋत के उत्तम स्थान में ( रहने वाले )  
मरण रहित आपकी जो प्रजा (ह) उनको ( जगत् )  
के मस्तक और (जगत्) के केन्द्र आप प्यार करें, हे  
सोम, सब ओर सजाती हुई (उन प्रजाओं को आप)  
जानें ॥ ९ ॥

(१) सोम की आर्य प्रजा सब ओर अर्थात् पूजा के स्थान को,  
घर को गलियों को, नगर को सजाती हुई देखी जाएं उनके किसी  
काम में फूहड़पन न प्रतीत हो ॥

इति त्रयद्वचत्वारिंशंसूक्तम् ।

अ० मं० १ सू० ४४ मं० १

अग्न्यद्विना उपोदेवताः कण्व पुत्रः प्रस्कण्वऋषि  
वृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८॥

अग्ने॒विव॑स्वद॒षस॑ शि॒च॒ रा॒धो-

अम॑त्य॒ । आ॒दा॒शु॒षे॑ जा॒तवे॑दो॒वहा॑त्व

म॒द्यादे॒वाँ उ॒य॒र्बुधः॑ । १॥



अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
विवस्वत्	तेजो युक्तम् (विवस्तेजः)	तेज युक्त को
उपसः	उपसः	उपा से
चित्रम्	नानाविधम्	अनेक प्रकार वाले को
राधः	धनम्	धन को
अमर्त्य	हे मरण रहित	हे मरण रहित
आ	आ+	--
दाशुषे	(हविः) दत्तयते	(हवि) देने वाले के लिये
जातऽवेदः	हेजातानां वेदितः (विद् दानेअसुन्प्रत्ययः)	हे उत्पन्नों के जानने वाले
वह	आ+वह	ले आओ
त्वम्	त्वम्	आप
अद्य	अस्मिन्नन्दने	आज
देवान्	देवान्	देवताओं को

उषःपुधः | उपःकालेप्रबुद्धान् | प्रातःकाल में  
जागने वालों को

संस्कृतार्थः ।

हे मरणरहित जातवेदोऽग्ने त्वमद्य (हविः) दत्तवते  
(यजमानाय) उपसः (सकाशात्) तेजोगुक्तं नाना  
विधं धनमुपःकालेप्रबुद्धान् देवान् (च) आवह ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे मरणरहित, उत्पन्न हुआओं को जाननेवाले आग्ने  
(देव) आप आज (हवि) देने वाले (यजमान) के  
लिए उषा देवता से तेज युक्त नाना प्रकार के धन  
को (और) प्रातःकाल में जागने वाले देवताओं को  
ले आओ ॥ १ ॥

वित्तियोग—प्रातरनुवाक के भाग्येय कशु में यह सूक्त पढ़ा  
जाता है (भा० धी० सू० ४१ ११ । ७)

व्योतिष्टोम में यदि उपःकाल तक पर्याय पूरे न हों तो  
भादिवन शस्त्र के स्थान में यह प्रगाथ (अर्थात् यह और भगला  
मंत्र) पढ़ा जाता है (भा० औ० सू० ६ । ६ । ८)

यह मंत्र पांजपेय यज्ञ में भी पढ़ा जाता है यदि ब्रह्म खोम  
गान न करे (भा० औ० सू० ३० ३१९९)

अग्न्यश्विना उपोदेवताः सतोवृहतीच्छन्दः १२।८।१२।८।

जुष्टोहिदूतोअसिहव्यवाहनो

ऽग्नेरथीरध्वराणाम् । सजूरश्विभ्या

मुषसासुवीर्यं मस्मेधेहिश्रवोवृहत् । २ ।

जुष्टः	प्रियः	प्यारा
हि	खलु	सचमुच
दतः	दूतः	दूत
असि	असि	तू हे
हव्यऽवाह	हविषोवृद्धा	हवि को ले
नः		जाने वाला
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
रथीः	रथस्थानीयः	रथ रूप

अ॒ध॒व॒रा-	य॒ज्ञा॒नाम्	य॒ज्ञों का
या॒म्		
स॒ऽजः	स॒हितः	साथ
अ॒ग्नि॒व॒ऽ-	अ॒श्वि॒भ्याम्	अश्विन् देताओंसे
भ्या॒म्		
उ॒प॒सा	उ॒प॒सा	उपा से
सु॒ऽवी॒र्य॑म्	अ॒ति॒वी॒र्यो॑पि॒तम्	बहुत पराक्रम से युक्त को
अ॒स्मे॒०	अ॒स्मा॒सु (सप्तम्याः शेषादेशः)	हम में
धे॒हि	धा॒रय	धारण कर
अ॒वः	य॒शः	यश को
वृ॒हत्	म॒हत्	महान् को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने (त्वम्) खलु (देवानाम्) प्रियो दूतो

अ० सं०१ सू०४४ मं०३ ( १०८४ )

हविषोत्रोढा यज्ञानां रथस्थानीयः (च)असि(स त्वम्)  
अद्विभ्यामुपसा (च) सहितः-(भूत्वा) अतिवीर्योपेतं  
महद्यशो ऽस्मासु धारय ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि आप सचमुच (देवताओं के) त्रिषु  
दूत हवि के लेजाने वाले (और) यज्ञों के रथ रूप हैं  
(ऐसे आप) अद्वि (देव और) उपा के साथ बहुत  
पराक्रम से युक्त बड़े यश को हम में धारण करें ॥२॥

अग्निर्देवता बृहतीच्छन्दः । ८। ८। १२। ८॥

अद्यादूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुं-  
प्रियम् । धूमकेतुं भाक्षुं जीकं व्युष्टिषु  
यज्ञानामध्वरं श्रियम् । ३।

अद्य	अस्मिन्दिने	आज
दूतम्	दूतम्	दूत को
वृणीमहे	वरणं कर्मः	हम धरते हैं

वसुम्	धनवन्तम् (आ०को०)	धनवान् को
अग्निम्	अग्निम्	अग्निकों
पुरुऽप्रियम्	बहूनां प्रियम्	बहुतों के प्यारे को
धूमऽकेतुम्	धूमरूपध्वजयुक्तम्	धूम रूप ध्वजा वाले को
{ भाऽऽच्छजि कम्	प्रकाशस्यप्रापकम् (भासः प्रकाशस्य ऋजी कः प्रापकस्तम् )	प्रकाश के प्राप्त कराने वाले को
विऽउष्टिषु	उपःकालेषु	प्रातःकालों में
यज्ञानाम्	यज्ञानाम्(मध्ये)	यज्ञों के [बीचमें]
{ अध्वरऽश्रि यम्	यज्ञशोभारूपम्	यज्ञ के शोभा रूपको

संस्कृतार्थः ।

अस्मिन्दिने धनवन्तं बहूनां प्रियं धूमरूपध्वज  
युक्तमुपः कालेषु प्रकाशस्य प्रापकं यज्ञानां (मध्ये)  
यज्ञशोभारूपमग्निं दूत कर्मणे वृणीमहे ॥३॥

भाषार्थः ।

आज हम धनवान्, बहुतों के प्यारे, धूसरूप-  
ध्वजा से युक्त, प्रातःकालों में प्रकाश के प्राप्त कराने  
वाले, यज्ञों के (बीच में) यज्ञ के शोभारूप अग्निदेव  
को दूत कर्म के लिए बरते हैं ॥ ३ ॥

(१) दूत कर्म के लिए बरते हैं । जिससे अग्निदेव हमारी  
स्तुति और पूजा की घाती देयतामा को सुनावें और उनकी प्रस-  
न्नता का हमारे हृदय में मान करावे ।

अग्निदेवता सतोवृहतीच्छन्दः । १२।८।१२।८॥

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जु-

ष्ठं जनायदाशुपे । देवाँश्चच्छाया-  
तवेजातवेदस मग्निमीळे व्युष्टिषु । ४ ।

श्रेष्ठम्	प्रशस्यतमम्	सबसे अच्छे को
यविष्ठम्	युवतमम्	अत्यन्तजवानको
अतिथिम्	अतिथि रूपम्	अतिथि रूपको
सुऽआहुतम्	यः सुखेनाऽऽहूयते तम्	बुलाने पर सहज से आनेवालेको

जुष्टम्	प्रीतम्	प्रसन्न को
जनाय	मनुष्याय	मनुष्य के लिये
दाशुषे	(हविः) दत्तवते	(हविः) देने वाले वं
देवान्	देवान्	लिये देवताओं को
अच्छ	आभिमुख्येन	सामने
यातवे	प्रापयितुम्	प्राप्त कराने को
{ जातऽवेद- सम्	जातानां वेदितारम्	उत्पन्नों को जानने वाले को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
ईळ	स्तौमि	स्तुति करता हूँ
विऽउष्टिषु	उपः कालेषु	प्रातः कालों में

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) श्रेष्ठं युवतमं स्वाहुत मतिथिरूपं (हविः)  
 दत्तवते मनुष्याय प्रीतं जातानां वेदितारमग्निं दे-  
 वानाभिमुख्येन प्रापयितुमुपः कालेषु स्तौमि ॥ ४ ॥



नापार्थः ।

मैं सब से अच्छे अत्यन्त जवान, बुलाने पर सहज से आने वाले, अतिथिरूप, (हवि) देने वाले (भक्त) के लिये प्रसन्नात्मा, उत्पन्न हुआ को जानने वाले अग्नि की, देवताओं को सामने लाने के लिए, प्रातःकालों में स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

अग्निदेवता बृहतीच्छन्दः । ८। ८। १२। ८॥

स्तुतिविषयामित्वामहं विश्वस्या-  
मृतभोजन । अग्नेचातारममृतमिये  
ध्वयजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥

स्तुतिविषया- मि	स्तोष्यामि	स्तुति करूंगा
त्वाम् अहम्	त्वाम् अहम्	आपको मैं

विश्वस्य	सर्वस्य	सब के
अमृत	हे मरण रहित	हे मरण रहित
भोजन	हेपोषक	हे पोषण करने वाले
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
चातारम्	रक्षकम्	रक्षा करने वाले को
अमृतम्	मरण रहितम्	मरण रहित को
मियेध्य	हे यज्ञार्ह	हे पूजने योग्य
यजिष्ठम्	यष्टृतमम्	सब से उत्तम पूजने वाले को
{ हव्यऽवा- हन	हे हविषोवोडः	हे हवि के पहुचाने वाले

संस्कृतार्थः ।

‘हे मरण रहित ! विश्वस्यपोषक ! हविषोवोडः !  
यज्ञार्ह ! अग्ने ! रक्षकं मरणरहितम् ( देवानाम् )  
यष्टृतमं त्वामहंस्तोष्यामि ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे मरणरहित सब के पोषण करने वाले हवि के पहुँचाने वाले पूजने योग्य अग्नि (देव) में रक्षा करने वाले मरणरहित (और देवताओं के) सब से उत्तम पूजने वाले आपकी स्तुति करूँगा ॥५॥

अग्निदेवता सतोवृहतीच्छन्दः ॥१२॥८॥१२॥८॥

सु॒शंसो॑ बो॒धिगु॒णते॑यवि॒ष्ठयं॑ मधु-  
जिह्वाः॑ स्वा॒हुतः॑ । प्र॒स्कण॑वस्यप्रति॒र-  
न्नायु॑र्जी॒वसे॑ नम॒स्यादै॒व्यं ज॑नम् । ६ ।

सु॒शंसः॑	सुष्ठुशंसनीयः (शसु-स्तुती माघेषम्)	सुन्दर स्तुति योग्य
बो॒धि	मनोदेहि (भा०को०) (यध्-लोटि-विकरणस्य दुक्)	ध्यान करो
गु॒णते॑	स्तुवते	स्तुति करने वाले केलिये
यवि॒ष्ठयं॑	हे युवतम	हे अत्यन्त ज- घान

मधुऽजिह्वः	मधुराजिह्वायस्य सः	मीठी जिह्वा- वाला
सुऽआहुतः	यः सुखेनाऽऽहूयते सः	सुखसे बुलाने योग्य
{ प्रस्कणव- स्य	प्रस्कणवस्य	प्रस्कणव के
प्रऽतिरन्	प्रवर्धयन् (प्रतिरतिवर्धनार्थः)	वढ़ाता हुआ
आयुः	आयुः	आयु को
जीवसे	जीवनार्थम्	जीने के लिये
नमस्य	पूजय (मिथं० १३९)	पूजो
दैव्यम्	दैव्यम् +	-
जनम्	दैव्यम् + जनम्	देव समूह को

संस्कृतार्थः ।

हे युवतम (अग्ने)! सुशंसनीयो मधुजिह्वस्वाहुतः  
(त्वम्) स्तुवते (यजमानाय) मनोदेहि (अपिच) प्रस्क-  
णवस्य जीवनार्थमायुः प्रवर्धयन् देवसमूहम्पूजय ॥६॥

ऋ० मं० १ सू० ४४ मं० ७ ( १०९२ )

भाषार्थः ।

हे अत्यन्त जवान (अग्निदेव, सुन्दर स्तुतियोग्य, मीठी जिह्वा वाले (और) सुख से बुलाने योग्य (आप) स्तुति करने वाले ( भक्त के लिये) ध्यान दें (और मुझ) प्ररूप के जीवन निमित्त आयु को बढ़ाते हुए देव समूह को पूजें ॥ ६ ॥

(१) प्ररूप, पण्यक्रपि के पुत्र और इस सूक्त के द्रष्टा हैं ।  
द्वितीय पाद में ऋषि अपने लिये प्रार्थना करते हुए प्रनीत होते हैं  
परन्तु यह उपलक्षण निमित्त है—प्रत्येक मनुष्य इस मंत्र में अपना नाम डाल कर उपासना कर सफल है ॥

अग्निदेवता बृहतीच्छन्दः ८।८।१२।८ ॥

होतारं विप्रवदसं संहितवाविशं  
इन्धत । स आवह पुरुहूत प्रचेतसो  
ऽग्ने देवा इह द्रवत् । ७।

होतारम् | होतारम् . . . | होता को २

विश्ववे-	विश्वानि वेदांसि	सम्पूर्ण धनों के
दसम्	धनानियस्यतम् (वेदसतिधनमाम निघं०२।१०)	स्वामी को
सम्	सम्यक्	भलौ प्रकार
हि	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
विशः	प्रजाः	प्रजा
इधते	दीपयन्ति	प्रदीप्त करते हैं
सः	सः	वह
आ	आ+	—
बह	आ+बह	लाओ
परुच्छत	हे बहुभिराहूत	हे बहुतों से बु- लाए गए
प्रचेतसः	प्रकृष्टज्ञानयु- क्तान्	बहुत ज्ञान वालों को
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि

देवान्	देवान्	देवताओं को
ब्रह्म	अत्र	यहां
द्रवत्	क्षिप्रम् (निर्वन्तर, १५)	शीघ्र

संस्कृतार्थः ।

सम्पूर्ण धनस्वामिनं होतारं त्वां प्रजाससम्यग्दीपयन्ति खलु, हे बहुभिराहूताऽग्ने सः(त्वम्) प्रकृष्टज्ञान युक्तान् देवान् क्षिप्रमत्राऽऽब्रह्म ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

सम्पूर्ण धनों के स्वामी और (होता) आप को सब मुच प्रजा अच्छे प्रकार से प्रदीपन करती हैं : हे-बहुतों से बुलाए गए अग्नि (देव) वह आप बहुत ज्ञान वाले देवताओं को यहां पर शीघ्र लावें ॥

यह देवता कौन है । इस के लिये देखो अगला मन्त्र ।

अग्निदेवता सतो बृहती च्छन्दः १२।८।१२।८।

स॒वि॒ता॒र॒मु॒ष॒स॒म॒श्रि॒व॒ना॒भ॒ग॒म॒ग्नि॒नं  
व्यु॒ष्टि॒प्र॒क्ष॒पः । क॒ण॒वा॒स॒स्त्वा॒सु॒त-

सोमासद्वन्धते हव्यवाहस्वध्वरात्।

सवितारम्	सवितारम्	सविताको
उपसम्	उपसम्	उपाको
अश्विना	अश्विनौ (सुपासुल गितिचिमच्छेडी)	अश्विदेवताओं को
भगम्	भगम्	भग को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
विऽउष्टिषु	उपःकालेषु	प्रातःकालों में
क्षपः	रात्रिषु (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	रात्रियों में
कण्वाः	कण्वाः	कण्व वंशी
त्वा	त्वाम्	आप को
सतऽसो- मासः	सुतः सोमोयैस्ते (पूर्ण निपातः)	सोम निचोड़ा है जिन्होंने ऐसे



दून्धते	दीपयन्ति	प्रदीप्त करते हैं
हव्यऽवा- हम्	हव्यं वहतीतिह- व्यवाट् तम्	हवि के पहुंचाने वाले को
सुऽअध्वर	हेशोभनयागयुक्त	हे सुन्दर यज्ञ से युक्त

संस्कृतार्थः ।

हे शोभनयागयुक्त [अग्ने] उपःकालेषु रात्रिषु  
[ च ] सवितारमुपसमश्चिनोभगमग्निम् (चाऽऽवह)  
अभिषुतसोमाःकण्वा हविषःप्रापकंत्वादीपयन्ति ॥८॥

भाषार्थः

हे सुन्दर यज्ञ से युक्त (अग्निदेव) प्रातःकालों  
में और रात्रियों में सविता को उपा को अश्वि  
(देवों) को भग को ( और ) अग्नि को लाओ, सोम  
निचोड़े हुए कण्ववंशी हवि के पहुंचाने वाले आप  
को प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

(१) जैसा छोटे मंत्र की व्याख्या में लिखा है । वैसे ही यहां  
भी समझना चाहिये । प्रत्येक मनुष्य कण्व के स्थान में अपने कुल  
के प्रवर्तक का नाम डाल कर उपासना कर सकता है ॥

अग्निर्देवतावृहतीच्छन्दः । ८। ८। १२। ८॥

पति॑ ह्य॒ध्वरा॑णा म॒ग्ने॑ दू॒तो॒ वि॒शाम॑

अ॒सि॑ । उ॒ष॒र्व॒ध॒आ॒व॒ह॒सो॒म॒पी॒त॒ये॒ दे॒वा

अ॒द्य॒स्व॒ह॒शः॑ । ९॥

पतिः	पति.	स्वामी
हि	खलु	सचमुच
अध्वराणाम्	यज्ञानाम्	यज्ञों का
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
दूतः	दूत.	दूत
विशाम्	प्रजानाम्	प्रजाओं का
असि	असि	तू है
उषः॒ऽवु॒धः॑	उष.कालेप्रयुक्तान्	प्रातःकाल में जा- गने वालों को

आ	आ +	
वह	आ + वह	लाओ
सोमऽपीतये	सोमपानार्थम्	सोम पीने के लिये
देवान्	देवान्	देवताओं को
अद्य	अस्मिन्दिने	आज
स्वऽदृशः	ज्योतिर्दर्शिनः	प्रकाश के देखने वालों को

संस्कारार्थः ।

हे अग्ने ! (त्वम्) खलु यज्ञानांपतिः प्रजानांदूतः  
( च ) असि उपःकाले प्रबुद्धान्ज्योतिर्दर्शिनो देवानय  
सोमपानार्थमावह ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि (देव) आप सचमुच यज्ञों के स्वामी (और)  
प्रजाओं के दूत हैं प्रातःकाल में जागने वाले प्रकाश  
को देखने वाले देवताओं को आज सोम पीने के लिये  
लावे ॥ ९ ॥

अग्निर्देवता सतो बृहतीच्छन्दः । १२।८।१२।८।

अग्ने पूर्वा अनुष सो विभाव सो दीदे

य विश्वदर्शतः । असि ग्रामेष्वाविता-

पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः । १०।

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि,
पूर्वाः	अग्नीनाः	गत
अनु	अनु (सूत्य)	पीछे पीछे
उषसः	उपसः	उपाओं को
विभा ऽव सो	विभा ज्योतिस्त देव धनं यस्य तत्सम्बद्धो	हे ज्योति रूप धन वाले
दीदेथ	दीप्तवानसि (दीदेति दलान्दसो दीप्ति कर्मादिभिर्यत्)	प्रदीप्त हुए हो

विप्रवद- शतः	सर्वेदर्शनीयः	सब के दर्शन योग्य
असि	असि	तू है
ग्रामेषु	ग्रामेषु	ग्रामों में
अविता	रक्षकः	रक्षा करने वाला
पुरःहितः	पुरोहितः	पुरोहित
असि	असि	है
यज्ञेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
मानुषः	मनुष्यस्य हित- कारी (हितार्थं यप्)	मनुष्य का हित- कारी

संस्कृतार्थः ।

हे ज्योतीरूप धनवन्नग्ने ! सर्वेदर्शनीयः (त्वम्)  
अतीता उपसोऽनु (सृत्य) दीप्तवानसि मनुष्यस्य  
हितकारी (त्वम्) ग्रामेषु रक्षकोऽसि यज्ञेषु पुरोहितः  
(च) असि ॥ १० ॥

( ११०१ ) ऋ० मं० १ सू० ४४ मं० ११

म। पार्थः ।

हे प्रकाशरूप धन वाले अग्नि(देव) सबके दर्शन योग्य आप गत उपाओं के साथ साथ प्रदीप्त हुए हो, मनुष्य के हितकारी आप ग्रामों में रक्षा करने वाले हो (और) यज्ञों में पुरोहित हो ॥ १० ॥

५ (१) आर्य्य जाति सदा से प्रातः कालों में अग्निदेव को प्रदीप्त करती चली आई है ॥

अग्निदेवता बृहतीच्छन्दः ८।८।१२।८।

नि॒त्वा॒य॒ज्ञ॒स्य॒सा॒ध॒न॒म॒ग्ने॒ही॒ता॒  
र॒मृ॒ति॒व॒ज॒म्।म॒नु॒ष्व॒द्दे॒व॒धी॒म॒हि॒प्र॒चे॒त॒  
सं॒ जी॒रं॒टू॒त॒म॒म॒र्त्य॒म् ॥११॥

नि	नि +	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
यज्ञस्य	यज्ञस्य	यज्ञ के
साधनम्	साधनम्	साधन को

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
होतारम्	होतारम्	होता को
मृत्विजम्	मृत्विजम्	मृत्विज् को
मनुष्यवत्	मनुर्यथा	जैसे मनु ने
देव	हे देव	हे देव
धीमहि	नि+धीमहि (स्थापयाम्)	हम स्थापन करते हैं
प्रचेतसम्	प्रकृष्टज्ञानयुक्तम्	बहुत ज्ञानवाले को
जीरम्	वेगवन्तम् (आ०फो०)	वेगवान् को
दूतम्	दूतम्	दूत को
अमर्त्यम्	मरण रहितम्	मरण रहित को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने हे देव ! यज्ञस्य साधनं होतारमृत्विजं  
प्रकृष्टज्ञानयुक्तं वेगवन्तं दूतं मरण रहितं त्वां (निज-

ग्रहेषु) स्थापयामः यथा मनुः (पूर्वकाले स्थापितवान्)  
॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि हे देव यज्ञ के साधन, होता, ऋत्विज्, बहुत ज्ञान वाले, वेगवान्, दूत, और मरण रहित आपको हम (अपने घरों में) स्थापन करते हैं जैसे (पूर्वकाल में) मनु ने (किया था) ॥ ११ ॥

मनु, भादि काल के अग्नि स्थापन करने वालों में से हैं। उस समय से अब तक आर्य्य जाति में अग्नि का स्थापन और पूर्य की रीति से पूजन नष्ट नहीं हुआ है।

अग्निर्देवतासु बृहतीच्छन्दः । १२। ८। १२। ८ ।

ग्रहेषु) स्थापयामः यथा मनुः (पूर्वकाले स्थापितवान्)  
॥ ११ ॥

यत्

देवानाम्

यदा

देवानाम्

जव

देवताओं के



मित्रऽमहः	हे मित्र नन्दन (महदतिहर्षे आ०को)	हे मित्रों को प्रसन्न करने वाले
पुरऽहितः	पुरोहितः	पुरोहित
अन्तरः	आत्मीयः (भा०को)	आत्मीय(जन)
यासि	प्राप्नोषि	तू प्राप्त होता है
दूत्यम्	दूतकर्म (कर्मणियत)	दूत कर्म के लिये
{ सिन्धोऽ- द्व	समुद्रस्येव	समुद्र की न्याई
{ प्रऽस्वनि- तासः	प्रकृष्टध्वनियुक्ताः (स्वन शब्देभायेक, असुगागमश्च)	बड़ी ध्वनि से युक्त
ऊर्मयः	तरङ्गाः	लहरें
अग्नः	अग्नेः	अग्नि की
आजन्ते	दीप्पन्ते	चमकती हैं
अर्चयः	ज्वालाः	ज्वालाएं

( ११०५ ) अ० मं० १ सू० ४४ मं० १३

संस्कृतार्थः ।

हे मित्र नन्दन ! यदा देवानां पुरोहित आत्मीयः  
( च त्वं तेषाम् ) दूतकर्म प्राप्तोपि ( तदा ) अग्नेर्ज्वालाः  
समुद्रस्य तरङ्गाइव प्रकृष्ट ध्वनियुक्ताः ( सत्यः )  
दीप्यन्ते ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्रों को प्रसन्न करने वाले, जब देव-  
ताओं के पुरोहित और आत्मीय आप (उनके) दूत  
कर्म को प्राप्त होते हैं ( तब ) अग्नि की ज्वालाएं  
समुद्र की लहरों कीन्याइँ बड़ी ध्वनिसे युक्त होकर)  
चमकती हैं ॥ १२ ॥

अग्निर्देवता बृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८॥

श्रुधि॑ श्रुत्कर्ण॑वक्त्रि॑भि र्वैर॑ग्ने-  
स॒याव॑भिः । आसीद॑न्तुवर्हि॑र्षि॑भि-  
चो॑ अ॒र्य॒मा प्रा॑त॒र्यावा॑णो अ॒ध्व॒रम् ॥ १३ ॥

श्रुधि

शृणु

( श्रवणस्य लृङ् )

सुनो

अत्कर्ण	हे श्रवणसमर्थ कर्णयुक्त	हे सुनने वाले कर्णों से युक्त
वह्निभिः	वोह्निभिः (सह)	ढोनेवालोंके (साथ)
देवैः	देवैः (सह)	देवनाओंके (साथ)
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
सयावभिः	समानगतिभिः (समानयासीति सया वान ,याप्रापणे)	समान गतिवालों के (साथ)
आ	आ +	
सीदन्तु	आ+सीदन्तु- उपविशन्तु	बैठें
वर्हिषि	वर्भे	कुशा पर
मित्रः	मित्रः	मित्र
अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा
प्रातःया-	प्रातःकाले	प्रातःकाल में
वानः	गच्छन्तः (या-प्रापणे वनिष्पत्ययः)	जाने वाले

अष्टवरम् | यज्ञं | यज्ञ को

संस्कृतार्थः ।

हे श्रवणसमर्थकर्णयुक्ताग्ने ! समानगतिभिः  
(धनानाम्)बोद्धृभिः(च) दैवैः(सह, अस्मद्वचनम्)शृणु,  
मित्रोऽर्यमा प्रातःकाले यज्ञम्(प्रति)गच्छन्तः(देवाश्च)  
बर्हिष्युपविशन्तु ॥१३॥

भाषार्थः ।

हे सुनने वाले कानों से युक्त अग्नि(देव) एक  
जैसी गतिवाले (और धनों के) ढोनेवाले देवताओं के  
(साथ) हमारे वचन को सुनो, मित्र अर्यमा (और)  
प्रातःकाल में यज्ञ की ओर जाने वाले देवता कुशा  
पर बैठें ॥१३॥

अग्नि को उपासक को यह निश्चय रखना चाहिये कि जो कुछ  
स्तुति प्रार्थना यह अग्नि को सामने करता है उसको अग्निदेव ऐसे  
ही सुनते हैं जैसे मनुष्य कानों द्वारा सुनता है ।

अग्निर्देवता सतोबृहतीच्छन्दः ॥१२।८।१२।८।

शृण्वन्तुस्तोमंमरुतःसुदानवो  
ऽग्निजिह्वाऋतावधः । पिवतु-

सोमं वरुणो धत्तव्रतो ऽश्विनभ्यामुषसा  
सजुः । १४ ।

शृण्वन्तु	शृण्वन्तु	सुनें
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
मरुतः	मरुतः	मरुत् देव
सऽदानवः	कल्याणदानाः (यास्कः)	कल्याण देने वाले
{ अग्निऽजि- ह्वाः	अग्नेर्जिह्वाहवि- रास्वादयन्तीति	अग्नि की जिह्वा से हवि का स्वाद लेने वाले
वृत्तऽवधः	ऋतस्यवर्धकाः अन्तर्भावितण्यर्थाद्बृ- धेःकियप्)	ऋत के बढ़ाने वाले
पिवतु	पिवतु	पीवे
सोमम्	सोमम्	सोम को
वरुणः	वरुणः	वरुण

धृतऽव्रतः	दृढनियमः	दृढ नियम वाला
{ अश्विऽ भ्याम्	अश्विभ्याम्	अश्वि देवों से
उपसा	उपसा	उपा से
सऽजुः	सहितः	साथ

संस्कारार्थः ।

कल्याणदाना अग्नेर्जिह्वाहविरास्वादयन्त-  
ऋतस्यवर्धका मरुतः(देवाअस्मदीयम्) स्तोत्रं शृण्वन्तु  
दृढनियमो वरुणोऽश्विभ्यामुपसा(च)सहितः सोमं पि-  
बतु ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

कल्याण के देने वाले अग्निकी जिह्वा से हवि  
का स्वाद लेने वाले ऋत के बढ़ाने वाले मरुत् देवता  
हमारे स्तोत्र को सुनें दृढ नियम वाले वरुणदेव  
अश्वि(देव)ओर उपा के साथ सोम को पीवें ॥ १४ ॥

॥ इतिचतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

# ऋ० मं० १ सू० ४५ मं० १

अग्निर्देवता प्रस्कण्वक्कपिरनुष्टुप्छन्दः८।८।८।८।

॥ तव॑स॒ग्ने॒वस॑रि॒ह रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ  
उ॒त । य॒जास्व॑ध॒वरं॑ ज॒नं म॑नु॒जातं॑ घृ॒त  
प्रु॒षम् । १ ।

तव॑स्	त्वम्	तू
अ॒ग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
वसू॑न्	वसून्	वसुओं को
इ॒ह	इह	यहां
रु॒द्रान्	रुद्रान्	रुद्रों को
आ॒दि॒त्यान्	आदित्यान्	आदित्यों को
उ॒त	अपिच	और भी
य॒ज	पूजय	पूजो

सु० अध्वरम्	शोभनयागयुतम्	सुन्दर याग से युक्त को
जनम्	(देव) समूहम्	(देव) समूह को
मनु० जातम्	मनोरुत्पन्नम्	मनु से उत्पन्न को
घृत० प्रुषम्	घृतस्य सेकारम् (घृण सेचने)	घी बरसाने वाले को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! त्वमिह असूनु रुद्राणां अित्यान् अपि च  
शोभनयाग युतं मनोजातं घृतस्य सेकारं (देव) समूहं  
पूजय ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि आप यहां बसु, रुद्र, आदित्य और  
सुन्दर याग से युक्त, मनु से उत्पन्न, घी के बरसाने  
वाले देव समूह की भी पूजिये ॥ १ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में आग्नेय ऋतु के आदिपन शस्त्र में  
पढ़ा जाता है (आ० ध्यो० सू० ४ । १३ । ७)

गर्गश्रिरात्र नामी अहीन यज्ञ के अग्निम दिनमें यह सूक्त याज्य  
शस्त्र में (आ० ध्यो० सू० ७०४ । २ । ९)

(१) "यदि दण्ड सर्वमासयन्त तस्माद्वसन्" (श० भा० ११।६।३६)

परमात्मा की यह शक्तियां वा स्वरूप जो, इस सृष्टि को मनु-  
ष्यादि प्रजा से बरसाने वाले हैं वसु कहलाते हैं जैसे पृथिवी अग्नि,



अ० सं० १ सू० ४५ मं० २ ( १११२ )

अन्तरिक्ष, वायु, घी, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र क्योंकि इन्हीं के आश्रय से ये जीव बसते हैं ॥

(२) मनु यहां पर प्रजापति से तात्पर्य है जिस से देव और मनुष्य सब उत्पन्न हुए हैं ॥

(३) घी घरसाने वाले अर्थात् घृत उपलक्षित अन्नादि पदार्थों के देने वाले ॥

ऐसे कल्याण करने वाले देव समूह को भी अग्नि हमारे लिये पूजें ।

अग्निदेवता अनुष्टुप्छन्दः । ८। ८। ८। ८।

श्रु॒ष्टी॒वा॒नो॒हि॒दा॒शु॒षे॒ दे॒वा॒अ॒ग्ने॒

वि॒चे॒त॒सः । तानो॒हि॒द॒श्व॒गिर्व॒ण॒

स्व॒य॒स्त्रिं॒श॒त॒मा॒व॒ह ॥ २ ॥

३ { श्रु॒ष्टी॒वा॒नः	श्रु॒ष्टी॒सु॒खं॒ तद् व॒न॒ न्ति॒ का॒म॒य॒न्त॒इति॒ (श्रु॒ष्टी॒ति॒सु॒ख॒ना॒म) (निघं० ४।३।)	सु॒ख की इ॒च्छा करने वाला
हि	खलु	सच च
३ दा॒श॒शु॒षे॒	दत्त॑वते	देनेवाले के लिए
दे॒वाः	दे॒वाः	दे॒वता

अग्ने

हे अग्ने

हे अग्नि

वि॒ऽचे॒तसः॑

विशिष्ट प्रज्ञानाः

विशेष ज्ञान वाले

तान्

तान्

उनको

{ रो॒हि॒त्-॒ऽ-

हे रोहिन्नामकै

हे रोहितनामी

{ अ॒श्व॒-

रश्चै रूपेत

घोड़ों वाले

गि॒र्व॒णः॑

हे स्तुतिसंसेव्य  
(गीमि. स्तुतिमिर्वेन्यते  
संसेव्यत इति)हे स्तुतियों से  
सेवन करने योग्य{ त्रयः॑-॒ऽचिं॒-  
शतम्त्रयस्त्रिंशत्सङ्  
ख्याकान्तेतीस संख्या  
वालोंको

आ

आ +

—

व॒ह

आ+वह

लाओ

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! देवा विशिष्ट प्रज्ञाना ( हविः ) दत्तवते  
सुखं कामयमानाः ( च ) खलु ( सन्ति ) हे रोहिदश्व हे  
स्तुति संसेव्य तौस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकान् ( देवान् )  
आवह ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि, देवता विशेष ज्ञान वाले (और हवि) देने वाले के लिए सब सुख सुख की इच्छा करने वाले हैं, हे रोहित्नामी घोड़ों वाले हे स्तुति से सेवन करने योग्य उन तेतीस (देवताओं) को लाओ ॥ २ ॥

(१) परमात्मा को नाना शक्ति और स्वरूपों को वेद में कई प्रकार से वर्णन किया गया है । एक प्रकार से ३३ देवता वर्णन किए गए हैं, दूसरे प्रकार से ३०१, एक और प्रकार से ३००३ इत्यादि (श० ब्रा० ११ । ६ । १ । ४ ) परन्तु वास्तव में देवता एकही शक्ति के नाना रूप और नाम होने से असंख्य हैं हम तो इतना ही कह सकते हैं ॥

(२) कि सब देवता विज्ञान वाले हैं, जड़ (Blind Forces) नहीं हैं ॥

(३) और जो अनुमद की याँछा से लौकिक राजा आदि की अनुचित सेवा न करता हुआ इन को पूज्य बनकर हवि आदि देने का परिश्रम उठाता है, उस के लिए ये देवता सदा सुख की कामना करते हैं ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

प्रि॒यमे॒धवद॑न्नि॒व उ॒जा॒तवे॑दो॒विरू॒प-

वत् । अ॒ङ्गिर॒स्वन्म॑हि॒व्रत॑ प्र॒स्कृ॒णव॑-

स्यश्रु॑धी॒हवम् । ३।

{ प्रियमेधऽ वत्	प्रियमेधस्येव	प्रियमेध की न्याई
अत्रिऽवत्	अत्रेरिव	आत्र की न्याई
जातऽवेदः	हे जातानां ज्ञातः	हे उत्पन्न हुआ के जानने वाले
विरूपऽवत्	विरूपस्येव	विरूप की न्याई
अद्विरऽवत्	अद्विरसइव	अद्विरा की न्याई
महिऽवत्	हे महाकर्मन्	हे बड़े कर्म वाले
प्रस्कण्वस्य	प्रस्कण्वस्य	प्रस्कण्व की
श्रुधी	श्रृणु	सुनो
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः

हे महाकर्मन् जातानां ज्ञातः (अग्ने ! ) प्रियमेधाऽत्रि  
विरूपाऽद्विरस इव (मम) प्रस्कण्वस्याऽऽह्वानं श्रृणु ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे उत्पन्न हुआओं के जानने वाले बड़े कर्म वाले (अग्नि, जिस प्रकार आपने) प्रियमेध, अत्रि, विरूप, (और) अङ्गिरा की (पुकार को सुना था) उसी प्रकार (मुझ) प्रस्कण्व की पुकार को सुनो ॥ ३ ॥

प्रियमेध, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा मादृग्जति के पूर्व पुद-  
पाओं में से हैं जैसे उनको पुकार को सुनकर अग्निदेवने उनको रक्षा  
की थी, वैसे हमारे भी करें ॥

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

महि॑के॒रव॒ज्ज॒तये॑ प्रि॒यमे॑धा॒अहू॒-

ष॒त । रा॒ज॒न्त॒मध॒वरा॑णा॒ मग्नि॑न्शु॒क्रे-

गा॒शो॒चिषा॑ । ४ ।

<p>{ महिऽ- केरवऽ ज्जतये</p>	<p>प्रौढकर्मणिः (महयोमहान्तःकारवः कर्मणिषेपात्तेतयोक्ताः (आकारस्यैकारद्वन्द्व सः) रक्षाऽर्थम्</p>	<p>बड़े कर्मों वाले रक्षा के लिये</p>
-------------------------------------	---	---

प्रियमेधाः	प्रियमेधाः	प्रियमेधवंशियोंने
अहूषत	आहूतवन्तः	बुलाया है
राजन्तस्	दीप्यमानम्	चमकते हुए को
अध्वराणाम्	यज्ञानाम् ( मध्ये )	यज्ञों के ( बीच में )
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
शुभ्रेण	शुभ्रेण	उज्ज्वल से
प्रोचिषा	प्रकाशेन	प्रकाश से

संस्कृतार्थः ।

प्रोढकर्मणः प्रियमेधा यज्ञानाम् ( मध्ये ) शुभ्र-  
प्रकाशेन दीप्यमानमग्निं रक्षार्थमाहूतवन्तः ॥ ४ ॥

मापार्थः ।

बड़े कर्मों वाले प्रियमेध वंशियों ने यज्ञों  
के ( बीच में ) उज्ज्वल प्रकाशसे चमकते हुए अग्निको  
रक्षा के लिये बुलाया है ॥ ४ ॥

ऋ०मं०१ सू०४५ मं०५ ( १११८ )

(१) प्रियमेध वंशियों ने बड़े २ कर्म किये हैं जो प्राचीन इतिहास के लुप्त होजाने से हमें विदित नहीं हैं ये सब अग्नि के उपासक थे ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

घृ॒ता॒ह॒व॒न॒स॒न्त्ये॒ मा॒उ॒ष॒श्रु॒धी॒-  
गि॒रः॑ । या॒भिः॑ क॒ण॒व॒स्य॒सू॒न॒वो॒ ह॒व॒न्ते॒  
ऽव॒से॒त्वा । ५ ।

{ घृ॒तऽआ- ह॒व॒न	हे घृतेनहूयमान !	हे घृत से हवन करने योग्य
स॒न्त्ये॒	हे दानसाधो (सन् दाने)	हे दानी
इ॒माः	इमाः	ये
ऊ॒म्	(पूरणः)	-
सु	सु+	-
श्रु॒धि	सु+श्रुधि सं० शृणु	खूब सुन
गि॒रः	स्तुतीः	स्तुतिओं को

याभिः	याभिः	जिनसे
कण्वस्य	कण्वस्य	कण्व के
सनवः,	पुत्राः	पुत्र
हवन्ते	आह्वयन्ति	घुलाते हैं
अवसे	रक्षार्थम्	रक्षा के लिये
त्वा	त्वाम्	तुझ को

संस्कृतार्थः ।

हे घृतेन हूयमान ! दानसाधो (अग्ने) याभिः  
(स्तुतिभिः) कण्वस्य पुत्रा रक्षार्थं त्वामाह्वयन्ति (ताः)  
इमाः स्तुतीः सुष्टु शृणु ॥५॥

भाषार्थः ।

हे घृत से हवन करने योग्य दानी ( अग्निदेव )  
जिन ( स्तुतियों से ) कण्वके पुत्र रक्षा के लिये आप  
को घुलाते हैं ( उन ) इन स्तुतियों को खूब सुनिये ॥५॥

(१) कण्व के पुत्र अर्थात् मैं प्रस्कण्व और दूधरे मेरे बन्धु वर्ग ।



अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८

त्वा॑चि॒त्रश्र॑वस्त॒म ह॒वन्ते॑वि॒क्षु-  
ज॒न्तवः॑ । शो॒चिः॑ केशं॒ पुरु॑प्रि॒या । ऽग्ने-  
ह॒व्याय॑वो॒ हळ॑वे । ६ ।

त्वाम्	त्वाम्	तुझ को
चि॒त्रश्र॑वः॒ऽ त॒म	हे अतिशयेन चित्रकीर्तियुक्त	हे बड़ीविचित्र कीर्ति वाले
ह॒वन्ते॑	आह्वयन्ति	बुलाते हैं
१ वि॒क्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
ज॒न्तवः॑	मनुष्याः (निर्वं० १।३)	मनुष्य
{ शो॒चिः॑ऽ- केशम्	दीप्तिरूपकेशो- पेतम्	प्रकाश रूप वालो वाले को

प्र०ऽप्रियहे बहुप्रिय  
( 'पुष्ट' इति बहुनाम )  
( निघं० ११३ )

हे बहुतों के प्यारे

अग्ने

हे अग्ने !

हे अग्नि

हव्याय

हव्याय

हवि के लिये

वोह्ळवे

वोढुम्  
( पठते : 'तुमर्थे' तवेन्  
प्रत्ययः )

ले जाने के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे अतिशयेन चित्रकीर्तियुक्तबहुप्रियाऽग्ने ! प्र-  
काशरूपकेशयुक्तं त्वां हविषो वहनार्थं मनुष्याः प्रजा-  
नां मध्यमाह्वयन्ति ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे बड़ीविचित्र कीर्तिसे युक्तबहुतोंके प्यारे अग्नि  
( देव ) प्रकाश रूप वालों वाले आपको हवि लेजाने  
के लिए मनुष्य प्रजाओं के बीच में बुलाते हैं ॥ ६ ॥

( १ ) अग्निदेव को मनुष्य अपने २ घरों में प्रजामों के बीच में  
इसलिये बुलाते हैं—कि यह देवताओं के लिए हवि को ले जावे ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ॥ ८८८८८८ ॥

नितंवाहीतारमृत्विजः दधिरेव-

सुवित्तमम् । श्रुत्कर्णसंप्रथस्तमं वि-  
प्राग्गनेदिविष्टिष ॥७॥

नि	नि +	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
होतारम्	होतारम्	होता को
कृत्वि-	कृत्विजम्	कृत्विज् को
जम्		
दधिरे	नि + दधिरे स्थापितयन्तः	स्थापन किया है
वसवित्-	अतिशयेन धनस्य	धनके बहुत ज्ञान
उतमम्	ज्ञातारम्	वाले को
श्रुत्कर्ण-	श्रवणार्थकर्णोपे-	सुनने के लिये
र्यम्	तम्	कानों से युक्त को
संप्रथः-	अतिप्रसिद्धम्	अति प्रसिद्ध को
तमम्		

विप्राः

अग्ने

{ दिवि  
ष्टिषु

मेधाविनः

हे अग्ने !

दिवः स्वर्गस्य,  
इष्टय इच्छायेषु  
(यज्ञेषु)

बुद्धिमानों ने

हे अग्नि

स्वर्ग की इच्छामें  
युक्त (यज्ञों) में

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मेधाविना होतारमृत्विजमतिशयेन-  
धनस्य ज्ञातारमतिप्रसिद्ध श्रवणार्थं कर्णोपेतं त्वां स्वर्ग-  
च्छायुक्तेषु (यज्ञेषु) स्थापितवन्तः ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि, होता ऋत्विज् धनके बहत ज्ञानवाले;  
अतिप्रसिद्ध, सुनने के लिए कानों से युक्त आपको  
बुद्धिमानों ने स्वर्ग की इच्छासे युक्त (यज्ञों) में स्थापन  
किया है ॥ ७ ॥

(१) यज्ञ में मनुष्य होता का काम हवि ग्रहण करने के लिए  
देवताओं को बुलाने और हवि स्वीकार करने के लिए उन से  
प्रार्थना करने का है यही कर्म देवहोता अग्नि का है ॥

(२) यद्यपि हम अग्नि के कानों को नहीं देखते। परन्तु  
जानते हैं कि यह सुनने के लिए कानों से युक्त हैं और हमारी स्तुति  
और प्रार्थना को सुनते हैं ॥

(३) बुद्धिमान् परलोक के सुख के साधन निमित्त अग्नि को

क्र० मं० २ सू० ४५ मं० ८ ( ११२४ )

स्थापन करके यह करते हैं जिससे वे दिनों दिन पाप को छोड़कर सुकर्म में प्रवृत्त होते जाते हैं और शरीर को त्यागने पर सूर्यादि देवलोकां को प्राप्त करते हैं ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८॥

आ॒त्वा॒वि॒प्रा॒अ॒चु॒च्य॒वुः॒ सु॒त॒सो॒मा॒

अ॒भि॒प्र॒यः॒ । बृ॒ह॒द्वा॒वि॒भ्र॒तो॒ह॒वि॒ र॒ग्ने॒-

म॒ता॒य॒दा॒शु॒ष ॥८॥

आ	आ+	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
विप्राः	मेधाविनः	बुद्धिमानों ने
अचुच्यवुः	आ+अचुच्यवुः प्रापितवन्तः (अन्तर्मा- वितरणार्थः)	प्राप्त कराया है
सुतऽसोमाः	अभिपुर्तसोम	जिन्होंने सोम
अभि	प्रति युक्ताः	निचोड़ा है प्रति

प्रयः	अन्नम्	अन्न को
वृद्धत्	महान्तम् (‘सुपा’भित्तिविमत्तेर्लुक्)	बड़े को
भाः	भासमानम् (सुपासुलुगितिभिन्न र्लुक्)	प्रकाशमान को
विभ्रतः	धारयन्तः	धारते हुए
हविः	हविः	हवि को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
मर्ताय	मरणधर्माय	मरण धर्म के लिये
दाशुषे	यजमानाय	यजमान के लिये

सत्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! अभिषुतसोमयुक्ता हविविधारयन्तो मेधा  
विन (हविर्लक्षणम्) अन्नं प्रति महान्तं भासमानं त्वां  
मरणधर्माय यजमानाय प्रापितवन्तः ॥८॥

मात्पार्थः ।

हे अग्नि, सोम निचोड़े हुए (और) हवि को  
धारते हुए बुद्धिमानों ने (हविरूप) अन्न के प्रति

श्र० मं०१ मू०४० मं०९ ( ११२६ )

बड़े (और) प्रकाशमान आपको मरणधर्मा यजमान के लिए प्राप्त कराया है ॥ ८ ॥

मेधारी सुत सोम ऋत्विजों का मरणधर्मा यजमान पर यह बड़ा अनुग्रह है कि महान् प्रकाश युक्त अग्निदेव आकर उसका अन्तःकरण ग्रहण करें और अन्य देवताओं को पहुंचावें।

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः। ८। ८। ८। ८।

प्रातर्या॒ग्नः॑ सह॒स्र॒कृत॑ सोम॒पेया॑य  
सन्त्य॑। इ॒हाऽद्य॑दै॒व्यं॑ ज॒नं॑ व॒र्हि॒रासा॑द  
याव॑सो। ९।

प्रातः-	प्रातरागच्छतः	प्रातःकाल में
{	(देवान्)	आनेवाले
ऽया॒व्नः॑	(आकारलोपः)	(देवताओं को)
सहः॒ऽकृत॑	हे बलेनोत्पादित	हे बल से उत्पन्न
	(सह इति यल्लगाम)	किए गए
	(मिथं० १।१२१)	
सोम॒ऽपेया॑य	सोमपानार्थम्	सोमपान के लिए
स॒न्त्य॑	हे दानसाधो !	हे दानी
इ॒ह	उह	यहां

अद्य	अद्य	आज
दैव्यम्	दैव्यम्+	—
जनम्	दैव्यम्+जनम्, देव समूहम्	देव समूह को
वर्हिः	दर्भे (सप्तम्यर्थे द्वितीयाः)	कुशापर
आ	आ+	—
सादय	आ + सादय उपवेशण	बिठाओ
वसो०	हे धनाधिप (आ०को०)	हे धन के स्वामी

संस्कृतार्थः ।

हे बलेनोत्पादित दानसाधो धनाऽधिप (अग्ने!)  
अद्याऽस्मिन्स्थाने प्रातरागच्छतो देवान् (अन्यमपि)  
देव समूहं सोमपानार्थं दर्भ उपवेशय ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे बल से उत्पन्न किए गए, दानी, धन के  
स्वामी (अग्निदेव) आज यहां पर प्रातःकाल में आने  
वाले देवताओं को (और अन्य) देव समूह को सोम  
पीने के लिए कुशा पर बिठाओ ॥ ९ ॥

(१) प्रातःकाल में आने वाले देवता अग्नि, उषा और अदिव हैं ।



मै० सं० १ सू० ४५ मं० १० ( ११२८ )

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः ॥ ८ ॥ ८ ॥ ८ ॥

अर्वाञ्चरैर्व्यंजनं मग्नेयद्वस-  
हूतिभिः । अयंसोमः सुदानव स्तं-  
पाततिरोअक्रयम् ॥ १० ॥

अर्वाञ्चम्	अभिमुखमागतम्	सम्मुख आते
दैव्यम्	दैव्यम् +	हुए को
जनम्	दैव्यम् + जनम्, देव समूहम्,	देव समूह को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
यद्व	यज	पूजो
सहूतिभिः	समाना हानैः	इकट्टेबुलाकर
अयम्	अयम्	यह
सोमः	सोमः	सोम

सु०दानवः	हे कल्याणदानाः	हे कल्याणके देने
	(दास्का)	वाले
तम्	तम्	उसको
पात	पिबत	पीओ
	(शपोलक)	
तिरः०अ-	ह्यस्तनम्	कल के (निचोड़े-
काम्	(महो०तीत्यवर्तत इति तम्)	हुए) को

सस्वतार्यः ।

हे अग्ने । अभिमुखमागतं देवसमूहं समानाः -  
 हानैर्यज, हे कल्याणदानाः (देवाः ।) अयंसोमः (वर्तते)  
 तं ह्यस्तनं - (सुतंसोमम्) पिबत ॥ १० ॥

मापार्यः ।

हे अग्नि सम्मुख हुए देव समूह को ; इकट्ठा-  
 वुला कर पूजिए, हे कल्याण के देनेवाले (देवताओ)।  
 यह सोम (वर्तमान है) इस कल के (निचोड़े हुए)  
 सोम को आप पीवें ॥ १० ॥

(१) एक दिन पहले निचोड़कर रखने से सोम में विद्योप गुण  
 होजाते हैं ॥ १० ॥

इति पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

# अ० मं० १ सू० ४६ मं० १

अश्विनो देवते प्रस्कण्वरूपिर्गायत्री छन्दः । ८ । ८ । ८ ।

एषोऽुषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया

दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् । १ ।

एषो०	एषा	यह
उषाः	उषाः	उषा
अपूर्व्या	पूर्वमविद्यामाना	जो पहिले नहीं
वि	वि +	दीखती थी
उच्छति	वि + उच्छति आविर्भवति	प्रकट होती है
प्रिया	प्रिया	प्यारी
दिवः	द्युलोकात्	आकाश से
स्तुषे	स्तौमि	स्तुति करता हूँ
वाम	युवाम्	तुम दोनों को

अश्विनो वृद्धत्	हे अश्विनो ! अतिशयेन	हे अश्वि देवताओ अनिशय करके
--------------------	-------------------------	-------------------------------

संस्कृतार्थः ।

एषा पूर्वमविद्यमाना प्रिया उषा द्यलोकाना-  
विर्भवति हे अश्विनो ! (अस्मिन्काले) युवामनिशयेन  
स्तोमि ॥१॥

भाषार्थः ।

जो पहले नहीं दीखती थी ऐसी प्यारी उषा द्युलोक  
से प्रकट होती है, हे अश्वि देवताओ (ऐसे काल में)  
मैं आप की अतिशय करके स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

विनियोग—यह सूक्त प्रातःगुणाक में आश्विन कतु के आश्विन  
शस्त्र में पढ़ा जाता है (भा० भो० सू० ४ । १५ । १)

(१) "अपूर्वा" कहने से प्रतीत होता है कि अथि को बहुत  
समय के पीछे उषा का दर्शन हुआ है, ऐसा मेघ के समीप देशों में  
होता है, यहां कई ग्रहीणों की राशिके अन्तमें उषा प्रकट होकर बहुत  
दिनों तक विद्यमान रहती है। किट्सर्च के उद्घट्ट होने से उसके  
प्रकाश में लय हो जाती है।

अश्विनो देवते निचृद्गायत्री छन्दः । ७। ७। ७।

यादस्त्रासिन्धुमातरा मनोतरारं-

यीणाम् । धियादवावसुविदा । २।

या	यौ	जो
दस्त्रा	उग्रौ	भयानक
सिन्धुऽ- सातरा	समुद्र मातृकौ	समुद्र से उत्पन्न
मनोतरा	मनसोत्पादकौ (पा०को०)	मनसे उत्पन्न करने वाले
व्योणाम्	धनानाम्	धनों के
धिया	ध्यानेन	ध्यान से
देवा	देवौ	देवता
वसुऽविदा	धनस्यज्ञातारौ	धन के जानने वाले

सष्टतार्थः ।

यौ देवौ समुद्रोत्पन्नौ, मनसा धनानामुत्पादकौ  
ध्यानेन धनस्य ज्ञातारौ, (च स्तः) ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

जो देवता समुद्र से उत्पन्न, मन से धनों के

उत्पादक, (और) ध्यान द्वारा धन के जानने वाले  
(हैं) ॥ २ ॥ -

(१) इस सूक्त में समुद्र से सर्वत्र अन्तरिक्ष के जल समझने  
चाहिये, इन्हीं से अद्वि देव और उषा की भी उत्पत्ति होती है यदि  
अन्तरिक्ष में जल और वायु (atmosphere) न होते, तो सूर्य उदय तक  
आकाश अत्यन्त काळा दिखाई देता जिस में नक्षत्रों से निम्न भीर  
किसी प्रकार की ज्योति नहीं दिखाई देती, भीर सूर्य उदय होने  
पर धूप और प्रकाश एक दम प्रकट होजाते ॥

अद्विनो देवते गायत्री छन्दः । ८। ८। ८।

वच्यन्ते वांकक हासो जूणीयाम्-  
धिविष्टपि । यद्वांरथो विभिष्टप-

तात् । ३।

वच्यन्ते

वाम्

ककुहासः

जूणीयाम्

प्रापयन्ति  
(अ० १। १। ७। २)

युवाम्

महान्तः  
(निघ० ३। १)

पुरातन्याम्

पहुंचाते ह

तुम दोनों को

महान्

प्राचीन में

अधि	अधि+	-
१ विष्टपि	अधि+विष्टपि लोके (पा०को०)	लोक में
यत्	यदा	जब
वाम्	युवयोः	तुम दोनों का
रथः	रथः	रथ
२ विऽभिः	उड्डीयमानैः (मदरैः)	उडने वाले (घोड़ों) से
पतात्	गच्छति (पल्लगती) (मरुमाल्लेटघाडागमः)	जाता है

सस्यार्थः ।

( हे अश्विनो ! ) यदा युवयो रथउड्डीयमानैः  
(अश्वैः) गच्छति (तदा) महान्तः (अश्वाः) युवां पुरा-  
तनेलोके प्रापयन्ति ॥ ३ ॥

मापार्थः ।

( हे अश्विदेवताओ ) जब आप का रथ उडने  
वाले घोड़ों से चलता है, (नच) महान् (अश्व) आपको  
प्राचीन लोक में ले जाते हैं ॥ ३ ॥

# विषय सूची ।

ऋग्वेद संहिता अङ्क १३ से २४ तक ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अद्विरा	६८१	विचमानु	६०८
अजीगतं	४८८	तनुकृत्	७१६
अदिति	३१०	तुर्वय	८४०
अधिषवण्या	६२०	तुर्वीति	८४०
अप्यमा	५८०	तेतीस देवता	८५३
अरावा	८११	विकटुका	७५३
असुर	३४३	दययु	८२६
अहि	७४०	दानुः	७६८
आयु	७४०	नदिषी की उत्पत्ति	५५५
आहाव	८५४	नर	५५५
इळा	७२२ १०२४	नवगवा	८०२
इलीबिय	८२०	नव नवति रजांसि	७८२-७८३
उग्रदेव	८४०	निर्जति	५३०
उषा	६८४	पुरुखा	७०१
ऋष	५३२	प्रथिथी का पूर्व इतिहास	७४०
काण्व	८२०	सहद्रय	८४०
कुत्स	८२६	ब्रह्मणस्पति	१०१७
कोहिर की उत्पत्ति	८०८	मवदगण	६८१
चन्द्रमाकोपकायका कारण	८२६		



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मनु	७०१	सूच, धूलि का नाम	७४७
मातरिश्वा	६८७	सुपा	८११
मेध्यातिथि	८१८	शिप्री	६४२
यदु	८४०	शुनःशेष	४८८
ययाति	८४१	शिवचा	८२८
यातुधान	८८३	पडह	७५५
यूपस्तुति	८२०	सप्तसिन्धवः	७७७
रात्रिदेवता	८६८	सूर्य की महिमा	८७८
रुद्रः	६१४	सोम	७५५
रोहित	४८८	सौर मन्त्राण्ड की उत्पत्ति	६८८
वर्षा का कारण	७५१	हरिश्चन्द्र	४८८

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
८७६	१८	भूत्	भूत्	१०००	८	भूम्याम्	भूम्याम्
८७७	१६	सुह	सुह	१००१	१४	हृद्वा	हृद्वा
९८०	२	चित्	चित्	१००२	१७	सुह	सुह
"	७	कृण्वन्ति	कृण्वन्ति	१००३	५	सर्वया	सर्वया
८८१	४	यदेषा	यदेषा	"	१४	प्रीषा	प्रीषा
"	१०	ग्रहद्वय	ग्रहद्वय	१००४	८	उपा+	उपा+
"	१६	यत्	यत्	१००५	५	पृथिवी	पृथिवी
८८२	१२	(लङ्घ्येसुह)	(लङ्घ्येसुह)	"	८	प्रतीक्षा	प्रतीक्षा
"	१८	पृथिवी	पृथिवी	"	१४	युज्य	युज्य
८८७	४	सस	सस	"	१८	विन्दु	विन्दु
"	७	सन्त	सन्त	१००७	१५	कसु)	कसु)
"	१२	अच्छा	अच्छा	१००८	८	पूर्वकाल	पूर्वकाल
८८७	१४	विस्तृततो	विस्तृततो	"	१५	युज्मे	युज्मे
८८८	१४	मरुद	मरुद	"	१८	प्रास्व)	प्रास्वम्)
"	१६	सन्तम्	सन्तम्	१०११	११	प्रचेतमः	प्रचेतमः
८८४	२	कस्य	कस्य	१०१२	१८	विभया	विभया
"	५	किस	किस	१०१३	४	अखिलिम	अखिलम्
८८६	१६	सन्त	सन्त	१०१४	८	कोप	कोप
८८८	६	विजुज्य	विजुज्य	१०१५	१५	प्रार्थना	प्रार्थना
८८८	१४	देवता	देवता	१०१८	५	उपव्रते	उपव्रते
					११	सुः	सुः
				१०२०	५	नयन्तु	नयन्तु

पृ०	पं०	अगुहम् गृहम्	पृ०	पं०	अगुहम् गृहम्
१०२०	८	पति पति.	१०३१	६	त्यन्तर त्यन्तर
१०२१	६	पुङ्गिराध पुङ्गिराध	"	१८	आधीन आधीन
"	१०	आनयन्त प्रापयन्त	१०३२	१२	राजामः राजभिः
१०२२	६	पाते" पापते"	१०३३	८	तुक्तता तुक्तता
१०२३	८	राहतम् रक्षितम्	"	२१	सनिशम मुनिशम
१०२४	१२	इलाम् इलाम्	१०३५	७	यम यम
"	१३	सुवीराम सुवीराम्	"	१६	ते ते
"	१३	वीरोपताम वीरोपताम्	"	"	हिंस्यते हिंस्यते
"	१३	वीरासं वीरो मे	१०३६	११	यं वाह यं वाह
"	१५	यजामह यजामहे	"	१५	परयन्ति परयन्ति
"	१५	प्रयाग प्रयोग	१०३७	१८	हनन्ति हनन्ति
१०२७	१७	वाचेम वोचेम	१०४०	१६	आदित्या आदित्यो
"	१८	लिङि लिङि	"	१८	दष्ट(ह्राव दष्ट(ह्रवि
१०२८	५	पदं) पदम्)	१०४२	"	वस वस
१०३०	८	आधीन आधीन	"	"	कमत कमत
१०३१	२	तिष्ठत तिष्ठति	१०४३	१४	स्तुन् मृज्
१०३१	३	र्षति र्षन्ति	१०४४	६	मणो मणो
"	४	तीत्य न्तीत्य	१०४५	७	(ह्रिरूपम्) (ह्रोरूपम्)
"	"	"	"	१६	मणो मणो
"	"	"	१०४६	१४	" "

अंक २७ २८] [मार्गशीर्ष-पौष १९६४

# ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद  
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर  
व्याख्यान से युक्त

जिसकी पण्डितगणेशदत्त व्यास और मुल्ताननियासी  
प० शङ्करदत्त शास्त्री की सहायता से शिष्याध  
भाद्रिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकादमोकल यन्त्रालय में प्रिण्टर खासा  
सासमन के अधिकार से छपा ।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पिछले २४ अंकों का मूल्य ५।)

ऋग्वेद संहिता अङ्क २५, २६ शुद्धाशुद्धि पत्रम् ।

पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०५०	१० कस	कुह	१०६३	१६ करते	करते है	
"	१४ इमो	इमारे	१०६५	१४ चेतसे	चैतसे	
"	१८ देखो	देखो	"	७ हय	ह्राय	
"	२० द्यता	देवता	"	८ बुद्धिमान्	बुद्धिमान्	
१०५१	१९ (परणः)	(पूरणः)	१०६६	१८ बन्धकाः	बन्धकाः	
१०५२	१४ अ +	अप +	१०७०	१५ द्यस	दपस	
१०५३	६ इकाट	इकाटै	"	१५ शिच	शिचर्	
"	८ तः	तम्	१०८०	१५ गन्दने	निदने	
"	११ सतेः	सुतेः	१०८२	८ दतः	दतः	
१०५५	१५ ज्ञानवान्	ज्ञानवान्	"	"	"	
"	१० मतुपच	मतुप च)	"	१० बडा	बोडा	
१०५८	११ पपन्	पपन्	१०८०	"	तारम्	तारम्
१०६१	१६ ध	शुद्धिः	१०८०	१० जनम्	जनम्	
"	१० स्पुदरम्	स्पुदरम्	१०८१	१० करते	करती है	
१०६२	४ सट)	सट)				

(१) प्राचीन लोक धी है जिसमें उत्तर मेरु के समीपस्थ देशों में अश्वि देवताओं का रथ बहुत दिनों तक चारों ओर घूमता हुआ दिखाई देता है ॥

(२) अश्वि देवताओं के छोड़े आकाश में बहुत शीघ्र उड़ते हैं तभी तो सहस्रों कोस की परिक्रमा २४ घण्टे में कर लेते हैं ॥

अश्विनो, देवते निचृद् गायत्री छन्दः । ७। ८।

हविषा॑ जा॒रो॒अपां॑ पि॒प॒र्ति॒प॒पु॒रि॒-  
न॒रा । पि॒ताकु॑टस्य चर्ष॒णिः । ४।

हविषा॑	हविषा	हवि से
१ जा॒रः	कामुकः	अनुराग करने वाला
१ अपा॒म्	उदकानाम्	जलों के
पि॒प॒र्ति॒	पूरयति	पूर्ण करता है
प॒पु॒रिः	(धनधान्येन) पूरयिता	(धनधान्य से) पूर्ण करनेवाला
न॒रा	हे नरो	हे नरो

पिता	पालकः	पालने वाला
कुटस्य	गृहस्य (आ०को०)	घरके
चर्षणिः	द्रष्टा	देखने वाला

संस्कृतार्थः ।

हे नरो, अरांजारः (धनधान्येन) पूरयिता गृहस्य  
पालकः (कर्मणः) द्रष्टा (अग्निः) (अस्मदत्तेन)  
हविषा (युवाम्) पूरयति ॥४॥

मापार्थः ।

हे नरो जलों से अनुराग करनेवाले (धनधान्य  
से) पूर्ण करने वाले घर के पालक (और कर्म के)  
द्रष्टा (अग्नि) (हम से दी हुई) हवि से (आप को)  
पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥

(१) "जलों के जार" अग्निदेव हैं (देखो तै० ब्रा० १।१।३।८)  
ओ हवि से देवताओं को पूर्ण करते हैं, और यजमान के घर को  
धन धान्य से पूर्ण करते हैं ॥

अश्विनोदेवते, निचृद्गायत्रीछन्दः ७।८।८॥

आ॒दा॒रो॒वा॒मती॒नां ना॒स॒त्या॒मत-

वचसा । पा॒त॒सी॒मस्य॑धृ॒ष्णुया ॥५॥

१ आऽद्वारः	प्रेरकः (आ०को०)	प्रेरण करने वाला
१ वाम्	युवयोः	तुम दोनों की
१ मतीनाम्	स्तुनीनाम्	स्तुतियों का
नासह्या	हे अनृत रहितो	हे झूठ से रहित
{ २ मतऽव- चसा	मतं स्तुतिरूपवचो याभ्यां तौ, तत्सम्बुद्धौ	हे स्तुति रूपवचन के आदर करने वालों
पातम्	पिबतम् (शपोलुक्पिवादेशा- माबश्च)	पान करो
सोमस्य	सोमम् (द्वितीयाऽर्थेपष्ठी)	सोम को
धृष्णाऽया	धृष्टतया (सुषांसुलुगितियादा- देशः)	बेधड़क हो कर

ससह्यार्थः ।

हे अनृत रहितो (स्तुतिरूपे)वचस्यादरयुक्तो (अ०



क्र० मं०१ सू०४६ मं०६ ( ११४८ )

१. अश्विनो) युवयोः स्तुतीनां प्रेरकः (यः सोमोऽस्ति)  
(तम्) सोमं धृष्टतया पिवतम् ॥५॥

१०००००

भाषार्थः ।

हे झूठ से रहित (स्तुतिरूप) वचन में आदर करने  
वाले (अश्विदेवो) आप की स्तुतियों का प्रेरण करने  
वाला जो सोम है उस को चेधड़क होकर पाओ ॥५॥

(१) सोम स्तुतियों का प्रेरक है। सोमपान से विश्व की चञ्चलता  
मिट कर मनुष्य स्तुति शील होजाता है।

अश्विनो देवते गायेत्रीछन्दः ८।८।८ ॥

यानः पीपरदश्विना ज्योतिष्म-  
तीतिमस्तिरः । तामस्मेरासाथामि-  
षम् ॥६॥

या	या	जो
नः	अस्मान्	हम को
पीपरत्	पालयेत्	पाले
अश्विना	हे अश्विनो	हे अश्विदेवताओ

ज्योति- ष्मती	ज्योतिर्युक्ता	प्रकाश से युक्त
तमः	तमः+तिरः अन्ध- कारात्तरः(भूतम्)	अन्धकारसे रहित
तिरः	+ तिरः	--
ताम्	ताम्	उसको
अस्मे०	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
रासाध्याम्	दत्तम् (रा-दाने छोड़यें लुङ्)	दो
दूषम्	अन्नम्	अन्न को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनौ! ज्योतिपायुक्तमन्धकारात्तिरः(भूतम्)  
यदन्नमस्मान्पालयेत्तदस्मभ्यंदत्तम् ॥६॥

भाषार्थः ।

हे अश्विदेवताओ प्रकाशसे युक्त (और) अन्धकार  
से रहित जो अन्न हमारी पालना करे उसको हमारे  
ताई दो ॥ ६ ॥

अश्विदेव हमें ऐसा अन्न दें जो हमारी बुद्धि में प्रकाश को  
उत्पन्न करे और अज्ञान रूपी अन्धकार को हटावे ।

अश्विनी देवते, निचृद्गायत्री छन्दः । ८। ७। ८

आ॒नो॒ना॒वा॒म॒ती॒नां॒ या॒तं॒पा॒रा॒य॒गन्त॑वे ।

यु॒ञ्जा॒थाम॑श्वि॒नार॑थम् । ७।

आ	आ+	--
नः	अस्मान् (प्रति)	हमारे (प्रति)
ना॒वा	नावा	वेड़ी से
म॒ती॒नाम्	स्तुतीनाम्	स्तुतियों की
या॒तम्	आ+यातम्	आइये
पा॒रा॒य	पाराय+	--
गन्त॑वे	पाराय+गन्तवे पारं प्राप्तुम् (तुमर्हेतवे न्यस्त्ययः)	जाने के लिए
यु॒ञ्जा॒थाम्	युञ्जाथाम्	जोड़ो
अ॒श्वि॒नार॑	हे अश्विनो	हे अश्विदेवताओ
र॑थम्	रथम्	रथ को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनो ! (समुद्रात्) अस्मान् (प्रति) पारम्  
प्राप्तुं स्तुतीनां नावाऽऽगच्छतम्, (ततोऽवतीर्य) रथं  
युञ्जाथाम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्विनदेवो (समुद्र से) हमारे प्रति पार होने  
के लिए स्तुतियों की घेड़ी से आओ, (उस से उतर  
कर) रथ को जोड़ो ॥ ७ ॥

अश्विनदेव अन्तरिक्षके जलोंसे पार ध्रुलोकमें हमारी स्तुतियों  
की घेड़ी उन को जलों के इस किनारे ले आवे और यहां से उनका  
रथ उन्हें हमारे पास ले आवे ।

अश्विनो देवते, निचृद्गायत्रीछन्दः । ७।८।८

अ॒रि॒च॒वां॒दि॒वस्पृ॒थु ती॒र्थसिन्धू॑नां

रथः॑ । धि॒यायु॑य॒ज॒द्भ॒न्दवः॑ । ८।

अ॒रि॒च॒म्	समु॒द्रया॒नम्	जहा॒ज
वा॒म्	(मा०को०) यु॒वयोः	तुम॑ दोनों का
दि॒वः	ध्रु॒लोकात्	आकाश॑ से

पृथु	विस्तीर्णम्	चौड़ा
तीर्थे	अवतरण प्रदेशे	किनारे पर
सिन्धूनाम्	समुद्राणाम्	समुद्रों के
रथः	रथः	रथ
धिया	कर्मणा (निघ०२।१)	कर्म से
युयुजे	युक्तावभूवः	युक्त हुए हैं
इन्द्रवः	सोमाः	सोम

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्विनो) युवयोःसमुद्रयानमाकाशात् (अपि) विस्तीर्णम् ( अस्ति ) समुद्राणामवतरण प्रदेशे रथः ( विद्यते ) सोमाः ( च,अभिपवादि ) कर्मणायुक्ताः वभूवुः ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्विदेवताओ) आप का जहाज़ आकाश से (भी) चौड़ा (है) समुद्रों के किनारे पर रथ (विद्यमान है)(और)सोम (भी निचोड़ने आदि) कर्म से युक्त हुए हुए हैं ॥ ८ ॥

हमारी स्तुति रूप अहाज जिस पर चढ़ कर अश्विदेव भक्ति-  
रिक्ष के पार आते हैं दुलोक से भी चौड़ा है, वहां से हमारे घर  
तक मानेके लिए तीर्थ (Pond) पर रथ उपस्थित है, सोम भी निचोड़े,  
हुए हैं। (पाक्ष प्रति के लिये देखो भगला मन्त्र)

अश्विनोदेवते निचृद्गायत्रीलन्दः।८।७।८।

दिवस्कर्गवासइन्दवो वसुसिन्धू

नांपदे । स्ववत्रिंकुहधितसथः ।६।

दिवः	दुलोके (सप्तम्यर्थे पन्दी)	आकाश में
कर्गवासः	हे कर्गवाः	हे कर्गवाः
इन्दवः	सोमाः	सोम
वसु	धनम्	धन
सिन्धूनाम्	समुद्राणाम्	समुद्रों के
पदे	स्थाने	स्थान में
स्वम्	स्वम्	अपने

वत्रिम्

रूपम्  
(निघं० ३।७)

रूपको

कुह

कुत्र

कहां

धित्सथः

धारयितुमिच्छथः

धारण करना  
चाहते हो

संस्कृतार्थः ।

हे कण्वाः! सोमा धुलोके (प्राप्ताः) धनं समुद्राणाम्  
(अवतरण-) स्थाने (विद्यते) (हे अश्विनौ) निजस्वरूपं  
कुत्र धारयितुमिच्छथः ॥ ९ ॥

माषार्थः ।

हे कण्वो ! सोम धुलोक में ( पहुँच गए ) धन  
समुद्रों के किनारे पर (है) हे अश्विदेवो आप अपना  
स्वरूप कहां धारण करना चाहते हो ॥ ९ ॥

अपि कहते हैं कि हे कण्वो हम अश्विदेवों को सोम निचोड़  
कर अर्पण कर चुके हैं । जो अग्निद्वारा धुलोक में पहुँच गया, धन  
जो अश्विदेवों के रथ में मरा है समुद्रों के तीर पर विद्यमान है । हे  
अश्विदेवो अब आप कहां जाना चाहते हो । धुलोक में वा किसी  
अन्य यजमान के घर ।

अश्विनौ देवते गायत्री छन्दः । ८। ८। ८।

अ॒भू॒दु॒भा॒उ॒अ॒श॒वे॒ हिर॑ण्यं प्रति-

सू॒र्यः । व्य॒ख्य॒जि॒ज्ञ॒याऽसि॑तः । १०।

अभूत्	अभूत्	हुआ
ऊम्०	खलु	सच मुच
भाः -	छाया (चा०को०)	छाया
ऊम्०	(पूरणः)	—
अंशवे	ज्योतिषे	प्रकाशके लिये
हिरण्यम्	हिरण्यम् +	—
प्रति	हिरण्यम् + प्रति स्पर्ण लक्षण	स्पर्ण के सदृश
सूर्यः	सूर्य.	सूर्य
वि	वि +	—
अख्यत्	वि + अख्यत प्रकटोऽभवत्	प्रकट हुआ
जिह्वया	जिह्वया	जिह्वा से
असितः	कृष्णवर्णः	काले रङ्ग वाला



संस्कृतार्थः ।

ज्योतिषेखलु छायाऽभवत् सूर्यो हिरण्यसदृशः  
(संवृत्तः) (अग्निरपि) कृष्णवर्णः (मन्) ज्वाला रूपया  
जिह्वया प्रकटोऽभवत् ॥१०॥

भाषार्थः ।

प्रकाश के लिये सचमुच छाया होने लगी, सूर्य  
सोने की न्याई (होगया) (अग्नि भी) कल्ला (होकर)  
अपनी (लाट रूपी) जिह्वा से प्रकट होने लगा ॥१०॥

कई दिनों के मन्द प्रकाश के पीछे आज ऐसा प्रकाश होगया  
है कि उस की छाया भी पड़ने लगी है, सूर्य भी जो भयतक लाल  
रंग के दीखते थे आज सुवर्ण की न्याई पोले रंग के होगये हैं ।  
अग्नि जो घेड़े प्रकाश में खूब चमकती थी अब सूर्य के प्रकाश की  
अपेक्षा काली पड़ गई और केवल लाट से प्रकाशित होती है । यह  
दृश्य उत्तर मेरु के समीपस्थ देशों का है । जहां प्रस्कण्व आपि ने  
इस सूक्त को देखा प्रतीत होता है ।

अश्विनोदेवते, गायत्रीछन्दः । ८। ८। ८।

अभूदपारमेतवे पन्थाचतस्यसा

१ या । अदर्शिविस्रतिर्दिवः । ११ ।

अभूत्	अभूत्	हुआ
ऊम्०	(पूरण)	—
पारम्	पारम	पार
एतवे	गन्तुम् (तुमथें तरेन्)	जाने के लिए
पन्थाः	मार्गः	मार्ग
कृतस्य	यज्ञस्य	यज्ञ का
साधऽया	साधु. (सुपाबुद्धि तियाडादेशः)	अच्छा
अदर्शि	वि + अदर्शि	स्पष्ट दिखाई दी
वि	वि +	—
सुतिः	वीथिका	पगडंडी
द्विवः	द्विलोकस्य (आ०को०)	द्विलोक की

संस्कृतार्थः ।

पा० गन्तुं यज्ञस्य मार्गो साधुरभूत् (तेन निश्चिता)

द्विलोकस्य वीथिका सुस्पष्ट दृष्टाऽभवत् ॥११॥

मापार्थः ।

पार जाने के लिए यज्ञका अच्चारस्ता धनगया,  
(और) उसमें से निकली हुई दुलोक की पगडंडी  
दीखने लगी । ११

यहां पर यज्ञ वा सृष्टि नियम को एक विशाल राजमार्ग से  
उपमा दी है, जिस में से स्वर्गादि लोका की पगडंडियां निकलती  
हैं जो सूर्य के उदय होने से मय स्पष्ट दीखने लगीं ॥

अश्विनोदेवते, गायत्रीछन्दः ८।८।८॥

तत्तदिदश्विनोर्वो जरिताप्रति

भूषति मदेसोमस्यपिप्रतोः । १२ ।

तत्तत्	तत्तत्	उस उस को
इत्	अपि	भी
अश्विनोः	अश्विनोः	अश्विदेवताओं के
अवः	रक्षणम्	रक्षा को
जरिता	स्तोता	स्तुति करने वाला
प्रति	प्रति+	

भूषति	प्रति+भूषति पुनः	बार बार
मदे	पुनरलङ्करोति	अलङ्कृत करता है
सोमस्य	मदे	मद में
पिप्रतोः	सोमस्य	सोम के
	पूरयतोः	पूर्ण करने वालों के
	( पृ पूरणे )	
	संस्कृतार्थः ।	

स्तोता सोमस्य मदे पूरयतोरश्विनोस्तत्तद्रक्षणं  
पुनःपुनरलङ्करोति ॥१२॥

भाषार्थः ।

स्तुति करने वाला सोम के मद में पूर्ण करने  
वाले अश्विदेवताओं की उस उस रक्षा को बारबार  
अलङ्कृत करता है ॥ १२ ॥

जैसे किसी मित्र की प्रदान की हुई यह मुख्य वस्तु को मनुष्य बारबार दूसरों के सामने सजाकर रखता है, इसी प्रकार स्तोता सोम के आनन्द में अश्विदेवताओं की प्रदान की हुई प्रत्येक रक्षा को बार बार मित्रों के सामने वर्णन करता है ॥

अश्विनौ देवते, गायत्रीछन्दः । ८। ८। ८ ॥

वावसानाविवस्वति सोमस्यपी-

त्यागिरा । मनुष्वच्छम्भूआगतम् ॥१३॥

वावसाना	निवासशीलौ (विभक्तो राकारः)	निवास करने वाले
विवस्वति	दीप्तिमति ( आकाशे )	दीप्तिमान (आकाश) में
सोमस्य	सोमस्य	सोमके
पीत्या	पानार्थम्	पीने के लिए
गिरा	स्तुत्या	स्तुति से
मनुष्वत्	मनाविव (सप्तम्यर्थे वतिः)	जैसे मनु के पास
शम्भू	हे सुखस्य भावयितारौ (अन्तर्भावितपयर्थाद्भूः)	हे सुखके देनेवाले
आ	आ +	-
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम्	आओ

संस्कृतार्थः

हे दीप्तिमति (आकाशे) निवास शीलौ सुखस्य भावयितारौ (अश्विनौ!) (युवाम्) सोमं पातुं स्तुत्या मनाविव (अत्र) आगच्छतम् ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

हे दीप्तिमान आकाश में रहने वाले, सुख के

देने वाले (अश्विदेवताओ) (आप दोनों) सोम पीने  
के लिए स्तुति करने से (यहां) आओ जैसे (पूर्व  
काल में), मनु के पास (आते थे) ॥१३॥

अश्विनौ देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८।

युवोरुषाअनुश्रियं परिजमनोरुपा

चरत् । ऋतावनथोअक्तुभिः ।१४।

युवोः	युवयोः	तुम दोनों के
उषाः	उषाः	उषा
अनु	अनु	पीछे
श्रियम्	शोभाम्	शोभा को
{ परिजमनोः	परितोगन्त्रोः (अन्तर् मन्त्रिनिपात्यते)	चारों ओर चलने वालों के
{ उपश्रियं	समीपअगच्छत	समीप आर्ड है
{ चरत्		

च॒रुता॒	यज्ञान् (शेछोपः)	यज्ञों को
व॒न॒थः	कामयेथे	आप दोनों
२ अ॒न्तुऽभिः	रात्रिषु (सप्तम्यर्थे तृतीया)	कामना करते हैं रात्रियों में

संस्कृतार्थः ।

( हे अश्विनौ ) परितो गन्त्रोर्युवयोः शोभामनु  
(सूत्य)उपा अगच्छत् युवांरात्रिषु यज्ञान्कामयेथे॥४॥  
मापार्थः ।

(हे अश्विदेवताओ) चारों ओर चलने वाले आप  
की शोभा के पीछे पीछे उपा आई है आप रात्रियों  
में यज्ञों की कामना करते हो ॥ १४ ॥

(१) उत्तर मेरु समीपस्थ देशों में लम्बी रात्रि के अन्त में  
पहले प्रकाशसे मिले हुए तम रूपी अद्विदेवता, कई दिन तक आकाश  
में चारों ओर घूमते प्रतीत होते हैं फिर पीछे उपा की लाली प्रकट  
होकर कई दिन तक घूमती दिखाई देती है ॥

(२) रात्रि के देवता होने से अद्विदेव रात्रि में यज्ञ की का-  
मना करते हैं ॥

अश्विनौ देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८॥

उ॒भा॒पि॒व॒त॒म॒श्वि॒नो॒ भा॒नः॒श॒र्म॑

य॒च्छ॒त॒म् । अ॒वि॒द्रि॒या॒भि॒रु॒ति॒भिः॑ ॥१५॥

उ॒भा	उ॒भौ	आप दोनो
पि॒व॒त॒म्	पि॒व॒त॒म्	पीओ
अ॒ग्नि॒व॒ना	हे अ॒ग्नि॒व॒नौ	हे अ॒ग्नि॒व॒दे॒व॒ताओ
उ॒भा	उ॒भौ	आप दोनों
नः	अ॒स्म॒भ्य॒म्	हमारे लि॒ए
श॒र॒म्	श॒र॒ण॒म्	श॒र॒ण को
य॒च्छ॒त॒म्	द॒त्त॒म् (दाण्दाने, यच्छादेशः)	दो
{ अ॒वि॒द्रि॒- या॒भिः	वि॒द्रः छि॒द्रः, त॒द्र॒हि॒ता॒भिः	छि॒द्र र॒हि॒तों से
ऊ॒तिऽभिः	र॒क्षा॒भिः	र॒क्षाओं से

संस्कृतार्थः ।

हे अ॒ग्नि॒व॒नो ! उ॒भौ (यु॒वां सोम॒म्) पि॒व॒त॒म्,



फ० मं० १ सू० ४७ मं० १- ( ११५४ )

उभौ ( युवाम् ) छिद्र रहिताभीरक्षाभिरस्मभ्यं शरणं  
दत्तम् ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्विदेवताओ आप दोनों (सोम को) पीवें  
आप दोनों छिद्ररहित रक्षाओं से हमें शरण दें ॥ १५ ॥

इति षट् चत्वारिंशं सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ४७ ।

अश्विनौ देवते, कण्वपुत्रः प्रस्कण्व ऋषिर्वृहती  
छन्दः । ८।८।१२।८।

अयं वांमधुमत्तमः सुतः सोमः ऋता  
वृधा । तमश्विनापिवतंतिरो अङ्ग्य  
धुत्तरतनानिटाशुपे । १।

अयम्  
वाम्

अयम्  
युवाभ्याम्

यह  
तुम दोनों के लिये

{ मधुमत्ऽ तमः	अतिशयेनमाधु- र्यवान्	बहुत मिठास वाला
सुतः	निष्पीडितः	निचोड़ा हुआ
सोमः	सोमः	सोम
ऋतऽवृधा	हे ऋतस्यवर्धयि- तारौ ! (भन्तर्भावितण्यर्थः)	हे ऋत के बढ़ाने वालो
तम्	तम्	उसको
अश्विना	हे अश्विनौ !	हे अश्वि देवताओ
पिबतम्	पिबतम्	पीओ
{ तिरऽअ- क्षयम्	ह्यस्तनम्	कल वाले को
धत्तम्	धारतयम्	धारण करो
रत्नानि	रत्नानि	रत्नों को
दाशुषे	दत्तवते	देने वालेके ताई

संस्कृतार्थः ।

हे ऋतस्य वर्धयितारावश्विनो ! अतिमाधुर्यवानय सोमो युष्मदर्थं निष्पीडितः, ह्यस्तनं (सुतम्) तम् (सोमम्) पिबतम् (हविः) दत्तवते रत्नानि (श्च) धारयतम् ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले अश्विदेवताओ बहुत मिठास वाला यह सोम आप के लिए निचोड़ा गया है उस कलके (निचोड़े हुए सोम) को आप पीवें और (हवि) देने वाले के लिए रत्नों को धारण करें ॥१॥

यह सूक्त मातरनुद्याक में आग्नेय ऋतु के चार्हत छन्द में पढ़ा जाता है (आ० धौ० सू० ४।१५।२)

अश्विनो देवते, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथे-

नायातमश्विना । कण्वा सोवां ब्रह्म-

क्षणवन्त्यध्वरे तेषां सुशृणुतं हवम् । २ ।

त्रिऽवन्ध रेण	बन्धुराः नीडव न्धनाऽऽधारभूताः काष्ठविशेषाः, त्रयोबन्धुरायस्य तेन, त्रिरावन्ष्टितेन	पीढी बांधने के तीन डंडों से युक्त से
त्रिऽवता		
सुऽपेशसा	सुरूपेण (निघ० ११७)	सुन्दर से
रथेन	रथेन	रथ से
आ	आ+	-
यातम्	आ+यातम्	आओ
अश्विना	हे अश्विनौ !	हे अश्विदेवताओ
कणवासः	कणवाः	कण्व वंशी
वाम्	युवाभ्याम्	तुम दोनोंके लिए
ब्रह्म	मन्त्ररूपस्तुतिम्	मन्त्ररूप स्तुति को

कृ॒ण्व॒न्ति	कु॒र्व॒न्ति (कविकारण)	कर॒ते हैं
अ॒ध्व॒रे	य॒ज्ञे	य॒ज्ञ में
ते॒षाम्	ते॒षाम्	उनकी
सु	सु॒ष्टु	भली प्र॒कार
शृ॒णु॒तम्	शृ॒णु॒तम्	सु॒नो
हव॒म्	आ॒ह्वान॒म्	पु॒कार को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनो! त्रिवन्धुरेण त्रिरावेष्टितेन सूरूपेण  
रथेनाऽऽगच्छतम, कण्वा युवाभ्यां यज्ञे मन्त्ररूप  
स्तुतिं कुर्वन्ति, तेषामाह्वानं सुष्टु शृणुतम् । २ ।

भावार्थः ।

हे अश्विदेवताओ पीढ़ी बांधने के तीन डंडों से  
युक्त, तीन लपेटे वाले सुन्दर रथ से आओ, कण्व  
वंशी आप के लिए यज्ञ में मन्त्र रूप स्तुति को करते  
हैं उनका पुकार को भली रीति से सुनो ॥२॥

(१) त्रिवन्धुर और त्रिवृत की व्याख्या के लिए देखो पृ० ८५८ ।

अश्विनौदेवते, वृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८।

अश्वि॑व॒नामधु॑मत्त॒मं पा॒तंसोम॑मृता  
वृ॒धा । अथा॒द्यद॑स्त्राव॒सुविभ्र॑तारथे  
दा॒श्रवांस॒मुप॑गच्छ॒तम् । ३।

अश्वि॑व॒ना	हे अश्विनौ !	हे अश्वि देवताओ
{ मधु॑मत्त॒मम्	अति माधुर्य वन्तम्	बहुत मिठास वाले को
पा॒तम्	पिवतम्	पीओ
सोम॑म्	सोमम्	सोम को
च॒ट॒त॒वृ॒धा	हे ऋतस्यवर्ध यितारो (चन्तर्भावितपर्यर्थ)	हे ऋतके बढ़ाने वालो
अथ॑	अनन्तरम्	पीछे

अद्य	अद्य	आज
दत्ता	हे उग्रौ	हे भयानक (देवताओ)
वसु	धनम्	धन को
विभ्रता	धारयन्तौ (विभ्रतो राकारः)	धारण करते हुए
रथे	रथे	रथ में
दाप्रवांसम्	(हविः) दन्तवन्तम्	(हवि) देने वाले को
उप	प्रति	की ओर
गच्छतम्	प्राप्नुतम्	प्राप्त हों

संस्कृतार्थः :

हे ऋतस्य वर्धयितारानुग्रावद्विनौ ! (युवाम्) अतिमाधुर्यवन्तं सोमं पिवतम्, अनन्तरमद्य रथे धनं धारयन्तौ (हविः) दन्तवन्तम् (यजमानम्) प्रति प्राप्नुतम् । ३।

भाषार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले भयानक अश्वदेवताओ, आप दोनों बहुत मिठास वाले सोम को पीवें फिर आज रथमें धनको धारण करते हुए (हवि) देने वाले (यजमान) की ओर प्राप्त हों ॥ ३ ॥

अश्विनोदेवते, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८

त्रिषधस्येवर्हिषिविप्रववेदसा म-

ध्वायज्ञमिमिच्छतम् । कण्वासोवांसु-

तसोमाभिद्यवो युवांच्वन्तेअ-

श्विना । ४।

त्रिऽसधस्ये	त्रिषु (स्थानेषु) सहावस्थिते (मह्यब्दाद्यसधादेशः)	तीन स्थानों में इकट्ठी रखी हुई
वर्हिषि	दर्भे	पर कुशा पर
{ विप्रववे- दसा	हेसर्वज्ञो !	हेसब कुछ जानने वाला
मध्वा	मधुरेण (रसेन)	मीठे (रस) से
यज्ञम्	यज्ञम्	यज्ञ को
मिमिच्छतम्	सेक्तुमिच्छतम्	सींचने की इच्छाकरो



कण॒वा॒सः	कण॒वाः	कण॒व॒वंशी
वा॒म्	यु॒वाभ्याम्	तुम दोनों के लिए
सु॒तऽसो॒माः	सु॒तःसो॒मोयै॒स्ते	सोम निचोड़े हुए
अ॒भि॒द्य॒वः	दि॒वो॒द्देशाः	दु॒लोक के उद्देश
यु॒वा॒म्	यु॒वा॒म्	तुम दोनों को
ह॒व॒न्ते	आ॒ह्व॒यन्ते	बुलाते हैं
अ॒श्वि॒व॒ना	हे अ॒श्वि॒नो	हे अश्विदेवताओ

संस्कृतार्थः ।

हे सर्वज्ञा वश्विनो ! त्रिषु(स्थानेषु) सहाऽवस्थिते  
दर्भे मधुरेण (रसेन) यज्ञंसेक्तुमिच्छन्, युवयोः  
( निमित्तम् ) सुतसोमा दिवोद्देशाः कण्वा युवामाह्व-  
यन्त ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे सव कुछ जानने वाले अश्वि देवताओ, तीन  
स्थानोंमें इकट्ठी रखी हुई कुशा पर मीठे(रससे)यज्ञको

सींचनेकी इच्छा करो आपके(लिए)सोम निचोड़े हुए  
धुलोकके उद्देश वाले कण्ववंशी आपको चुलाते हैं ॥४॥

(१) वेदि पर पहले पश्चिम की ओर कुशा की एक तह  
बिछा कर कुशाओं के भग्न भाग को उकास कर पूर्व की ओर  
दूसरी तह उनके नीचे बिछाई जाती है, फिर इन के भग्न भाग को  
उकास कर तीसरी तह उस से पूर्व की ओर बिछाई जाती है,  
ऐसी कुशा पर अग्निदेव हमारे यज्ञ में मिठास को बरसायें ॥

(२) कण्ववंशी केवल इस लोक के सुख के लिए ही नहीं  
किन्तु परलोक के उद्देश से भी देवताओं को चुलाते थे ऐसे ही  
हमें भी करना चाहिए ॥

अश्विनौ देवते, बृहतीछन्दः । ८। १२। ८।

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं

युवमश्विना । ताभिः एव शस्माञ्चवतं-

शुभस्पती पातंसोममृतावधा ॥५॥

याभिः	याभिः	जिनसे
कण्वम्	कण्वम्	कण्व को
{ अभिष्टि	परित्राणैः	सहायताओं से
५भिः	(आ०को०)	

प्र	प्र +	-
आव॑तम्	प्र + आव॑तम् प्रकर्षेण॑रक्षित॑न्तो	खूब रक्षा की थी
यु॒वम्	यु॒वाम्	आप दोनों ने
अ॒श्वि॒वना॑	हे अ॒श्विनो॑	हे अश्वि देवताओ
ताभिः॑	ताभिः	उन से
सु॒	सु॒ष्टु	भली प्रकार
अ॒स्मान्	अ॒स्मान्	हम को
अ॒व॒त॒म्	रक्ष॑तम्	रक्षा करो
शु॒भः	शु॒भः +	-
प॒ती॒०	हे, शु॒भः + प॒ती ! हे सु॒क॒र्म्मणः॑ पाल॑नी	हे सुक॒र्म्म के पाल॑ने वालो
पा॒तम्	पि॒व॒तम्	पीओ
सो॒मम्	सो॒मम्	सोम को

<p><u>ऋतऽवधा</u></p>	<p>हे ऋतस्त वर्ध- यितारौ (अन्तर्मावितण्यर्थः)</p>	<p>हे ऋतके बढ़ाने वालो</p>
----------------------	---	--------------------------------

संस्कृतार्थः ।

हे ऋतस्य वर्धयितारौ सुकर्मणः पालकावश्विनौ  
युवां याभिः परित्राणोः कण्वं प्रकर्पेण रक्षितवन्तौ,  
ताभिरस्मान् सुष्ठुरक्षतम्, (अस्मद्वत्तम्) सोमम् (च)  
पिबतम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले सुकर्म के पालने वाले  
अश्विदेवताओ जिन सहायताओं से आपने कण्व  
को खूब रक्षा की थी उनसे हमारी भली प्रकार रक्षा  
करो (और हम से दिये हुए) सोम को पीओ ॥५॥

अश्विनौ देवते, सतो बृहती छन्दः । १२।८।१२।८

सु॒दा॒स॒द॒स्त्रा॒व॒सु॒वि॒भ्र॒ता॒र॒थे॒ पृ॒क्षो॑  
व॒ह॒त॒म॒श्वि॒व॒ना । र॒यि॒स॒मु॒द्रा॒दु॒त॒वा॒-  
दि॒व॒स्प॒त्य॒ स्मे॒ध॒त्तं॑ पु॒रु॒स्पृ॒ह॒म् ॥६॥

सु॒दा॒से	सु॒दा॒स॒ना॒म्ने॒राज्ञे॑ (व्यत्ययदृष्टान्दसः)	राजा सु॒दा॒सके॑ लिये
द॒स्त्रा	हे, उग्रो !	हे भयानक (देवताओ)
व॒सु	धन॑म्	धन को
वि॒भ्र॒ता	धारय॑न्तौ	धारण करतेहुए
रथे॑	रथे	रथ में
पृ॒च्छः	अन्न॑म् (निघं०२।७)	अन्न को
व॒ह॒त॒म्	अव॑हनम् प्रा॒पि॒त॒व॒न्तौ (भङ्गभावदृष्टान्दसः)	पहुँचाया
अ॒ग्नि॒व॒ना	हे अ॒ग्नि॒व॒नो !	हे अग्निदेवताओ
र॒यि॒म्	धन॑म्	धन को
स॒मु॒द्रा॒त्	अ॒न्त॒र॒क्षा॒त् (निघं०२।३।)	अन्तरिक्ष से
उ॒त	उत +	-
वा	उत + वा	अथवा

दिवः	दिवः+परि, द्युलो	द्युलोक से
परि	कस्य सकाशात् (आ०को०) +परि	
अस्मे	अस्मासु	हम में
धत्तम्	स्थापयतम्	स्थापन करो
पुरुःस्पृहम्	बहुभिः स्पृहणीयम्	बहुतों से इष्ट को

संस्कृतार्थः ।

हे उग्रावश्विनौ! (युवाम्) रथे धनं धारयन्तौ (यथा) सुदासे (राज्ञे) अन्नं प्रापितवन्तौ (तथैव) अन्तरिक्षाद् द्युलोकाद्वा (आहृत्य) बहुभिः स्पृहणीयं धनमस्मासु स्थापयतम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे भयानक अश्विदेवताओ रथमें धन को धारण कर आपने (राजा) सुदास के लिए अन्न पहुँचाया (वैसेही) अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक से (लाकर) बहुतों से इष्ट धन को हम में स्थापन करो ॥ ६ ॥

सुदास राजा, दिवोदास के पुत्र भार्य्य जाति के एक प्राचीन राजा थे, जिन्होंने ईन्द्र की सहायता से अपने अनार्य्य शत्रुओं को जीता था। यह बहुत दानी और प्रतापी राजा थे। इन की विजय और दान का वृत्तान्त अ० ७। १८ में वर्णन किया है ॥

अश्विनो देवते, बृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८।

यन्नासत्यापरावति यद्वास्थो-  
अधितुर्वशे । अतोरथेनसुवतानपा  
गतं साकंसूट्यस्यरश्मिभिः । ७।

यत्  
नासत्या  
परावति

यदि  
हे, अनृतरहितौ  
दूर देशे  
(निघ० ३। १६)

यदि  
हे झूठ से रहित  
दूरमें

यत्  
वा  
स्थः  
अधि  
तुर्वशे  
अतः

यत् +  
यत् + वा  
स्थः  
अधि +  
अधि + तुर्वशे  
समीपे (निघ० २। १६)  
ततः (भा० को०)

—  
अथवा  
हो  
—  
समीप में  
वहां से

रथेन	रथेन	रथ से
सुवृता	सुवर्त्तमानेन	हलके घूमने वाले
नः	अस्मान् (प्रति)	हमारे (समीप)
आ	आ +	—
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम् (शपोलुक्)	आओ
साकम्	सह	साथ
सूर्यस्य	सूर्यस्य	सूर्य के
रश्मिभिः	किरणैः	किरणों से

सस्कृतार्थः ।

हे अनृत रहितो ! (अश्विनो! युवाम्) यदि दूरे,  
यद्वा समीपे स्थः, ततः सूर्यस्य किरणैः सह सु-  
वर्त्तमानेन रथेनाऽस्मान्प्रत्यागच्छतम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे झूठ से रहित (अश्विदेवताओ) आप यदि



दूर हों अथवा समीप हों सूर्य की किरणों के सहित  
हलके घूमने वाले रथ से हमारे समीप आवें ॥७॥

सूर्य की किरणें "सव देवता" हैं (देखो श०ब्रा० ३।१।२।१२)  
और प्रत्यक्ष हमारे पास युलोक से आती हैं, अश्विदेवता भी उन  
किरणों के साथ हमारे पास आवें ॥

अश्विनौदेवते, सतोवृहतीछन्दः ॥२॥८॥१२॥८

अ॒र्वा॒ञ्च॒वा॒स॒प्त॒योऽ॒ध्व॒र॒श्चि॒यो

व॒ह॒न्तु॒स॒व॒ने॒दु॒प॒ । इ॒षं॒पृ॒ञ्च॒न्ता॒सु-

क्ता॒सु॒दान॒व॒ आ॒व॒र्हि॒सी॒द॒तं॒न॒रा॒ । ८॥

अ॒र्वा॒ञ्च॒वा॒-	अ॒र्वा॒ञ्च॒वा॒+	-
वा॒म्	यु॒वाम्	तुम दोनों को
स॒प्त॒यः	अ॒श्वाः (निघं० ॥४॥)	घोड़े
{ अ॒ध्व॒र॒ऽ-	यज्ञं प्रति गच्छन्तः	यज्ञ की
{ श्चि॒यः	धिष् गती मा०को०)	ओर जाने वाले

वहन्तु	अर्वाञ्चा+वहन्तु अभिमुखमान- यन्तु	सामने ले आ
सवना	सोमोत्सवान् (शेर्षोपः)	सोम के उत्सवों को
इत्	पूरणः ॥	-
उप	उप(लक्ष्य)	लक्ष रख कर
इषम्	बलम्	बल को
पृञ्चन्ता	सयोजयन्तौ (पृथीव्यम्पके, विभक्त राकारः)	संयुक्त करते हुए
सुऽकृते	सुकर्मकारिणे	सुकर्म करनेवाले के लिए
सुऽदानवे	सुष्टुदानयुक्ताय	बड़े दानी के लिए
आ	आ +	-
वर्हिः	दर्भे (अप्तम्यर्थे द्वितीया)	कुशा पर
सीदतम्	आ+सीदतम्, उपविशतम्	बैठो

नरा | हे नरौ ! | हे नरो

संस्कृतार्थः ।

हे नरौ ! यज्ञं प्रतिगच्छन्तोऽश्वाः सोमोत्तवानुप  
(लक्ष्य) युवामभिमुखमानयन्तु सुकर्मकारिणे सुष्ठु  
दानयुक्ताय(यजमानाय)बलं सयोजयन्तौ(युवाम्)दर्भे  
पूपविशतम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे नरो यज्ञ के प्रति जाने वाले घोड़े, सोम के  
उत्सवों को लक्ष करके आप को (हमारे) सामने ले  
आवें, भले कर्म और बहुत दान से युक्त (यजमान  
के) लिए बल को संयुक्त करते हुए आप कुशाओं पर  
बैठें ॥ ८ ॥

अश्विनो देवते, बृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८॥

तेन<sup>१</sup>नास<sup>२</sup>त्यागतं<sup>३</sup> रथे<sup>४</sup>न<sup>५</sup>सू<sup>६</sup>द्व्य<sup>७</sup>तवचा<sup>८</sup> ।  
येन<sup>९</sup>श<sup>१०</sup>प्रवटू<sup>११</sup>ह्य<sup>१२</sup>दृ<sup>१३</sup>शु<sup>१४</sup>प्रेवसु<sup>१५</sup> मध्वः<sup>१६</sup>सो-  
मस्य<sup>१७</sup>पीतये<sup>१८</sup> । ९ ।

तेन	तेन	उससे
नासत्या	हे, अनृतरहितौ	हे झूठ से रहित
आ	आ+	-
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम्	आओ
रथेन	रथेन	रथ से
{ सूर्य्यऽत्वा चा	सूर्य्यएवस्वग्यस्य तेन	सूर्य्य रूपी चर्म वाले से
येन	येन	जिससे
श्रवत्	निरन्तरम्	निरन्तर
ऊहयुः	प्रापितवन्त	प्राप्त कराया है
दाशुषे	(हवि.) दत्तवते	(हवि.) देने वाले के लिए
वसु	धनम्	धनको
मध्वः	मधुरस्य	मीठे के

सोमस्य	सोमस्य	सोम के
पीतये	पानार्थम्	पीने के लिये

सस्यतार्यः ।

हे अनृत रहितो ! (अश्विनो!) सूर्यरूपत्वग्यु-  
क्तेन येन रथेन (हविः) दत्तवत्ते (यजमानाय) निरन्तरं  
धनं प्रापितवन्तो, तेन मधुरस्य सोमस्य पानार्थम्  
(इह) आगच्छतम् ॥ ९ ॥

मापार्यः ।

हे झूठ से रहित (अश्विदेवताओ) सूर्य रूपी  
चर्म से युक्त जिस रथ से आपने (हवि) देने वाले  
(यजमान के लिए) निरन्तर धन को प्राप्त कराया है  
उससे मीठे सोम के पीने के लिए (यहां) आओ ॥९॥

(१) अश्विदेवताओं का ज्योति निर्मित रथ सूर्य रूपी चर्म-  
से घेष्टित है । वास्तव में इस पृथिवी पर सारी महिमा सूर्य की  
ही है, यही देवताओं का उत्पादक, यही उन का रथ, यही घोड़ा,  
यही मन्त्र, और उसी की विरणें सब देवता हैं ॥

अश्विनोदेवते, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८।

उक्थेभिरवागवसेपुरुवसू अर्के  
प्रचनिक्षयामहे । शप्रवत्कणवानांस

द॒सिप्रि॒येहि॒कं सोमं॑ प॒पथ॑ र॒षि॒वना॑ ॥१०॥

उ॒क्थेभिः॑	शस्त्रैः	होता से की हुई
अ॒र्वाक्	सम्मुखं ययास्या	स्तुतियों से सामने से
अ॒वसे॑	रक्षणार्थम्	रक्षा करने लिये
पू॒रु॒वसू॑	हे प्रभूत धनो	हे बहुत धनवालो
अ॒र्कैः	स्तोत्रैः	उद्गाता से की हुई स्तुतियों से
च॒	च	और
नि॒	नि +	-
ह्व॒याम॒हे	नि + ह्वयामहे, नितरामाह्वयामः	हमवार २ पुकारते हैं
श॒श्वत्	नित्यम्	सदा
क॒ण॒वानाम्	कण्वानाम्	कण्व वंशियों की
स॒द॒सि	सभायाम्	सभा में

प्रि॒ये.	प्रि॒ये	प्रि॒य मे॒ ..
हि॒	प्रसिद्धौ	यह प्रसिद्ध है
क॒स्	(पूरणः)	—
सो॒म॒म्	सोमम्	सोम को
प॒प॒थुः	पीतवन्तौ	पीआ है
अ॒प्रि॒व॒ना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ

संस्कारार्थः ।

हे प्रभूतधनावश्विनौ ! (वयम्) शस्त्रैः स्तोत्रैश्च  
(युवाम्) रक्षणाऽर्थं पुनः पुनः सम्मुखमाह्वयामः  
(युवाम्) कण्वानां प्रिये सदसि सर्वदा सोमं पीतवन्ता  
विति प्रसिद्धम् ॥ १० ॥

भाषार्थः ।

हे बहुत धन वाले अश्विदेवताओ, हम शस्त्र  
और स्तोत्रों से (आप को) रक्षा के लिए बार बार  
सामने बुलाते हैं, कण्ववंशियों की प्यारी सभा में  
आप ने सदा सोम पान किया है, ऐसा प्रसिद्ध है १०

इसलिए आशा है कि अब भी आप हम कण्ववंशियों का  
परित्याग नहीं करेंगे ॥

इति सप्त चत्वारिंशं सक्तम् ॥

## ऋ० मं० १ सू० ४८

उपोदेवता प्रस्कण्वद्गपिर्वृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८

स॒ह॒वा॒मे॒न॒न॒उ॒षो॒ व्यु॑च्छादुहि-  
त॒र्दिवः॑ । स॒ह॒द्यु॒म्ने॒न॒वृ॒ह॒ता॒वि॒भा॒वरि॑  
रा॒या॒दे॒वि॒दा॒स्व॒ती । १ ।

स॒ह	सह	साथ
वा॒मे॒न	प्रशस्येन (निघ० १। ८)	प्रशंसाके योग्य से
नः	अस्मान्	हम को
उ॒षः	हे उपः	हे उपा
१ वि	वि +	-
१ उ॒च्छ	वि + उच्छ,	प्रकट हो
दु॒हि॒तः	आविर्भव हे पुत्रि !	हे पुत्री



दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
सह	सह	साथ
द्यस्नेन	यशसा (निघ०४।१)	यश से
बृहता	महता	बड़े से
विभाऽवरि	हे विशेष दीप्ति युक्ते	हे विशेष दीप्ति वाली
राया	धनेन	धन से
देवि	हे देवि	हे देवी
दास्वती	दानवती	दानवती

संस्तरार्थः ।

हे द्युलोकस्य पुत्रि ! विशेष दीप्ति युक्ते ! उपः !  
अस्मदर्थं प्रशस्येन (भोगेन) सह महता यशसा धनेन  
(च) सह दानवती (त्वम्) आविर्भव । १ ।

मायार्थः ।

हे द्युलोक की पुत्री, विशेष दीप्ति वाली उपा

हमारे लिये प्रशंसा योग्य(भोग)के साथ बड़ेयश(और)  
धन के साथ दानवती (आप) प्रकट हों ॥ १ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में उपस्थित के चार्हत छन्द में पढ़ा  
जाता है (आ० थो० सू० ४ । १४ । २)

(१) 'व्युच्छ' का अर्थ उपा की लालीका खिलना या फूटना है  
(२) प्रकाश का दान देने वाली उपा हमारे लिए प्रति दिन महान्  
यश धन और ऐसे भोग जो भार्य्य जनों में प्रशंसा के योग्य हो  
लाती हुई मिलें ॥

उपोदेवता, सतोवृहतीछन्दः॥ १२।८।१२।८

अप्रवावतीर्गोमतीर्विप्रवसुविदो  
भूरिच्यवन्तवस्तवे । उदीरयप्रति-  
मासूनृताउष प्रचोदराधोमघोनाम् ।

अप्रवऽवतीः	अश्वैरुपेताः	अश्वों से युक्त
गोऽमतीः	गोभिर्युक्ताः	गोओं से युक्त
विप्रवऽसु	कृत्स्नस्यसुष्ठु- वेद्यः	सब को खूब जानने वाली
विदः		

भूरि	बहुवारम्	बहुत वार
च्यवन्त	प्राप्तवत्यः (च्युङ्गती, पङ्मावः)	प्राप्त हुई
वस्तवे	निवासाय (तवेन प्रत्ययः)	निवास के लिये
१ उत्	उत्+	—
२ ईरय	उत्-ईरय, ब्रूहि	कहो
प्रति	प्रति	प्रति
ना	नाम् ।	मुझ को
तूनुताः	प्रियसत्यवाचः	प्रिय और सत्य
२ उपः	हे उपः	वचनों को हे उपा
चोद	प्रेरय	प्रेरण करो
राधः	धनम् (निघं० २।१०)	धन को
१ सघोनाम्	धनवत्. (द्वितीयाथे पठ्ठी)	धनवानों को

संस्कृतार्थः ।

अइवै गौभः (च) युक्ता सर्वस्य सुष्ठु वेद्यः  
 (उपसोऽस्माभिः सह) निवासार्थं बहु वारं प्राप्ता अभ  
 वन् हे उपः ! माम्प्रति प्रियसत्य वाचः कथय धनवतः  
 (प्रति) धनम् (च) प्रेरय ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

घोड़े (और) गौओं से युक्त, और सब कों खूब  
 जानने वाली (उपाएं हमारे साथ) निवास के लिये  
 बहुत बार प्राप्त हुईं, हे उपा मेरे ताई प्रिय और  
 सत्य वचन कहो (और) धनियों (की ओर) धन को  
 प्रेरण करो ॥ २ ॥

(१) हम घोड़े से मनुष्यों को अधूरा सा जानते हैं, परन्तु  
 उपा सब को खूब जानती हैं, ऐसी गौ और घोड़ों वाली गत  
 उपाओं ने हमारे साथ बहुत बार निवास किया है। आज की उपा  
 उद्य होकर

(२) मुझ स्तुति करनेवाले के लिए सत्य और प्रिय वचनों को  
 कहे। मैं मनुष्यों की अप्रिय और असत्य पाणियों को न सुनूँ॥

(३) हमारी जाति के धनिकों की ओर उपा धन को प्रेरण  
 करे, जिस से उन के धन की सदा वृद्धि होती रहे ॥

उपोदेवता, निचृद्बृहतीछन्दः । ८। ७। १२। ८

उवासीपाउच्छाचनु देवीनी-

रारथानाम् । येअस्याआचरणेषुद-  
ध्रिरे,समुद्रेनश्रवस्यवः । ३ ।

उवास	निवासमकरोत्	निवास करती थी
उषाः	उषाः	उषा
उच्छात्	आविर्भवेत् (लेटघाडागमः)	प्रकट हो
च	अपि	भी
न	इदानीम्(भा०को०)	अब
देवी	देवी	देवी
जीरा	प्रेरयित्री (जयतेरक,ईकारान्त देशश्च)	प्रेरण करने वाली
रथानाम्	रथानाम्	रथों के
ये	ये	जिन्होंने ने
अस्याः	अस्याः	इसके

आचरणेषु	आगमनेषु	आगमनों में
दध्निरे	धृतवन्तः	लगाया है
समुद्रे	समुद्रे	समुद्र में
न	इव	की न्यांई
श्रवस्यवः	श्रवोधनं तदात्मन इच्छन्ति ते, धना ऽभिलाषिणः	धन की इच्छा करने वाले

संस्कृतार्थः ।

उपाः (पुराऽस्मत्समीपे) निवासमकरोत् रथानां  
प्रेरायत्री' (सा) देवीदानीमप्याविर्भवेत् ये (वयम्)  
अस्या आगमनेषु (मनः) धृतवन्तः, यथा धनाऽभि-  
लाषिणः समुद्रे (मनो धारयन्ति) ॥३॥

भाषार्थः ।

उपा (पूर्वकाल में हमारे पास) निवास करती  
थी रथों को प्रेरण करने वाली (वह) देवी आज भी  
प्रकट हो । जो (हम) उसके आगमन में (मन को)  
लगाए हुए हैं, जैसे धन की इच्छा करने वाले  
समुद्र में (मन को लगाते हैं) ॥ ३ ॥

(१) उषा के फूटने पर यात्रा के निमित्त यात्री लोग रथ जोड़ते हैं इसलिये उषा रथों की प्रेरक है ॥

(२) जैसे धन की इच्छा करने वाले समुद्र में चित्त लगाते हैं कि कब हमारे जहाज जो परदेशों में भाल लेकर गए हुए हैं धन से भरे हुए लौटेंगे वैसे ही हम भी उषा के फूटने की कई दिनों से प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥

उषोदेवता, विराट् सतोबृहतीछन्दः १११।८।१२।७

उषो॒यि॒ते॒प्र॒या॒मेषु॒यु॒ञ्ज॒ते॒ म॒नो॒दा॒-

ना॒य॒सू॒र॒यः । अ॒वा॒ह॒त॒त्क॒ण॒व॒एषां

क॒ण॒व॒त॒मो॒ ना॒म॒गु॒णा॒ति॒नृ॒णाम् ।४।

उषः	हे उषः	हे उषा
ये	ये	जो
ते	तव	तेरे
प्र	प्र+	-
यामेषु	आगमनेषु	आने पर
यञ्जते	प्र+युञ्जते	लगाते हैं

मनः	मनः	मन को
दानाय	दानाय	दान के लिए
सूरयः	स्तोतार (निघ० ३।१४)	स्तुति करने वाले
अत्र	अस्मिन् (काले)	इस (समय) में
अह	प्रशसया	प्रशंसा के साथ
तत्	तत्+	-
कण्वः	कण्व	कण्व -
एषाम्	एषाम्	इनके
कण्वऽतमः	कण्वानां ज्येष्ठः	कण्ववंशियों में सब से बड़ा
नाम	तत्+नाम	उस नाम को
गणाति	उच्चारयति	उच्चारण करता है
नृणाम्	नराणाम्	नरों के



संस्कृतार्थः ।

हे उपः, तवाऽऽगमनेषु ये स्तोतारो दानाय मनः  
प्रयुज्जते तेषां नराणां तन्नामं कण्वानां ज्येष्ठः कण्वो  
ऽस्मिन् काले प्रशंसयोच्चारयति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे उपा, आपके आने पर जो स्तोता लोग दान  
के लिए मन को लगाते हैं उन नर, (वीरों) के उन  
(लोक प्रसिद्ध) नाम को कण्वों में सब से बड़ा कण्व  
इस समय प्रशंसा के साथ उच्चारण करता है ॥ ४ ॥

अपि कहते हैं कि कण्ववंशियों में सब से ज्येष्ठ में उन स्तुति  
करने वाले महापुरुषों के नाम प्रशंसा के साथ उच्चारण करता  
है जो प्रभात के समय दान में चित्त को लगाते हैं ॥

उपोदेवता, बृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८

आघायोपैवसूनर्यु षायान्तिप्रभु-  
ञ्जती । जरयन्तीवृजनंपददीयतु  
उत्पातयतिपक्षिणः ॥ ५ ॥

आ

आ +

घ	खलु	सचमुच
१ योषाऽद्व	एहणीव	घरवाली को न्याई
सूनरी	सु(मार्गेण) नेत्री	अच्छे(रस्ते) चलाने वाली
उपाः	उपाः	उपा
याति	आ+याति	आती है
{ १ प्रभुञ्ज ती	प्रकर्षेणपालयन्ती (भुजपाशने)	उत्तमता से पा- लती हुई )
१ जरयन्ती	जरां प्रापयन्ती	बुढ़ापे को प्राप्त कराती हुई
१ वृजनम्	जङ्गमम् (पा० को०)	चलने वाले को
१ पत्स्वत्	पादयुक्तम्	पैरों से युक्त को
१ ईयते	प्रेरयति (चन्तर्भावितपर्ययः)	प्रेरण करती है
१ उत्	उत्+	-

१ पातयति	उत्+पातयति	उड़ाती है
१ पक्षिणः	पक्षिणः	पक्षियों को

संस्कृतार्थः ।

सु(मार्गेण)नेत्र्युपा गृहणीव प्रकर्षेण पालयन्ती  
जङ्गमं जरां प्रोपयन्त्याऽऽयाति(सा) पादयुक्तं(प्राणि-  
जातंस्वकर्मणि) प्रेरयति पक्षिणः(च) उत्पातयति ॥५॥

मापार्थः ।

अच्छे (रस्ते) चलाने वाली उपा घर वाली  
की न्याईं उत्तमता से पालती हुई, चलने वाले  
(जीवों) को घुटापा प्राप्त कराती हुई आती है वह  
पैरों वाले (प्राणिसमूह को अपने कर्म में) प्रेरण  
करती है (और) पक्षियों को उड़ाती है ॥ ५ ॥

(१) उपा सुघड़ स्त्री की म्याईं सब का पालन करती हुई  
आती है यह देवी हमारा भी पालन करेगी ॥

(२) प्रत्येक उपा के फटने पर जङ्गम जीव घुटापे की ओर  
सरकते जाते हैं, इस लिए हमें प्रत्येक पौ फटने पर परलोक साधन  
के लिए ध्यान आना चाहिए ॥

(३) उपा के फूटने पर पैरों वाले पशु और मनुष्य चलने  
और पक्षी उड़ने के लिए घेप्टा करते हैं ॥

उषोदेवता, सतोबृहतीछन्दः । १२।८।१२।८।

वि॒यासृ॒जति॑ सम॒नं व्य॑र्धि॒नः । प॒-  
दं न वे॒त्योद॑ति । व॒यो न कि॑ष्टे प॒प्ति-  
वां स॒ आस॑ते व्यु॒ष्टौ वा॑ जिनीवति । ६।

वि	वि+	-
या	या	जो
सृजति	वि + सृजति, प्रेरयति	प्रेरण करती है
समनम्	सङ्ग्रामम् (निघ० २।१७)	युद्ध को
वि	वि + (सृजति) प्रेषयति	भेजती है
अर्थिनः	कार्यवतः	काम वालों को
पदम्	स्थानम्	स्थान को

न	न	नहीं
वेति	कामयते	कामना करती है
ओदती	प्रवहन्ती (उन्दीक्षणो)	वेग से चलती हुई
वयः	पक्षिणः	पक्षी
नकिः	न	नहीं
ते	तव	तेरे
पप्तिऽवांसः	पतनशीलाः (पल्लगती)	उडने वाले
आसते	आसते	बैठते हैं
विऽउष्टौ	आविर्भावे	प्रकट होने पर
वाजिनीऽ- वति	हे अन्नबहुले (अ० १।३।१०)	हे बहुत अन्नवाली

संस्कृतार्थः ।

पा(उपाः)सङ्ग्रामं प्रेरयति कार्यवतः(च स्वकर्मणि)

प्रेषयति (सा) प्रवहन्ती(सती विश्राम- )स्थानं नेच्छति  
हे अन्न बहुले ! तत्राऽऽविभावि पतनशीलाः, पक्षिणः  
(स्वनीडेपु) नाऽऽसते ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

जी (उपा) सङ्ग्राम को प्रेरण करती है (और)  
काम वालों को (अपने काम पर) भेजती है (वह)  
वेग से चलती (हुई विश्राम) स्थान को नहीं चाहती  
हे बहुत अन्न वाली आपके प्रकट होने पर उड़ने  
वाले पक्षी (अपने घोंसलों में) नहीं बैठते ॥६॥

(१) रात्रि के समय युद्ध भी बन्द होजाते हैं और पौ फटने  
पर फिर आरम्भ होते हैं ॥

(२) जल के प्रवाह को न्याई उपा विश्राम को नहीं चाहती  
किन्तु बराबर चलती रहती है और बारी बारी सब देशों में  
प्राप्त होकर बहा के रहने वाले जीवों को जगा कर अपने अपने  
काम में प्रेरण करती है ॥

उपोदेवता, बृहतीछन्दः । ८।८।१२।८

एषायुक्तपरावतः सूर्यस्योदय-

नादधि । शतरथेभिः सुभगोषाङ्ग्यं

वियाह्यभिमानुषान् ॥७॥

एषा	एषा	इस ने
अयुक्त	योजितवती	जोड़ा है
पराऽवतः	दूर (देशे) नि० ३।२६)	दूर
सूर्यस्य	सूर्यस्य	सूर्य के
{ उत्त० अय- नात्	उदयनात् + आध उदेत्यत्रेत्युदयनं तस्माद् उदयस्था नात् (अधिकरणेत्युट)	उदय स्थान से
अधि	अधि +	-
शतम्	शतैः (शतीयार्थे प्रथमा)	सौ से
रथेभिः	रथैः	रथों से
सुभगा	सौभाग्यवता	सौभाग्य वाली
उषाः	उषाः	उषा

इयस्	इयम्	यह
वि	वि+	-
याति	वि + याति, प्रयाणं करोति	गमन करती है
अभि	प्रति	की ओर
मानुषान्	मानुषान्	मनुष्यों को

संस्कृतार्थः ।

एषा सूर्यस्योदयस्थानाद्दूरदेशे(स्थान्) योजित  
यती, इयं सोभाग्यवत्युषा मनुष्यान् प्रति शते रथैः  
प्रयाणं करोति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

इसने सूर्य के उदय स्थान से दूर देश में (रथों  
को) जोड़ा है यह सोभाग्य वाली उषा सो रथों से  
मनुष्यों की ओर गमन करती है ॥ ७ ॥

(१) सोभाग्यवती उषा सूर्य के उदय स्थान से दूर देश में  
रथों को जोड़कर लाखों और सुनहरी प्रकाश रूपी सैकड़ों रथों  
से मनुष्यों के प्रति जाती है ॥

जो मरुत वेसे समय में पड़े सोते रहते हैं उनका भाग्य  
कैसे उदय हो सकता है ॥



उपोदेवता, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८॥

वि॒श्व॑म॒स्याना॒नाम॒ चक्ष॑से॒ जग॑  
ज्योति॑ष्क॒णोति॑सू॒नरी॑ । अप॒क्षे॑षो  
म॒घोनी॑दु॒हिता॒दिव॒ उ॒षा॑उ॒च्छ॒दप॑-  
स्त्रि॒धः । ८॥

वि॒श्व॑म॒	सर्व॑म्	सम्पूर्ण
अ॒स्याः	अस्याः	इसके
१ न॒ना॒म॒	ननाम	झुका है
१ चक्ष॑से	दर्शनाय	दर्शन के लिये
जग॑त्	जगत्	जगत्
ज्योति॑ः	प्रकाशम्	प्रकाश को
कृ॒णोति॑	करोति(कृषिकरणे)	करती है

सूनरी	सु(मार्गेण)नेत्री	अच्छे (रस्ते) चलाने वाली
अप	अप+	-
१ द्वेषः	द्वेष्टृन्	द्वेष रखने वालों को
मधोनी	धनवती (धनमिति धनं नाम निघ० २।१०।)	धन वाली
दुहिता	पुत्री	पुत्री
दिवः	दुलोकस्य	दुलोक की
उषाः	उषाः	उषा
१ उच्छत्	अप+उच्छत् निराकुर्यात् (अन्तर्भावितार्थः, (लिङ्गैलङ्)	दूर करे
अप	अप+उच्छत् नवारयेत्	हटावे
स्त्रिधः	हिंसकान् (त्रिधहिंसायाम्)	पीड़ा देने वालों को

संस्कृतार्थः ।

सर्वं जगदस्यादर्शनाय नमामः, सु ( मार्गेण )

नेत्री (सा देवी) प्रकाशं करोति, द्युलोकस्य पुत्री धनव-  
त्युपाः (अस्माकम्) द्वेष्टृन् निराकुर्यात् हिंसकान् (च)  
निवारयेत् ॥८॥

भाषार्थः ।

सारा जगत् इसके दर्शन के लिए झुका है, सु (मार्ग)  
में ले चलने वाली (यह देवी) प्रकाश को करती है, द्यु-  
लोक की पुत्री धन वाली उपा (हमसे) द्वेष रखने वालों  
को दूर करे (और) हमें पीड़ा देने वालों को हटावे ॥८॥

(१) ज्युं ज्युं पृथिवी (अपनी दैनिक गति में) पूर्ण की ओर  
झुकती है त्यों त्यों पृथिवी के नाना देशों में क्रम से उपा का दर्शन  
होता है ॥

(२) हम सब नित्य प्रति पौ फटने पर उपासना किया करें-  
तीं, शीघ्र हम से द्वेष रखने वालों और हमें पीड़ा देने वालों का  
नाश हो जावे ॥

उपोदेवता, बृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८॥

उप॒ आभा॑हि॒ भानु॑ना च॒न्द्रेण॑ दु-  
हित॑ दि॒वः । आव॑हन्ती भूर्य॒ समभ्यं॑-  
सौ॒ भगं॑ व्युच्छन्ती दि॒वि॒ ण्डि॑षु । ९॥

उपः	हे उपः	हे उपा
आ	समन्तात्	चारों ओर से
भाहि	प्रकाशस्व	चमको
भानुना	प्रकाशेन	प्रकाश से
चन्द्रेण	आल्हादकेन	आनन्द देने वाले से
दुहितः	हे पुत्रि !	हे पुत्री
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
{ आवहन्ती	आनयन्ती	लाती हुई
भूरि	प्रभूतम्	बहुत
अस्मभ्यम्	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
सौभाग्यम्	सौभाग्यम् (उत्तरपदवृद्धयभावशाला न्दसः)	सौभाग्य को

{ वि० च० च० न्ता }	आविर्भवन्ती	प्रकट होती हुई
दिविष्टिषु	यज्ञेषु (अ० १४३५७)	यज्ञों में

संस्कृतार्थः ।

हे द्युलोकस्य पुत्री ! हे उपः ! अस्मभ्यं प्रभूतं सौभाग्यमानयन्ती (अस्माकम्) यज्ञेषु (च) आविर्भवन्ती (त्वम्) आल्हावकेन प्रकाशेन समन्तात् प्रकाशस्व ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे द्युलोक की पुत्री ! हे उषा ! हमारे लिए बहुत सौभाग्य को लाती हुई (और हमारे) यज्ञों में प्रकट होती हुई (आप) आनन्द देने वाले प्रकाश से सब ओर चमकें ॥ ९ ॥

उपोदेवता, सतोबृहतीछन्दः । १२।८।१२।८॥

विप्रवस्यहि प्राणं जीवन्तवे वि-  
यदच्छसि सूनरि । सानोरथेन बृहता  
रविभावरि शुधिचित्रामघे हवम् । १० ।

वि॒प्र॒व॒स्य	सर्व॑स्य	सम्पूर्ण के
हि	एव	ही
प्रा॒ण॒न॒म्	चेष्ट॑नम्	चेष्टा करना
जी॒व॒न॒म्	जीवन॑म्	जीवन
त्वे०	त्वयि	तुझ में
वि	वि +	-
यत्	यत्	जो -
उ॒च्छ॒सि	वि+उच्छ॑सि	प्रकट होती है
सू॒न॒रि	आविर्भव॑सि	
सा	हे सु॒(मार्गे॑ण)	हे सु॒(मार्गे॑से ) ले
नः	नेत्रि॑	चलने वाली
रथे॑न	सा	वह
बृ॒ह॒ता	अस्मान्	हम को
	रथे॑न	रथ से
	मह॑ता	बड़े से

विभाऽवरि	हेविशेषदीप्तियुक्ते	हे विशेष दीप्ति वाली
श्रुधि	शृणु	सुनो
चित्रऽमघे	हे विचित्रधनवति	हे अनेक प्रकार के धन वाली
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः ।

हे सु (मार्गेण) नेत्रि ! यत् (त्वम्) आविर्भवसि,  
(तस्मात्) त्वय्येव सर्वस्य चेष्टनं जीवनं (च वर्तते) हे  
विशेष दीप्ति युक्ते ! हे विचित्र धनवति ! सा (त्वम्)  
अस्मान् (प्रति) महता रथेन (आगत्यास्मदीयम्)  
आह्वानं शृणु ॥१०॥

भाषार्थः ।

हे सु ( मार्ग से ) ले चलने वाली ! जो आप  
प्रकट होती हैं (इससे)आपमें ही सब की चेष्टा और  
जीवन है, हे विशेष दीप्ति वाली, हे अनेक प्रकार  
के धनवाली, वह (आप) हमारी ओर घड़े रथ से  
(आकर हमारी) पुकार को सुनें ॥ १० ॥

( १२०१ ) ऋ० मं० १ सू० ४८ मं० ११

उपोदेवता, बृहतीछन्दः । ८।८।१२। ८

उपो॒वाजं॑हि॒वंस्व॒ यश्चि॒त्रो॒मानु॑-  
 षे॒जने॑ । तेना॒वह॑सु॒कतो॑अ॒ध्वरा॑उप  
 येत्वा॑गृ॒णन्ति॑व॒क्त्रयः॑ ॥११॥

उपः ;	हे उपः!	हे उपा
वाजम्	अन्नम्	अन्न को
हि	खलु	सचमुच
वंस्व	कामयस्व (भा०को)	कामना करो
यः	य.	जो
चित्रः	विविधरूपः	नाना प्रकार का
मानुषे	मानुषे+	-
जने	मानुषे+जने मनुष्य समूह	मनुष्यों में



भाषार्थः ।

हे उषा मनुष्यों में जो नाना प्रकार का अन्न (है) उसकी कामना करो, उससे जो (हवि के) पहुँचाने वाले (ऋत्विज्) आपकी स्तुति करते हैं, उनको सुकर्म करने वाले के यज्ञों की ओर लाओ ॥११॥

१) उषा हमारे हविष्मत् अन्नों से प्रसन्न होकर अपने स्तुति करने वाले देव भक्त ऋत्विजों को हमारे यज्ञों की ओर प्रेरण करे जिससे हमारे यह अच्छी प्रकार सिद्ध हों ।

उषोदेवता, सतोबृहतीछन्दः । १२।८।१२।८

वि॒श्वान् दे॒वाँ आ॒व॒ह॒सी॒मपी॒तये  
 ऽन्तरि॑क्षादु॒ष॒स्त्वम् । सा॒स्मा सु॒धा  
 गो॒मद॒श्वा॒वदु॒कथ्य॑ १ मु॒षी॒वाजं॑ सु॒वी॒र्य॑म् ॥१२॥

वि॒श्वान्	सर्वान्	सब को
दे॒वान्	देवान्	देवताओं को
आ	आ+	-

वह	आ+वह	लाओ
सोमऽपीतये	सोमपानार्थम्	सोम पीनेके लिए
{ अन्तरिक्षा त	अन्तरिक्षात्	अन्तरिक्ष से
उपः	हे उपः !	हे उपा
त्वम्	त्वम्	तू
सा	सा	वह
अस्मासु	अस्मासु	हम में
धाः	निधेहि	स्थापन करो
गोऽमत्	गोभिर्युक्तम् (विमनेर्लुक्)	गोओं से युक्त को
अश्वऽवत्	अश्वैर्युक्तम्	घोड़ों से युक्त को
उक्थ्यम्	स्तुतियोग्यम्	स्तुतिके योग्य को

उपः	हे उपः!	हे उपा
वाजम्	अन्नम्	अन्न को
सुवीर्यम्	अतिवीर्योपेतम्	बहुत वीरता देने वाले को

संस्कृतार्थः ।

हे उपः ! अन्तरिक्षात्सर्वान् देवान् (अत्र) सोम-  
पानार्थमानय, हे उपः ! सा त्वं गोभिरश्वैः ( च )  
युक्तं स्तुतियोग्यमतिवीर्योपेतम् ( च ) अन्नमस्मासं  
निधेहि ॥१२॥

भाषार्थः ।

हे उपा अन्तरिक्ष से सब देवताओं को (यहां)  
सोम पीने के लिये लाओ हे उपा वह आप गोओं  
(और) घोड़ों से युक्त स्तुति के योग्य (और) बहुत  
वीरता देने वाले अन्न को हममें स्थापन करो ॥१२॥

उपादेवता, बृहतौछन्दः । ८।८।१२।८

यस्यारुशन्तो अर्चयः प्रतिभद्राः

अदृ॒क्ष॒त । सा॒नो॒र॒यि॒वि॒श्व॒वा॒रं॒सु॒पे-

श॒स॒मु॒षा॒द॒दा॒तु॒सु॒ग॒म्य॒म् ॥१३॥

यस्याः	यस्याः	जिस के
रु॒श॒न्तः	देदीप्यमानाः (मा०को०)	खूब चमकते हुए
अ॒र्च॒यः	प्रकाशाः	प्रकाश
प्र॒ति	प्रति +	-
भ॒द्राः	मङ्गलरूपाः	मङ्गल रूप
अदृ॒क्ष॒त	प्रति+अदृक्षत	देखे गए
सा	सा	वह
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई
र॒यि॒म्	धनम्	धन को

{ विप्रवत्सवा रम्	विश्वैर्विद्यतइति (कर्मणिघञ्)	सब से बरने योग्य को
सुऽपेशसम्	शोभनरूपोपेतम् (निघ० ११७)	मनोहर रूप वाले को
उषाः	उषाः	उषा
ददातु	ददात	देवे
सुगम्यम्	सुखेनप्राप्तव्यम्	सुख से प्राप्त हाने वाला को

संस्कृतार्थः ।

यस्या देदीप्यमानाः प्रकाशः मङ्गलरूपा दृष्टाः  
सोपाः सर्वैर्वरणीयं शोभनरूपोपेतं सुखेनप्राप्तव्यं  
धनमस्मभ्यं ददातु ॥१३॥

भाषार्थः ।

जिसके खूब चमकते हुए प्रकाश मङ्गल रूप देखे  
गए हैं वह उषा सब से बरने योग्य मनोहर रूप  
वाले सुख से प्राप्त होने वाले धन को हमारे ता-  
दे ॥ १३ ॥

( १ ) उषाके प्रकाश सदा मङ्गल रूप देखे गए हैं । उनसे दूमी  
उषासक बन ममङ्गल नहीं हुआ ।

क्र०मं०१सू०४८मं०१४ (- १२०८ )

उपोदेवता, सतोवृहती छन्दः ॥१२॥१२॥८॥

ये॒ त्रि॒ द्वि॒ त्वा॒ मृ॒ प॒ यः॒ पूर्॒ व॒ ऊ॒ त॒ ये

जु॒ हू॒ रे॒ ऽव॒ से॒ म॒ हि॒ । सा॒ नः॒ स्तो॒ मां॒ अ॒ भि॒

गु॒ णी॒ हि॒ रा॒ ध॒ सो॒ षः॒ शु॒ क्र॒ ण॒ शो॒ चि॒ षा॒ ॥१४॥

ये  
चि॒ त्  
हि  
त्वा॒ म्  
मृ॒ प॒ यः  
पूर्॒ व॒  
ऊ॒ त॒ ये  
जु॒ हू॒ रे  
अ॒ व॒ से

ये  
अ॒ पि  
ख॒ लु  
त्वा॒ म्  
मृ॒ प॒ यः  
पु॒ रा॒ त॒ नाः  
र॒ क्ष॒ णा॒ र्थ॒ म्  
आ॒ हू॒ त॒ व॒ न्तः  
अ॒ न्ना॒ र्थ॒ म्  
(निरं० ३०३)

जो  
भी  
स॒ च॒ मु॒ च  
तु॒ झ॒ को  
मृ॒ पि  
प्रा॒ ची॒ न  
र॒ क्षा॒ के॒ ल॒ ष  
घु॒ ला॒ ते॒ धे  
वा॒ न्न॒ के॒ लि॒ ष

महि	हे पूजनीये	हे पूजने योग्य
सा	सा	वह
नः	अस्माकम्	हमारे
स्तोमान्	स्तोत्राणि	स्तोत्रों को
अभि	अभि+	—
गुणीहि	अभि+गुणीहि	उत्तर दो
राधसा	प्रति शब्दय धनेन	धन से
उपः	हे, उपः	हे उपा
शुक्लेण	शुभ्रेण	उज्ज्वल से
शोचिषा	तेजसा	तेज से

संस्कृतार्थः ।

हे पूजनीये ! ये खलु पुरातना ऋषयोऽपि  
 रक्षणायाऽन्नाऽर्थं (च) त्वामाहूतवन्तः, हे उपः सा  
 (त्वम्) अस्मदीयानि स्तोत्राणि धनेन शुभ्रेण तेजसा  
 (च) प्रतिशब्दय ॥१४॥

अ० मं० १ सू० ४८ मं० १५ ( १२१० )

भाषार्थः ।

हे पूजनीय जो सचमुच प्राचीन ऋषि भी अन्न (और) रक्षा के लिए आप को बुलाते थे हे उषा सो (आप) हमारे स्तोत्रों का धन और उज्ज्वल तेज से उत्तर दें ॥१४॥

(१) अर्थात् स्तोत्रों के बदले में हमें धन और उज्ज्वल तेज दो उपोदेवता, बृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८॥

उषो॒यद॒द्यभानुना॒ वि॒द्वारा॒वृण॒वो

दि॒वः । प्र॒नो॒यच्छ॒ताद॒वृकं॒ पृथु॒च्छ॒र्दिः

प्र॒दे॒वि॒गोम॒तीरि॒षः । १५॥

उषः	हे उपः	हे उषा
यत्	यत्	जो
अद्य	अद्य	आज
भानुना	दीप्त्या	प्रकाश से
वि	वि	



१ द्वारौ	द्वारौ	दोनों द्वारों को
ऋणवः	व+ऋणवः, उद्घाटितवती (ऋणघातोर्लङिछान्द- संख्यम्)	खोला है
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
प्र	प्र+	-
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई
यच्छतात्	प्र + यच्छतात्, देहि	दीजिए
अवकम्	हिंसक रहितम्	हिंसक से रहित
पृथ	विस्तृतम्	को चौड़े को
हृदिः	गृहम् (निघं०३।४)	घर को
प्र	प्र(देहि)	दीजिये
देवि	हे देवि!	हे देवि
गोऽमतीः	गोभिर्युक्तानि	गौओं से युक्त को

इषः । अन्नानि । अन्नो को

संस्कृतार्थः ।

हे उपः ! यद्य (त्वम्) दीप्त्या ब्रूलोकस्य द्वारा, बुद्ध्यादितवती (सात्वम्) अस्मभ्यं हिंसकरहितं, विस्तीर्णं गृहं, गोभिर्युक्तान्यन्नानि (च) प्रदेहि ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

हे उषा जो आज (आपने) प्रकाश से ब्रूलोक के दोनों द्वारों को खोला है (सो आप) हमारे ताड़ हिंसकों से रहित चोडे घर को (ओर) गौओं से युक्त अन्नो को दीजिये ॥ १५ ॥

(१) दोनों द्वार अर्थात् जहां पूर्व और पश्चिम में आकाश पृथिवी से मिलता हुआ दीप्तता है ॥

उपोदेवता, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८।

संनोरायावृहताविश्वपेशसांमि

मिद्धवासमिळाभिरा । संद्यम्नेनवि

प्रवतुरोषोमहि संवाजैर्वाजिनीवति

॥१६॥

सम्	सम्+	-
जः	अस्मान्	हम को
राया	धनेन	धन से
वृद्धता	महता	बड़े से
{ विप्रवऽपे	सर्वरूपेण	सब रूपों वाले से
{ शसा		
मिमिक्ष्व	सम्+मिमिक्ष्व, संयोजय (ध्यत्ययेनात्मनेपदम्)	संयुक्त कौजिये.
सम्	सम् (योजय)	-
इळाभिः	गोभिः(निघ०२।१।)	गौओं से
आ	समुच्चयार्थः	और
सम्	सम्(योजय)	संयुक्त कौजिये

द्यु॒स्ने॒न॑	प्र॒तापे॒न (आ०को०)	प्र॒ताप॑ से
वि॒ब्र॒व॒ऽत्स॑रा	वि॒श्वे॒पां (शत्रू॒णाम्)	सम्पूर्ण (शत्रुओं) के
	तू॒र्हि॒स॒क॒स्ते॒न	नाश करने वाले से
उ॒षः	हे उ॒षः	हे उषा
म॒हि	हे पू॒जनी॑ये	हे पूज्य
स॒म	स॒म् (यो॒जय)	संयुक्त की जिये
वा॒जैः	अ॒न्नैः	अन्नों से
वा॒जि॒नी	हे अ॒न्न ब॒हुले॑	हे बहुत अन्न
{ ऽव॒ति॒		वाली

संस्कृतार्थः ।

हे उषः ! सर्व रूपेण महता धनेनाऽऽस्मान् संयोजय गोभिः ( च ) संयोजय, हे पूजनीये सर्वेषाम् ( शत्रूणाम् ) हिंसकेन प्रतापेन ( अस्मान् ) संयोजय, हे अन्न बहुले ! अन्नैः ( अस्मान् ) संयोजय ॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

हे उषा सब प्रकार के बड़े धन से हम को संयुक्त



१ दि॒वः	द्यु॒लोकात्	द्यु॒लोक से
१ चि॒त्	अपि	भी
रो॒च॒नात्	रोचनात्+अधि	प्रकाश युक्त से
अधि	दीप्यमानात्	
	+ अधि	-
व॒ह॒न्तु	प्रापयन्तु	पहुँचावें
{ अरु॒णाऽ-	अरुणवर्णाः	लाल रङ्ग वाले
{ प॒सवः	(पूरिति रूपनाम ति० १३१७)	
उप	प्रति	की ओर
त्वा	त्वाम्	तुझ को
सो॒मि॒नः	सोमयाजिनः	सोमयाजी के
गृ॒हम्	गृहम्	घर को

संस्कृतार्थः ।

हेउपः ! (त्वम्) दीप्यमानाद्द्युलोकादपि कल्याणैः

(मार्गैः) आगच्छ, त्वामरुणवर्णाः (अश्वाः) सोमया-  
जिनो गृहं प्रति प्रापयन्तु ॥ १ ॥

मापार्यः ।

हे उपा (आप) प्रकाश युक्त द्युलोक से भी शुभ  
(मार्गों से) आवे, आप को लाल रङ्ग वाले (घोड़े  
सोमयाजी के घर की ओर पहुंचावे ॥ १ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में उपस्य क्रतु के अनुष्टुप्छन्द में  
पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू०४१४२)

(१) द्युलोक से भी, अर्थात् यद्यपि उपा पृथिवी से बहुत दूर  
द्युलोक में है, वहां से भी सोमयाजी के घर में आकर सोमपान करे ॥

उपोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८

सुपेशसंखरथं यमध्यस्थात्त-

षस्त्वम् । तेनासुश्रवसंजनं प्रावाद्य-

दुहितर्दिवः । २ ।

सुपेशसम्	शोभनरूप युक्तम् (नि०८।११)	सुन्दर रूप से
सुखम्	सुखकरम्	युक्तको सुख देने वाले ६

रथम्	रथम्	रथ को
यम्	यम्	जिस को
{ अधिऽअ- स्थाः	अध्यतिष्ठः	वैठी हो
उषः	हे उषः	हे उषा
त्वम्	त्वम्	तू
तेन	तेन	उत्तसे
सुऽश्रवसम्	शोभनकीर्ति युक्तम्	सुन्दर कीर्ति वाले को
जनम्	मनुष्यम्	मनुष्य को
प्र	प्र +	-
अव	प्र+अव, प्रकर्षेण रक्ष	खू चरक्षा करो
अद्य	अद्य	आज
दुहितः	हे पुत्रि !	हे पुत्री



दिवः | द्युलोकस्य | द्युलोक की

संस्कृतार्थः ।

हे द्युलोकस्य पुत्रि ! उपः ! त्वं शोभनरूपयुक्तं  
सुखकरं यं रथमध्यतिष्ठस्तेन (रथेनागत्य) अद्य शो-  
भनकीर्तियुक्तं मनुष्यं प्रकर्षेण रक्ष ॥२॥

माषार्थः ।

हे द्युलोक की पुत्री उपा ! आप सुन्दर रूप से  
युक्त सुख देने वाले जिस रथ के ऊपर बैठी हो उस  
(रथ से आकर) आज सुन्दर कीर्ति से युक्त मनुष्य  
की खूब रक्षा करो ॥ २ ॥

उपोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

वय॑श्चि॒त्तेप॒त॒त्रि॒णो॑ द्वि॒प॒च॒च॒तु॒-  
ष्ट॒प॒द॒र्जु॒नि । उ॒षः॑ प्रा॒र॒न्नु॒तर॑नु॒द्वि॒वो  
अ॒न्ते॑भ्य॒स्परि॑ । ३।

वयः	पक्षिणः	पक्षी
चित्	अपि	भी

ते	तत्र	तेरे
पतत्रिणः	पक्षोपेताः	पांखों वाले
द्विऽपत्	पादद्वयोपेतम् (मनुष्यादिकम्)	दो पाओं वाले (मनुष्यादि)
चतुऽपत्	पादचतुष्टयोपे- तम्(गवादिकम्)	चार पाओं वाले (गौ आदि)
अर्जुनि	हे शुभ्रवर्णे	हे उज्ज्वल रङ्ग- वाली
उषः	हे उपः	हे उषा
प्र	प्र +	-
आरन्	प्र + आरन् प्रागच्छन्	गए हैं
कृतन्	गमनानि (गता, भावे कुप्रत्ययः)	गमनों का
अनु	अनु(सृत्य)	पीछे २
दिवः	आकाशस्य	आकाश वे

अन्तेभ्यः	प्रान्तेभ्यः	सीमाओं से
परि	सर्वतः	सब ओर

संस्कृतार्थः ।

हे शुभ्रवर्णे ! उपः ! तव गमनान्यनु ( सृत्य ) पक्षोपेताः पक्षिणः, पादद्वयोपेताः ( मनुष्यादयः ) पाद चतुष्टयोपेताः ( गवादयश्च ) आकाशप्रान्तेभ्यः सर्वतः प्रागच्छन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे उज्ज्वल रङ्ग वाली उपा आप के गमन के पीछे २ पांखों वाले पक्षी, दो पाओं वाले ( मनुष्यादि और ) चार पाओं वाले ( गौ आदि ) आकाश की सीमाओं से सब ओर बिचरे हैं ॥ ३ ॥

उपोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८ । ८ । ८ । ८ ।

व्युच्च॑न्ती॒हिर॒ग्रिम॑भि॒र्वि॒श्वमा॑  
भा॒सिरो॒चन॑म् । ता॒न्वा॒मु॒ष्व॒सूय॑वो  
गो॒भिः॑ क॒एवा॑ अ॒हूष॑त । ४ ।

वि॒ऽउ॒च्छ॒न्ती	प्रादु॒र्भव॒न्ती	प्रकट होती हुई
हि	खलु	सचमुच
र॒श्मि॒सऽभिः	किरणैः	किरणों से
वि॒प्र॒व॒म्	सर्वम्	सब को
आ॒ऽभा॒सि	समन्तात्प्रकाश- यसि (भन्तर्माधितण्यर्थः)	चारों ओर प्रका- शित करती हो
रो॒च॒नम्	देदीप्यमानं यथास्यात्तथः (क्रियाविशेषणम्)	देदीप्यमान करती हुई
ताम्	ताम्	उसको
त्वाम्	त्वाम्	तझको
उ॒षः	हे उपः	हे उपा
व॒सु॒ऽयवः	वसु धनमात्मन इच्छन्ति, ते	धन की कामना वाले

गीऽभिः	स्तुतिभिः	स्तुतियों से
कण्वाः	कण्वाः	कण्ववंशियों ने
अहूषत	आहूतवन्तः	बुलाया है

संस्कृतार्थः ।

हे उषः ! (स्वकीयैः) किरणैः खलु प्रादुर्भवन्ती  
(या त्वम्) सर्वम् (भूतजातम्) देदीप्यमानं प्रकाश  
यसि, तां त्वां धनाऽभिलाषिणः कण्वाःस्तुतिभिरा-  
हूतवन्तः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे उषा सचमुच (अपनी) किरणों से प्रकट होती  
हुई (जो आप) सारे (संसार) को देदीप्यमान करती  
हुई प्रकाशित करती हों, उस आपको धनकी कामना  
वाले कण्ववंशियों ने स्तुतियों से बुलाया है ॥ ४ ॥

अब भी धनकी कामना वाली आर्थ्यजाति को प्रमात के  
समय स्तुति और प्रार्थना को नहीं त्यागना चाहिए ॥

इत्येकोन पञ्चाशत्सूक्तम् ॥

ऋ० मं० १ सू० ५० ।

सूर्योदेवता, प्रस्कण्वऋषिर्गायत्रीछन्दः । ८।८।८

उदुत्यंजातवेदसं देवं वहन्ति  
केतवः । दृशेविष्वाय सूर्यम् । १।

उत्	उत् +	-
ऋम्०	(पूरणः)	-
त्यम्	तम्	उसको
{ जातऽवे-	जातानांवेदिता	उत्पन्न हुआओं के
{ दसम्	रम्	जानने वाले को
देवम्	देवम्	देवता को
वहन्ति	उत्+वहन्ति, ऊर्ध्वनयन्ति	ऊपर ऊपर ले जाती हैं
केतवः	रश्मयः	किरणें

दृ॒शे	द्र॒ष्टुम्	दर्शन के लिये
वि॒भ॒वाय॑	सर्वस्मै	सब के लिए
सू॒र्यम्	सूर्यम्	सूर्य को

संस्कृतार्थः ।

रश्मयो जातानां वेदितारं तं सूर्यं सर्वस्मै  
दर्शनायोर्ध्वं वहन्ति ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

किरणों उत्पन्न हुआंके जानने,वाले उस सूर्यको  
सब को दर्शन कराने के लिए ऊपर ऊपर ले जाती  
हैं ॥ १ ॥

विनियोग—इस सूक्त की प्रथम ९ ऋचाएँ आश्विन शस्त्र के  
सूर्य ऋतु में पढ़ी जाती हैं (आ० धी० सू० ६।५।१८)

सूर्य की किरणों ही हमें सूर्य देवता का दर्शन कराती हैं  
जिस समय किरणें सूर्य से चलती हैं उस से २०॥ पल  
(१ mt. 18' sec.) पीछे सूर्य मगधान का दर्शन होता है ।

सूर्योदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८।

अप॒त्येता॑यवी॒यथा॑ न॒क्ष॒त्राय॑न्त्य-

क्ष॒भिः । सू॒राय॑वि॒भ॒वच॑क्षसे । २।

अप	अप+	-
त्ये	ते(अर्थात् प्रसिद्धः)	वे (नामी)
तायवः	स्तेनाः (निघं० १२४।)	चोर
यथा	यथा	जैसे
नक्षत्राणि	नक्षत्राणि (शेर्लोपः)	तारे
यन्ति	अप+ यन्ति, अपगच्छन्ति	निकल जाते हैं
अक्तुऽभिः	किरणैः (सह) (भा०को०)	किरणोंके (सहित)
सूर्याय	सूर्याय	सूर्य के लिये
{ विप्रवऽचक्षसे	सर्वस्यद्रष्ट्रे	सबके देखने वाले के लिये

संस्कृतार्थः ।

सर्वस्यद्रष्ट्रे सूर्याय नक्षत्राणि किरणैः (सह)  
प्रसिद्धाः स्तेना इवाऽपगच्छन्ति ॥ २ ॥



भाषार्थः ।

सबके देखने वाले सूर्य के लिए नक्षत्र, किरणों (सहित) नामी चोरों की न्याईं निकल जाते हैं ॥ २ ॥

जब सब को देखने वाले सूर्य भगवान् उदय होते हैं तो नक्षत्र ऐसे निकल जाते हैं जैसे स्वामी के जागने पर नामी चोर, जिनका पकड़ना भयानक है ॥

सूर्योदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८।

अ॒ह॒श्च॒म॒स्य॒के॒त॒वो॒ वि॒र॒श्च॒म॒यो॒ज॒ना॒

अ॒नु॒ । अ॒ज॒न्तो॒ अ॒ग्न॒यो॒य॒था॒ । ३ ।

अ॒ह॒श्च॒म॒	वि+अहश्चम्, विस्पष्टेनहृष्टाः (व्यत्ययश्लान्वसः)	स्पष्ट देखी गई हैं
अ॒स्य॒	अस्य	इसके
१ के॒त॒वः॑	ध्वज(रूपाः)	ध्वजा (रूप)
वि	वि+	-
१ र॒श्च॒म॒यः॑	रश्मयः	किरणें

जनान्	जनान्	मनुष्यों को
अनु	अनु(लक्ष्य)	लक्ष रख कर
आजन्तः	ज्वलन्तः (निघं० । १ । १६)	जलती हुई
अग्नयः	अग्नयः	अग्नियां
यथा	यथा	जैसे

संस्कृतार्थः ।

अस्य ध्वज-(रूपाः) रश्मयो जनान् (अनुलक्ष्य गच्छन्तः)ज्वलन्तोऽग्नय इव विस्पष्टेनदृष्टाः ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

इस की ध्वजा (रूप) किरणें मनुष्यों की ओर (जाती हुई) स्पष्ट देखी गई हैं जैसे जलती हुई अग्नियां ॥३॥

(१)किरणें सूर्य्य भगवान् के आने का समाचार लेकर ध्वजा रूप से आगे आगे चलती हैं जैसे सेना के आने का समाचार ऊंचे स्थानों पर अग्नियां जला कर दिया जाता है ॥

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कदसि

# सूर्य्य । वि॒श्व॒मा॒भा॒सि॒रो॒च॒नम् । ४ ।

१ त॒र॒णिः	त्वरायुक्तः (तरणिरिति क्षिप्र नाम) (निघ० । २ । १५)	वेग वाला
{ वि॒श्वऽद॒- र्श॒तः	सर्वैर्द्रष्टव्यः	सब से देखने योग्य
{ ज्यो॒तिः॒ऽ कृ॒त्	ज्योतिषःकर्ता	ज्योति के करने वाला
अ॒सि	असि	तू है
सूर्य्य	हे सूर्य्य !	हे सूर्य्य
वि॒श्वम्	सर्वम्	सब को
आ	आ +	-
भा॒सि	आ + भासि प्रकाशयसि (अन्तर्भावितव्यर्थ)	तू प्रकाशितकरता है

रोचनम्	देदीप्यमानं यथा स्यात्तथा (क्रियाविशेषणम्)	देदीप्यमानं करके
--------	--	------------------

संस्कृतार्थः ।

हे सूर्य ! (त्वम्) त्वरायुक्तः सर्वेर्द्रष्टव्यः, ज्यो-  
तिषः कर्ता (च) अस्ति, (त्वमेव) सर्वं देदीप्यमानं प्रकाश  
यसि ॥ ४ ॥

हे सूर्य आप वेग वाले सब से देखने योग्य  
(और) प्रकाश के करने वाले हो, (आप ही) सब को  
देदीप्यमान करके प्रकाशित करते हो ॥ ४ ॥

यह मंत्र चातुर्मास्य के शुक्लाशीर्य पर में, सूर्य की हवि का  
अनुयाक्या है (आ० ध्यो० सू० २१२०।४)

(१) त्वरायुक्त इस लिए कि घरावर चलते रहते हैं, कभी  
विभ्राम नहीं छेते ।

सूर्योदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८

प्र॒त्यङ् दे॒वानां॑ वि॒शः प्र॒त्यङ् दु॒दे॒-  
प्रि॒मानु॑षान् । प्र॒त्यङ् वि॒श्वं॑ स्व॒र्ह॒शे॑ ॥ ५ ॥

पृ०	प०	अग्रहम्	शुद्धम्	पृ०	प०	अग्रहम्	शुद्धम्
१०८३	१५	प्रऽ	प्रऽ	१११५	१०	अधि	अधि
१०८२	१६	होतारम्	होतारम्	१११८	४	सुनवः	सुनवः
१०८५	१४	सुतऽ	सुतऽ	११२२	६	रम्	रम्
१०८८	५	यज्ञेय	यज्ञेय	"	३	विट्टिय	विट्टिय
"	७	अतीताः	अतीताः	११२०	१०	सपवेशण	सपवेशण
११००	८	हे	तु हे	११२८	९	दैव्यं	दैव्य
११०५	१५	वर्हिर्पि	वर्हिर्पि	"	४	सुदा	सुदा
"	१८	लुक्)	लुक्)	"	८	जनम्	जनम्
११०७	२	यज्ञ	यज्ञम्	११३०	८	विद्या	विद्य
११०८	१४	पिबतु	पिबतु	"	१५	स्तुपे	स्तुपे
१११०	४	रुद्रा	रुद्रा	"	१५	वाम	वाम
१११२	१८	दाशवे	दाशुवे	११३२	११	विदा	विदा
"	१४	वाला	वाले	११३३	११	कक्	कक्
१११४	१८	जात	जात	"	१४	ते ह	ते ह
"	१८	व्रत	व्रत	"	१०	जृषायाम्	जृषायाम्
१११५	२	पाच	पाचि				

## मूल्य प्राप्ति स्वीकार ।

- ६८ ठाकुर वसावनसिंह ग्राम कान्हीली पो.  
महुआ जिला मुजफ्फरपुर ५॥)
- ६९ लाला रूपचन्द हीरानन्द वकील ग्राम  
शिकारपुर (सिन्ध) ५॥)
- १०० ठाकुर गनपतसिंह मुनसरीस ग्राम मण्डावा  
जिला जयपुर ५॥)
- १०१ दाहिया भाई बी० पटेल सक्तेटरी बीठल  
पुस्तकालय पोस्ट भाद्रान (गुजरात) ५॥)
- पुस्तक मिलने और मूल्य भेजने का पता:—

**मुन्शी जयराम मैनेजर**

ऋग्वेद संहिता श्रीब्राह्मण वालीकोठी

[मुखताना]

अंक २९-३०]

[माघ फाल्गुण १९६५]

# ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद  
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर  
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुह्तान निगाली प० शङ्करदेव  
शास्त्री की सहायता से शिश्नाथ  
माहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकादमीकक्ष यन्त्रालय में प्रिण्टर साका  
साखमन को अधिकार से छपा ।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५५)

१ प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
देवानाम्	देवानाम्	देवताओं के
२ विशः	जातीन् (आ० को०)	जातियों को
प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
उत्	उत् +	—
३ एषि	उत् + एषि, ऊर्ध्वं गच्छसि	ऊपर चलते हो
मानुषान्	मानुषान्	मनुष्यों को
प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
विश्वम्	सर्वम्	सब को
स्वः	ज्योतिः	प्रकाश को
दृशे	द्रष्टुम्	देखने के लिए

संस्कृतार्थः ।

(हे सूर्य ! त्वम्) देवजातीन् प्रति वर्तमानः,



श्र० मं०१ सू०५० मं०६ ( १२३२ )

मनुष्यान्प्रति वर्तमानः सर्वं प्रति वर्तमानः ( सन् )  
ज्योतिः प्रदर्शनार्थमूर्ध्वं गच्छसि ॥५॥

मापार्थः ।

(हे सूर्य्य आप) देवजातियों के सामने हुए  
हुए, मनुष्यों के सामने हुए २, सवके सामने हुए हुए  
ज्योति दिखाने के लिए ऊपर ऊपर चलते हो ॥५॥

(१) जब सूर्य्यदेव आकाश में चलते हैं, तो सब देवजाति सब  
मनुष्य और दूसरे सब प्राणी ऐसा समझते हैं कि सूर्य्य ने हमारी  
ओर मुख किया हुआ है ।

(२) ऋषियों ने देवताओं में भी, गुणकर्मानुसार जातिविभाग  
की कल्पना की है । जैसे अग्नि में ब्रह्म जाति की इन्द्र में क्षत्रजाति  
की और मयों में वैश्य जाति की ॥

वरुणोदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८।

येनापावकचक्षसा भुरयन्तजना

अनु । त्वंवरुणपश्यसि । ६।

येन	येन	जिससे
पावक	हे पवित्र कारक !	हे पवित्र करने वाले

चक्षसा	चक्षुषां (आ०को०)	नेत्र से
{ भुरग्य- न्तम्	गच्छन्तम् (निघ० २।१४)	चलते हुए को
जनान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
अनु	प्रति (आ०को०)	की ओर
त्वम्	त्वम्	आप
वरुण	हे वरुण !	हे वरुण
पश्यसि	पश्यसि	देखते हो

संस्कृतार्थः ।

हे पवित्रकारक ! वरुण ! येन चक्षुषा त्वं पश्यसि  
(तम्) मनुष्यान्प्रति गच्छन्तम् (चक्षुर्नमस्कुर्मः) ॥६॥

भाषार्थः ।

हे पवित्र करने वाले वरुण आप जिस नेत्र से  
'देखते हो मनुष्योंके प्रति जाने वाले (उस नेत्र को हम  
नमस्कार करते हैं) ॥ ६ ॥

इस मन्त्र के देवता वरुण हैं (देखो वृ०दे० ३११३) जिन का आकाश रूप और सूर्य्य चक्षु हैं, इसी सूर्य्य रूपी वक्षु द्वारा वरुण देव सब मनुष्यों के पुण्य पाप को देखते हैं, उस वक्षु को हमारा नमस्कार हो ।

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

विद्यामेषिरजस्पृष्टव हामिमानो

अक्तुभिः । पश्यज्जन्मानिसूर्य्य ।७।

वि	वि +	-
द्याम्	द्याम् +	-
एषि	गच्छसि	जाते हो
रजः	द्याम् + रजः (लोकार्जास्युच्यन्ते निरु०)	दुल्लोक को
पथु	विस्तीर्णम्	विस्तार, युक्तको
अहा	अहानि (शेडोपः)	दिनों को

मिमानः	वि+मिमानः, पृथक्कुर्वन् (भा०वो०)	अलग करता हुआ
अ॒क्तुऽभिः	रात्रिभिः	रात्रियों द्वारा
पश्यन्	पश्यन्	देखता हुआ
जन्मानि	जातानि	प्राणियों को
सूर्य	हे सूर्य !	हे सूर्य

संस्कारार्थः

हे सूर्य ! ( त्वम् ) रात्रिभिर्दिनानि पृथक्कुर्वन्  
( तथा ) जातानि पश्यन् ( सन् ) विस्तीर्णं द्युलोकं  
गच्छसि ॥७॥

भाषार्थः ।

हे सूर्य (आप) रात्रियों द्वारा दिनों को अलग  
करते हुए, (ओर) प्राणियों को देखते हुए, विस्तार  
युक्त द्युलोक की ओर जाते हैं ॥७॥

सूर्य की प्रत्यक्षगति ( जो वास्तव में पृथिवी की गति है )  
दिन और रात्रि का भेद करता है। इस से सिद्ध यह और गति  
है जिस से सूर्यदेव अपने सारे परिवार को टिपे हुए द्युलोक  
की ओर जा रहे हैं ।

सूर्योदेवता, निचृद्गायत्रीछन्दः।८।७।८।

सु॒प्त॒त॒त्वा॒ह॒रि॒ती॒र॒थे॒ व॒ह॒न्ति॒ दे॒व

सू॒र्य्य॑ । शो॒चि॒ष्के॒शं॑ वि॒च॒क्ष॒ण । ८ ।

सु॒प्त

सप्त

सात

त्वा

त्वाम्

तुझ को

ह॒रि॒तः

अश्वाः

घोड़े

र॒थे

रथे

रथ में

व॒ह॒न्ति

नयन्ति

ले जाते हैं

दे॒व

हे देव !

हे देव

सू॒र्य्य

हे सूर्य्य !

हे सूर्य्य

{ शो॒चिः५-  
केशम्

शोचोपितेजांस्येव  
केशा यस्य, तम्

तेज रूप वालों से  
युक्त को

वि॒ऽच॒क्ष॒णः॒ । हे॒ वि॒शे॒ष॒दृ॒ष्टि॒ । हे॒ दूर॑ देखने वाले  
यु॒क्त

संस्कृतार्थः ।

हे विशेषदृष्टियुक्त सूर्य ! हे देव ! तेजोरूप  
केशयुक्तं रथे (अवस्थितम्) त्वां सप्त (सङ्ख्याकाः)  
अश्वाः (आकाशे) नयन्ति ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे दूर देखने वाले सूर्यदेव, तेजरूप चालों से  
युक्त (ओर) रथ में (बैठे हुए) आपको सात घोड़े,  
(आकाश में) ले जाते हैं ॥ ८ ॥

पहिले मंत्र में आया है, कि सूर्य को चिरणें ले जाती हैं,  
इसलिये ये सात घोड़े सूर्य की सात प्रकार की चिरणें हैं, ओ इन्द्र  
धनुष में भिन्न भिन्न प्रतीत होती हैं, और वृक्ष, फूल, फल, घास  
पशु, मनुष्य इत्यादि सृष्टि में जामा रंग को उत्पन्न करती हैं ॥

सूर्योदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८॥

अ॒यु॒क्त॑ स॒प्त॑ शु॒न्ध॒य॒वः॒ । स॒रो॒रथ॑स्य  
नृ॒प॒त्यः॑ । ता॒भि॒र्या॑तिस्वय॑क्तिभिः । ९॥

अयुक्ता	योजितवान्	जोड़ा है
सप्त	सप्त	सात
शुन्ध्यवः	वडवाः	घोड़ियों को
सूरः	सूर्यः	सूर्य ने
रथस्य	रथस्य	रथ की
नृत्यः	पुत्र्यः (नपात्स्त्र्यपत्यनाम (निघं० ११२)	पुत्रियों को
ताभिः	ताभिः	उन से
याति	चलति	चलता है
{ स्वयुक्ति ऽभिः	स्वयमेवयुक्तयो योजनानि यासां ताभिः	स्वयं जुड़ने वा- लियों से

संस्कृतार्थः ।

सूर्यो रथस्य पुत्रिस्थानीयाः सप्तसङ्ख्याका  
वडवाः ( रथे ) योजितवान्, ताभिः स्वयं युक्ताभिः  
( वडवाभिराकाशे ) चलति ॥ ९ ॥

मापार्थः ।

सूर्य ने रथ की पुत्री रूप सात घोड़ियों को (रथ में) जोड़ा है (वह) उन स्वयं जुड़ने वालियों से (आकाश में) चलते हैं ॥ ९ ॥

सूर्य का मण्डल रथ है। उसी से उत्पन्न होने से किण्वे रथ की पुत्री हैं, जो रथ में स्वयं जुड़ी हुई हैं, इन सात घोड़ियों वाले रथ से सूर्य भगवान् आकाश की यात्रा करते हैं ॥

सूर्यदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ८।८।८।८।

उ॒द्य॒त॒म॒स॒स्परि॒ ज्योति॒ष्प॒श्य॒-  
न्त॒उ॒त्तर॒म् । दे॒व॒दे॒व॒त्रा॒सू॒र्य॒ म॒ग॒न्म॒  
ज्योति॒रु॒त्त॒म॒म् । १० ।

उत्	उत्	-
व॒य॒म्	वयम्	हम
त॒म॒सः	अन्धकारस्य	अन्धकार के
परि॑	उपरि (आ०को०)	ऊपर
ज्योतिः॑	प्रकाशम्	प्रकाश को



पश्यन्तः	पश्यन्तः	देखते हुए
{ उत्त- रम्	उत्कृष्टतरम्	बहुत बड़े को
देवम्	देवम्	देवता को
देवञ्चा	देवेषु (सप्तम्यर्थे प्राप्तिव्ययः)	देवताओं में
सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य को
अगन्म	उत् + अगन्म प्राप्नुवाम (छिडर्थे लङ्)	प्राप्त होवें
ज्योतिः	ज्योतिरूपम्	ज्योति रूपको
{ उत्त- मम्	उत्तमम्	उत्तम को

संस्कारार्थः ।

वयमन्वकारस्योपर्युत्कृष्टतरं प्रकाशं पश्यन्तो  
देवेषु (सप्त्ये) उत्तमं ज्योतीरूपं सूर्यदेवं प्राप्नुवामः १०१

भाषार्थः ।

हम अन्धकार के ऊपर बहुत बड़े प्रकाश को देखते हुए देवताओंमें उत्तम ज्योति रूप सूर्यदेवता को प्राप्त होवें ॥१०॥

अन्धकार जो पृथिवी की छायासे होता है । केवल ८,६०,००० मील तक है, इस से ऊपर निरन्तर ज्योति है, हम इस शरीर को त्यागने पर निरन्तर ज्योति को देखते हुए सूर्यलोक को प्राप्त होवें, अथवा ध्यान द्वारा जीते जी प्राप्त होवें यह प्रार्थना इस मंत्र में है ।

सूर्योदेवता, निचूदनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८॥

उद्यन्नद्यमित्रमह आरोहन्नुत्तरां  
दिवम् । हृद्रोगंममसूर्य हरिमाण-  
ञ्चनाशय । ११ ।

उत्ऽयन्	उदयंगच्छन्	उदय होता हुआ
अद्य	अद्य	आज
मित्रऽमहः	हे मित्रनन्दन (महर्षिहर्यनाम, भा०को०)	हे मित्रोंके प्रसन्न करने वाले
आऽरोहन्	आरोहन्	चढ़ता हुआ

उत्तराम्	उत्कृष्टतरम्	बहुत बड़े को
दिवम्	द्युलोकम्	द्युलोकको
हृत्-रोगम्	हृद्रोगम्	हृदय के रोग को
मम	मम	मेरे
सूर्य	हे सूर्य !	हे सूर्य
हरिमाणम्	पीतवर्णताम् (आ०को०)	पीलेपन को
च	च	और
नाशय	नाशय	नाश करा

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रनन्दन हे सूर्य ! अद्योदयं गच्छन्नुत्कृष्टतरं द्युलोकम् (च) आरोहन् मम हृद्रोगं पीतवर्णं ताञ्च नाशय ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्रों के प्रसन्न करने वाले हे सूर्य, आज (आप) उदय होते हुए (और) घड़े द्युलोक में

चढ़ते हुए, मेरे हृदय के रोग और पीले पन को  
नाश करो ॥ ११ ॥

प्रसङ्ग्य ऋषि ने हृदय रोग और पाण्डु रोग (पीलिये) की  
अवस्था में ये तीन मंत्र देये थे और इन से उनको रोग की शांति  
हुई थी, अथ भी जो इन मंत्रों से सूर्य की उपासना करे तो उसका  
पाण्डु शरीर हृदय रोग नाश हो सकता है। सज्जनों का दुःख भी  
संसार के उपकार का कारण होता है। शुभाशेष का उदाहरण इस  
विषय में आचुकी है। आगे और ऋषियों के भी आर्चने।

सूर्यों देवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८। ८। ८। ८।

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु द-  
धमसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं  
निदधमसि । १२ ।

शुकेषु	शुकेषु	तोतों में
मे	मम	मेरे
हरिमाणम्	पीतवर्णताम्	पीले पन को
रोपणाकासु	सारिकासु	मैनाओं में

क्र० मं० १ सू० ५० मं० १२ ( १२४४ )

दध्मसि	स्थापयामः (मसहकारागमः)	स्थापन करते हैं
अथो०	अपिच	और भी
हारिद्रवेषु	गोपीताख्यहरि- द्रवेषुपक्षिषु (क्र० ८।३५।७)	गोपीत पक्षियों में
मे	मम	मेरे
हरिमाणम्	पीतवर्णताम्	पीले पनको
नि	नि+	-
दध्मसि	नि+दध्मसि, स्थापयामः	हम स्थापन करते हैं

संस्कृतार्थः ।

(हे सूर्य्य) ! मम पीतवर्णतां शुक्रेषु सारिकाषु,  
अपिच गोपीत पक्षिषु स्थापयामः ॥१२॥

भाषार्थः ।

हे सूर्य्य ! मेरे पीले पन को हम तोतों और  
मनाओं में और गोपीत पक्षियों में स्थापन करते  
ह ॥ १२ ॥

( १२४५ ) क्र० प्र० १ सू० ५० म० १३

इन तीनों पक्षियों में पीला रंग स्वभाविक है; रोग के कारण नहीं है। वे हमारे पीले रंग को ग्रहण करें और हम अपना स्वभाविक रंग धारण करें ॥

सूर्योदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । दादादादा ॥

उदगाटयमादित्यो विप्रवेन सह-  
सा सह । विषन्तं मर्ह्य रन्धयन्मी-  
अहं विषते रधम् । १३ ।

उत्	उत् +	-
अगात्	उत्+अगात्, उदितोऽभूत्	उदय हुआ है
अयम्	अयम्	यह
आदित्यः	सूर्यः	सूर्य
विप्रवेन	सर्वेण	सब से
सहसा	चलेन	चल से
सह	सह	साथ

विषन्तम्.	द्वेपकुर्वन्तम्	शत्रुता करने वाले को
मह्यम्	मह्यम्	मेरे ताई
रन्धयन्	आयत्ती कुर्वन् (आ०को०)	बस में करता हुआ
मो०	न	नहीं
अहम्	अहम्	में
द्विषते	शत्रवे	शत्रु के ताई
रधम्	आयत्तीभवेयम् (लिङ्गैलुङ् अङ्मात्रः)	बस में होऊँ

संस्कृतार्थः ।

अयं सूर्यः सर्वेण बलेन द्वेपकारिणं मह्यमायत्ती  
कुर्वन्नुदितोऽभूत्, अहं शत्रवे माऽऽयत्तीभवेयम् ॥१३॥

माणार्थः ।

यह सूर्य(देव)सम्पूर्ण बलके साथ शत्रुता करने  
वालेको मेरे बस में करते हुए उदय हुए हैं मैं शत्रुके  
बस में न होऊँ ॥१३॥

इति पञ्चाशत्सूक्तम् ।

## ऋ० मं० १ सू० ५१ ।

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यह में प्रथम रात्रि के पर्व्याय में होता के शस्त्र में पड़ा जाता है (भा० श्री० सू० ६४।१०)

भीर गवामयन में विषुवत् के दिन तिष्कोवत्य शस्त्र में भी पड़ा जाता है (भा० श्री० सू० ७० । २६।१२)

इस सूक्त में इन्द्र के मनुष्यहितकारी भीर कर्मों का वर्णन है और यह दिलाया गया है कि वे भीर कर्म भक्तों की स्तुति भीर सोम द्वारा पूजन से प्रेरित हुए हैं, कुछ उदाहरण भक्तों की रक्षा भीर सहायताके दिष्ट है जैसे भद्रिरामों और भक्ति के लिए धर्म का करना, वसुओं ( भार्य्य शत्रुओं ) के साथ युद्ध में राजा ऋजिष्वा की सहायता करना, इसी तरह कुत्स ऋषि भीर राजा विषोदास वा भतिथिग्य की रक्षा करना, यज्ञ ऋषि के स्तुति बल से वसु वृत्र को मार कर गिराना, ऋषि के पुत्र उशाना ऋषि के स्तुति बल से घाया पृथिवी को कपाने वाले बल को प्राप्त करना शाद्व्यात राजा का भर्पण किया सोम पी कर बड़े बड़े यश को बढ़ाने वाले कर्मों का करना, शुक्रे भक्त कक्षीयान को सुधती वृषया नामी हस्ती का प्राप्त कराना इत्यादि ।

इन्द्रोदेवता सव्य आह्निरस ऋषिर्जगतीछन्दः

॥१२।१२।१२।१२॥

अभित्यंसेषंपुरुदूतमृगिमयमिन्द्रं

गीर्भिर्मदतावस्वोअर्णवम् । यस्य-



द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजैर्महि-

ष्ठमभिर्विप्रमर्चत ।१।

अभि	अभि +	-
त्यम्	तम्	उसको
मेषम्	सेकारम् (नरम्) (मेषतिः छेदनकर्मा) (मा०को०)	नर को
परुद्धूतम्	बहुभिराहूतम्	बहुतों से बुलाए गए को
ऋग्भिर्मयम्	ऋग्भिर्मोषते शब्दयते, तम् (माङ्शब्दे)	ऋचाओं से स्तुति किए जाने वाले को
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्रको
गोऽभिः	स्तुतिभिः	स्तुतियों से
मदत	अभि+मदत, माद- यत (गेलोंपदछन्दसः)	हर्षित करो

वस्वः	धनस्य	धन के
अर्णवम्	समुद्रम्	समुद्र को
यस्य	यस्य	जिसके
द्यावः	आकाशाः	आकाश
न	इव	की न्याई
विचरन्ति	अभिव्याप्नुवन्ति (भा०को०)	चारों ओर फैलते हैं
मानुषा	मनुष्यहितानि	मनुष्य के हित- कारी
भुजे	लाभाय (भा०को०)	लाभके लिये
मंहिष्ठम्	अतिशयेनवृद्धम् (मदिरुद्धी)	बहुत बड़े हुएको
अभि	अभि+	
विप्रम्	मेधाविनम्	बुद्धिमान को
अर्चत	अभि+अर्चत	पूजो

संस्तुतार्थः ।

( हे आर्य्याः ! ) तं बहुभिराहूतं ऋग्भिः स्तूयमानं  
धनस्य समुद्रं नरमिदं स्तुतिभिर्मादयत यस्य मनुष्य  
हितानि ( कर्माणि ) आकाशाद्वाऽभिव्याप्नुवन्ति, अति  
शयेन वृद्धं मेधाविनम् ( तमेव ) लाभायाऽभ्यर्चत ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

( हे आर्य्यगण ) उस बहुतों से बुलाए गए, ऋ-  
चाओं से स्तुति किए जाने वाले, धन के समुद्र, नर  
बीर इन्द्र को स्तुतियों से हर्षित करो, जिसके मनुष्य  
हितकारी ( कर्म ) आकाशों की न्याईं चारों ओर फैलते  
हैं, बहुत बड़े हुए, बुद्धिमान, ( उसी को ) लाभ के लिए  
पूजो ॥ १ ॥

यदि हम को लाभ की इच्छा है तो धन के समुद्र इन्द्र को  
स्तुति द्वारा मद मुक्त करना चाहिये । थोड़े धन वाले लीकिय  
राजा आदि का सहाय नहीं करना चाहिये ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥

अभीमवन्वन्तस्वभिष्टिभूतयो

ऽन्तरिक्षप्रांतविषीभिराहूतम् । इन्द्रं-

दक्षासक्तुभवोमदच्युतं शतक्रतुंज-  
वनीसूनुतारुहत् । २॥

अभि	अभिः	-
ईम	(पूरणः)	-
अवन्वन्	अभि+अवन्वन्, अभितोऽभजन्त (वनतेर्यपयेनउग्रत्यय.)	सब ओर से सेवा की
{ सुऽअभि- ष्टिम्	सुषण्टव्यम्	अत्यन्त पूजनीय को
ऊतयः	सहायकाः (कर्तरिणिन्)	सहायक
{ अन्तरिक्ष ऽग्राम्	अन्तरिक्षस्य पूरकम्	अन्तरिक्ष के भरने वाले को
तविषीभिः	बलैः	बलोंसे

आऽवृत्तम्	आवृत्तम्	घिरेहुण को
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
दक्षासः	कर्मकुशलाः	काम में चतुर
ऋभवः	ऋभवः	ऋभुओं(ने)
मदऽच्युतम्	मदोन्मत्तम् (आ०को०)	मदोन्मत्त को
शतऽक्रतुम्	बहुकर्मणिम्	बहुत कर्मों से युक्त को
जवनी	प्रेरयित्री (करणेष्वुद्)	उत्साह दिलाने वाली
सूनुता	प्रियावाक्	प्यारी वाणी
आ	आ +	-
अरुहत्	आ + अरुहत् उदगच्छन्	ऊपर उठी

संस्कारार्थः ।

सहायकाः कर्मकुशला ऋभवः स्युष्टव्यमन्तरि-

क्षस्य पूरकं बलरावृतं मदोन्मत्तमिन्द्रमभितोऽभजन्त,  
 (तेषाम्) प्रेरयित्री प्रियावाक् बहुकर्माणम् (प्रति)  
 उदगच्छत् ॥ २ ॥

मापार्यः ।

७ सहायक, कर्म में चतुर, ऋभुओं ने अत्यन्त पूजनीय, अन्तरिक्ष को भरने वाले, बलों से घिरे हुए मदोन्मत्त इन्द्र की सब ओर से सेवा की (उन की) उत्साह दिलाने वाली प्यारी वाणी बहुत कर्मों से युक्त (इन्द्र) के प्रति उठी ॥ २ ॥

ऋभुओं के वर्णन के लिए देखो (पृ० ३९४) जब इन भक्तों ने इन्द्र की सब ओर से सेवा की, और इनकी उत्साह दिलाने वाली वाणी इन्द्र के प्रति उठी, तब सोम रस ॥ मदोन्मत्त होकर इन्द्र ने आर्य्य शत्रुओं का विध्वंस किया । इन्द्र तो अब भी हैं । परन्तु जब तक उन के उपासकों की स्तुति रूप वाणी उनको धीरता के कर्म करने में प्रेरण न करे, तब तक वह आर्य्य सन्तान की रक्षा करने में असमर्थ हैं ।

सोमरसजनित उन्माद दूसरे मदकारक द्रव्यों से उत्पन्न उन्माद से इतना भिन्न है, जैसे दिन से रात, इस विषय में पक्षपात रहित प्रा० मैक्सम्यूलर भी सम्मति देते हैं, वह लिखते हैं 'वेद के आशय की अंग्रेजी वा दूसरी भाषा में वर्णन करने की कठिनायता यहां फिर प्रत्यक्ष होती है, क्योंकि हमारे हाथ सोम वा दूसरी वृद्धि से जनित मन की उच्च अवस्था को घोटन करने वाला ऐसा कोई शब्द नहीं है जो घृणा उत्पन्न करने वाले भाव से रहित हो, परन्तु प्राचीन समय में वह मन की उच्च अवस्था देवताओं

की कृपा से प्राप्त और देवताओं के योग्य समझी जाती थी, जिस अवस्था में कवि और वीर अपने उद्य से उद्य कर्ताय करते थे ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

त्वंगोचमङ्गिरोभ्योऽवृणो रप्रो ताऽ

वयेशतदुरेषुगातुवित् । ससेनचि-

द्विमदायावहोवस्वा जावद्रिवावसा

नस्यनर्त्तयन् । ३।

त्वम्	त्वम्	तूने
गोचम्	गोसमूहम्	गोओंके समूहको
{ अङ्गिरः- ऽभ्यः	अङ्गिरोभ्यः	अङ्गिराओंके लिये
अवृणोः	अप+अवृणोः अपावृत्तवानसि	खोल दिया
अप	अप +	-

उत	च	और -
१ अत्रये	अत्रये	अत्रिके लिये
२ शतदुरेषु	शतं दुरा द्वाराणि येषां ते, तेषु (दुर्गेषु)	सैकड़ों द्वार वाले (दुर्गों) में
३ गातुद्वित्	गातुंगन्तव्यं मार्गं वेदयति, मार्गस्य लम्भयिता (अन्तर्भावितपर्याप्त विषय)	रस्ता निकालने वाला
ससेन	अन्नेन (निघ० २।७)	अन्न से
चित्	अपि	भी
१ विमदाय	विमदाय	विमद शक्ति के लिये
अवहः	प्रापितवान्	प्राप्त कराया
वसु	धनम्	धन को
आजौ	सङ्ग्रामे	युद्ध में



अद्रिम्	वज्रम् (निहन्)	वज्र को
ववसानस्य	निवसतः (यजमानस्य)	निवास करते हुए (यजमान) के
नर्त्तयन्	नर्त्तयन्	नचाता हुआ

संस्कृतार्थः ।

( हे इन्द्र ! ) शत द्वार युक्तेषु (दुर्गेषु) मार्गस्थ लम्भयिता त्वमङ्गिरोन्मयोऽत्रये च गोसमूहमपावृतवान्, अपि (च) यजमानस्य सङ्ग्रामे वज्रन्नर्त्तयन्(सन्); विमदायान्नेन युक्तं धनं प्रापितवान् ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।—

(हे इन्द्र) सैंकड़ों द्वार वाले (दुर्गों में) रस्ता निकालने वाले आपने अङ्गिरा और अत्रिके लिए (मेघ रूपी) गौ के समूह को खोल दिया । और यजमान के युद्ध में वज्र को नचाते हुए आपने विमद के लिए अन्न सहित धन को प्राप्त कराया ॥३॥

(१) अङ्गिरा और अत्रि आर्य जातिके आदि पुरुषाओं में से हैं ।

(२) सैंकड़ों द्वारों वाले दुर्ग (गढ़ वा किले) यादल हैं, जिन में रस्ता ढूँढ़ कर, इन्द्र ने जल और ज्योति रूपी गौओं को अङ्गिराओं और अत्रि के लिए खोल दिया ।

(३) विमद भी एक प्राचीन ऋषि का नाम है, जिन के लिए इन्द्र ने आर्य राजा को युद्ध में जितवा कर जैषि को अन्न और धन प्राप्त कराया।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

तवमपामपिधानाऽवृणोरपाऽधारयः

पर्वतेदानुमवसु । वृचंयदिन्द्रशवसा

वधीरहि मादित्सूर्यदिव्यारोह-

योदृशे । ४।

तवम्	त्वम्	तूने
अपाम्	जलानाम्	जलों के
१ अपिऽधाना	आच्छादनानि (शेर्लोपः)	ढकनोंको
अवृणोः	अप + अवृणोः, अपावृतवानसि;	खोल दिया
अप	अप +	-
अधारयः	स्थापितवानसि	स्थापन किया
२ पर्वते	पर्वते	पर्वत पर

२ दानु॑ऽमत्	दानयुक्तम्	दान युक्त को
३ वसु॑	धनम्	धन को
वृत्र॑म्	वृत्रम्	वृत्र को
यत्	यदा	जब
इन्द्र॑	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
शवसा॑	बलेन	बल से
अवधीः॑	अवधीः	तू ने मारा
३ अहि॑म्	मेघम् (निघं०१।१०)	मेघ को
आत्	अनन्तरम्	पीछे
इत्	एव	ही
३ सूर्य॑म्	सूर्यम्	सूर्य को
दिवि॑	दुलोके	आकाश में

आ	आ +	—
अ०रोहयः	आ + अ०रोहयः प्रादुष्कृतवानसि	प्रकट किया
दृशे	दृष्टुम्	दर्शन के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं जलानामाच्छादनान्यपावृतवान् पर्वते दानयुक्त धनम् (च) स्थापितवान् यदा (त्वम्) मेघ- (रूपम्) वृत्रं हतवान् (तद्) अनन्तरमेवाऽऽकाशे सूर्यं दर्शनार्थं प्रादुष्कृतवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र आपने जलों के ढकनों को खोल दिया (और) पर्वत पर दान युक्त धन को स्थापन किया, जब आपने घादल (रूपी) वृत्र को मारा (और उसको) तुरन्त पीछे आकाश में सूर्य को दर्शन के लिए प्रकट किया ॥ ४ ॥

(१) जलों के ढकने जो घूलि के वण रूप में जलों को पकड़े हुए थे इन्द्र ने 'विद्युत् रूपी वज्र से खोल दिये ।

(२) दानयुक्त धन वर्षा रूपी जल है, जो अधिकतर पर्वत में ही गिरता है ।

(३) यह प्रथमज वृत्र का वृत्तान्त है। जिस को मारने से पृथिवी पर पहली बार सूर्य के दर्शन हुए । (देखो पृ० ७५६)

इन्द्रो देवता जगती छन्दः ॥१२॥१२॥१२॥१२॥

तवं सायाभिरपमायिनोऽधमः

स्वधाभिर्येअधिपुप्तावजुह्वत । त्वं-  
पिप्रोर्नृमणः प्राकृजः पुरः प्रकृजिश्चानं  
दस्युहृत्यैष्वाविथ ॥५॥

तवम्	त्वम्	तू ने
१ सायाभिः	सायाभिः	मायाओंसे
अप	अप +	-
१ सायिनः	मायोपेतान्	मायाचियोंको
२ अधमः	अप+अधमः अपसारितवान् (धमतिर्गतिश्रमां निय० ६।२)	दूर निकाल दिया
स्वधाभिः	अन्नेः (नियं० २।७)	अन्नों से

ये	ये	जिन्होंने
अधि	अधि+	-
शुप्तौ	अधि+शुप्तौ, मुखे (सा०मा०)	मुख में
अजुह्वत	अहोपुः (जुहोतेर्लङिभ्यत्ययेना त्यनेपदम्)	हवन किया करते थे
त्वम्	त्वम्	तूने
पिप्रोः	पिप्रोः	पिप्रु के
नृऽमनः	नृपुमनोयस्य, तत्सम्बुद्धौ	हेमनुष्यों में मन रखने वाले
प्र	प्र+	-
अरुजः	प्र+अरुजः, प्राभा- ङ्क्षीः	तोड़ दिया
पुरः	पुराणि	गढ़ों को
प्र	प्र+	-
{ ऋजिष्वा नम्	ऋजिष्वानम्	ऋजिष्वा को

{ दस्युऽह- त्येषु	दस्यूनांहत्यायेषु (युद्धेषु)	जहां दस्यु मारे जाएं ऐसे (युद्धों में)
आविथ	प्र+आविथ प्रकर्षेण रक्षितवान्	अत्यन्त रक्षा की

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र ! ) ये (असुरा हविर्लक्षणैः) अन्नैः मुखे  
अहौषुः (वृत्रादींस्तान्) मायोपेतान् त्वं मायाभरप-  
सारतवान् हे नृमनः ! त्वं पिप्रोः पुराणि प्राभाह्वीः  
(अपि च) दस्यु हत्येषु (युद्धेषु) ऋजिश्वानं प्रकर्षेण  
रक्षितवान् । ५ ।

भाषार्थः ।

( हे इन्द्र ) जो (असुर हविरूप) अन्नों से मुख  
में होम किया करते थे (उन) मायावियों को आपने  
अपनी माया से दूर निकाल दिया । हे मनुष्यों में  
मन रखने वाले आपने पिप्रुके गढ़ों को तोड़ा (और)  
युद्ध में दस्युओं को मार कर ऋजिश्वा की अत्यन्त  
रक्षा की ॥ ५ ॥

( १ ) जो लोग कष्ट युक्त नीति से धन धक्य करके अपने  
ही मुँह में होम करते हैं अर्थात् अपना पेट पालन करते हैं  
और दूसरों को कुछ नहीं देते ये दस्यु और असुर हैं चाहे  
पृथिवी पर मनुष्य रूप में हों चाहे शन्तरिक्ष में वृत्र रूप में, ऐसे

लोगों की कुटिल नीति को 'दूमरी कुटिल नीतियों' से तोड़ कर इन्द्र उनको सदा पृथिवी और अन्तरिक्ष से दूर निकालते रहे हैं ॥

(२) ऐसे ही दस्यु वा असुरों में एक पित्रु है जिस के 'दुर्गों' को तोड़ कर

(३) और दस्युओं को मार कर इन्द्र ने अपने भक्त राजा 'अग्निदेवा' की रक्षा की।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥,

तव॑कु॒त्सं॑ शु॒ष्ण॒ह॒त्ये॒ष॒वावि॒था

ऽर॑न्ध॒योऽति॒थि॒ग्वाय॒श॒म्बर॑म् । म॒हा-

न्तं॑चि॒द॒र्बु॒दं नि॒क्रमीः॑ प॒दा सु॒नादे॒व-

द॒स्यु॒ह॒त्याय॑ज॒न्निषे॑ । ६।

तवम्	त्वम्	तू ने
१ कुत्सम्	कुत्सम्	कुत्सको
१ { शुष्णऽह	शुष्णस्य हनन	शुष्ण को नाश
{ त्येष	युक्तेषु [सङ्ग्रामेषु]	करने वाले
		(युद्धों में)



आविष्ट	रक्षिष्य	रक्षा को
अरन्धयः	आयत्ती कृतवान्	वस में किया
{ अतिथि उगवाय	अतिथिगवाय	अतिथिग्व के छिप
शम्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को
महान्तम्	महान्तम्	महान को
चित्	अपि	भी
अर्बुदम्	अर्बुदम्	अर्बुद को
नि	नि+	-
क्रमीः	नि+क्रमीः, नितरा माक्रमितवान्	रोंधा
पदा	पादेन	पाओं से
सुनात्	सदा	सदा

एव	एव	ही
{ दस्युऽह- त्याय	दस्युहत्यायै (लिङ्गव्यत्ययइच्छान्दसः)	दस्युओं के मारने के लिये
जज्ञिषे	प्रादुर्बभूविथ	प्रकट हुए हो

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र) त्वं शुष्णस्य हनन युक्तेषु (सङ्ग्रामेषु) कुत्सं ररक्षिथ, (त्वम्) अतिथिग्वाय शम्बरमायसी कृतवान् (त्वम्) महान्तमप्यर्बुदं पादेनाक्रमितवान् (त्वम्) सदैव दस्यूनां हत्यायै प्रादुर्बभूविथ ॥६॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) आपने शुष्णके नाश किए जाने वाले (युद्धों) में कुत्स की रक्षा की थी आपने शम्बर को अतिथिग्व के अधीन किया था आपने महान [अर्बुद को भी पाओं से रोंधा था, आप सदासे दस्युओं के नाश के लिए उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥

(१) शुष्ण, शम्बर, अर्बुद, ये सब वृत्र या अन्य इन्द्र के शत्रुओं के कल्पित नाम हैं और इसी लिए "भार्य्य शत्रु" अर्थ की घोषण करते हैं ॥

(२) कुत्स ऋषि प्रथम मण्डल के ९४ से ९८ और १०१ से ११५ तक सूक्तों के द्रष्टा हैं, इन्द्र ने "भार्य्य शत्रुओं" का हनन करद्वयुक्तों में इनकी रक्षा की थी।

(३) अतिथिग्व दिवोदास का नामान्तर है जो बड़े दाती और देव भक्त आर्य्य राजा थे इनके अनार्य्य शत्रु को इन्द्र ने इनके अधीन किया था ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः॥१२॥१२॥१२॥१२॥

त्वेवि॒ष्वा॒तवि॒षी॒स॒ध्रा॒ग्नि॒घ॒ता तव॒-  
राधः॑ सोम॒पी॒थाय॑ हर्ष॒ते । तव॒वज्र॑-  
श्चि॒किते॒वाहो॑र्हि॒तो वृ॒श्चाश॑चो॒र-  
ववि॒ष्वा॒निवृ॒ण्य॒था ॥७॥

त्वे०	त्वयि	तुझ में
वि॒ष्वा	सर्वम् (विमर्केषत्वम्)	सब
तवि॒षी	बलम्	बल
स॒ध्रा॒क्	सम्भूय	इकट्ठा
हि॒ता	निहितम् (विमर्केषत्वम्)	रखा हुआ

तव	तव +	—
राधः	तव+राधः, तवा- ऽनुग्रहः, अर्थात् दयालुर्भवान्	दयालु आप
{ सोमऽपी- थाय	सोमपानाय	सोम पीनेके लिये :
हर्षते	हृष्यति	हर्षित होता है
तव	तव	तेरा
वज्रः	वज्रः	ध्वज
चिकित्ते	ज्ञातम्	जाना गया है
बाह्योः	बाह्योः	हाथों में
हितः	स्थापितः	स्थापित (है)
वृषूच	अव+वृश्च, अव- च्छिन्दि	काट कर पृथक् करो

शत्रोः	शत्रोः	शत्रु के
अव	अव+	-
विप्रवानि	सर्वाणि	सब
वृष्या	वीर्याणि (शैलौषः)	वीर्यों को

संस्कृतार्थः ।

( हे इन्द्र ! ) त्वयि सर्वं बलं सम्भूय स्थापितम्  
( अस्ति ) दयालु भवान् सोमपानार्थं हृष्यति, तव  
बाह्वोर्वच्चः स्थापितः (इति) ज्ञातम् - ( अस्ति, तेन ) शत्रो-  
स्तर्वाणि वीर्याण्यवच्छिन्धि ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

( हे इन्द्र ) आप में सारा बल इकट्ठा स्थापित  
है, कृपालु आप सोम पीने के लिये हर्षित होते हैं  
आप के हाथों में बल स्थापित ( है, यह ) प्रसिद्ध है  
( उस से ) शत्रु के सम्पूर्ण वीर्यों को काट कर  
पृथक् करो ॥ ७ ॥

तात्पर्य यह है कि इन्द्र में सम्पूर्ण बल इकट्ठे हुए हैं और  
यह सोम के रसिक हैं इसलिए सोम भक्षण करने वाले हम पर  
उन की कृपा दृष्टि मगददा है, यज्ञ भी उन के हाथों में सारा

रहता है इसलिये हमारे शत्रु को धीरे धीरे युक्त पदार्थों को काट कर  
भलग किए जाने में क्या सम्यह है ॥

इन्द्रोदेवता जगती छन्दः ११२।१२।१२।१२।

विजानी॑ ह्या॒र्या॒न्ये च॒दस्य॑वो ब॒र्हि  
ऽम॑तेरन्धया॒शास॑द॒व्रतान् । शाकी॑  
भव॒यज॑मानस्यचोदि॒ता वि॒श्वे॒त्तात॑  
सध॒मादे॑षु चाकन ॥८॥

वि	वि+	-
जानी॑हि	वि+जानीहि	खूब पहचानो
आ॒र्या॒न्	आर्यान्	आर्यों को
ये	ये	जो
च	च	और
दस्य॑वः	आर्य शत्रवः	आर्य शत्रु

वर्हिष्मते	वर्हिर्युक्ताय	कुशा विछाने
रन्ध्रय	आयत्तोकुरु	वाले के लिये
शासत्	शासनंकुर्वन् (नुममायः)	बस में करो
अव्रतान्	व्रत रहितान्	ताड़ना करते हुए
शाको	शक्तियुक्तः	व्रत से हीनों को
भव	भव	प्रबल
यजमानस्य	यजमानस्य	हो
चोदिता	प्रेरकः	यजमानके
विप्रवा	सर्वाणि (श्रेष्ठेषां)	प्रेरक
इत्	एव	सच को
ता	तानि	ही
ते	तव	उनका
		तेरे ..

सधऽमादेशु	सहमाद्यन्त्येषु स्था- नेषु, (अर्थाद्यज्ञेषु) (अधिकरणेऽध्वसहस्य- सधादेश)	इकट्ठे होकर आनन्द करनेके स्थान (अर्थात् यज्ञों) में
चाकन	कामये (कनोफान्ती, लडर्येलिट्)	कामना करता हुआ

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र ! ) (स्वम्) आर्यान् ये चाऽऽर्य्यशत्रवः  
सन्ति तान् विजानीहि, व्रतहीनान् शासयन् बर्हिर्युक्ताय  
(आर्याय) आयत्तीकुरु, यजमानस्य (च) शक्तियुक्तः  
प्रेरको भव, (अहम्) तानि सर्वाण्येव तव (कर्माणि)  
यज्ञेषु कामये ॥ ८ ॥

भावार्थः ।

(हे इन्द्र ! ) आप आर्यों को और जो आर्य्य  
शत्रु हैं उनको खूब पहचानो, व्रतहीनों को ताड़ना  
करते हुए कुशा विछाने वाले (आर्य्य) के बस में  
करो (और) यजमान के प्रबल प्रेरक बनो, मैं आप  
के उन सब ही ( कर्मों को ) यज्ञों में कामना  
करता हूँ ॥ ८ ॥

(१) व्रत हीन जो स्वेच्छाचारी नियम और शास्त्र की  
मर्यादों को न मानने वाले अनार्य्य लोग हैं ।

(२) मर्यात् आप के ये सब कर्म मुझे यज्ञ में आनन्द  
देने वाले हैं ॥



क्र०म०१ सू०५१ म० ९ ( १२७२ )

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ११२।१२।१२।१२।

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रता नाभू-

भिरिन्द्रः प्रनथयन्ननाभुवः । वृद्धस्य

चिद्वर्धतोद्यामिन्नक्षतः, स्तवानो-

वमोविजघानसन्दिहः । ६।

अनुव्रताय	व्रताऽनुगाय	व्रत के अनकूल चलने वालेके लिये
रन्धयन्	आयत्ती कुर्वन्	वस में करता हुआ
अपव्रतान्	व्रत रहितान्	व्रत रहितों को
आभभिः	आभिमुख्येन भवन्ति, तैः (स्तोतृभिः)	स्तोताओं से
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
प्रनथयन्	घातयन् (अथहिंसाया रस्यनत्वा छान्दसम्)	नाश कराते हुए

अनाभुवः	स्तुतिहीनान्	स्तुति हीनों को
वृद्धस्य	वृद्धिगतस्य	घटे हुए की
चित्	अपि	भी
वर्धतः	वर्धमानस्य	वढ़ते हुए की
द्याम्	दुलोकम्	दुलोक को
इनक्षतः	प्राप्नुवतः (नक्षगती, इषारोपजन इछान्दसः)	पहुँचने वाले की
स्तवानः	स्तुति कुर्वाणः	स्तुति करता हुआ
वमः	वम्रः	वम्र ऋषि ने
वि.	वि+	-
जघान	वि+जघान	नाश किया
सम्दिहः	समृद्धीः (दिह उपपद्ये, विद्ये)	समृद्धियों को

इन्द्रो व्रतानुगाय व्रतरहितानाऽऽयत्ती-कुर्वन्  
स्तोतृभिः (च) स्तुतिहीनान्धातयन् (वतते), धृष्टि  
गतस्याऽपि वर्धमानस्य, धुलोकं प्राप्नुवतः (च दस्योः)  
समृद्धीः स्तुतिं कुर्वाणो वज्रो विजघान ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

इन्द्र, व्रत रहितों को व्रत के अनुकूल चलने  
वालों के वस में करते हुए (और) स्तुति से हीनों को  
स्तुति करने वालों द्वारा मारते (रहते हैं) स्तुति शील  
वज्र (ऋषि) ने धड़े हुए (और) और भी बढ़ते हुए  
धुलोक को पहुँचने वाले (दस्यु) की सम्पत्तियों को  
नाश किया ॥ ९ ॥

वज्र ऋषि की स्तुति से धूल को प्राप्त करके इन्द्र ने वज्र  
(या धूली) रूप दस्यु की जो बहुत बढ़ गया था और अब भी बढ़  
रिहा था सम्पत्तियों को नाश किया और उस को धुलोक में नहीं  
पहुँचने दिया । इसी लिए ४ मील से ऊपर मेघ नहीं हैं ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

तच्च द्यत्त उग्रना सहसा स हो वि-  
रोदसी मज्जना बाधते शवः । आहवा-  
वातस्थ नृमणो मनोयुज आपूठ्यमाण

सवहन्नभिग्रवः ॥१०॥

तद्यत्	निर्मितयान्	रचा
यत्	यत्	जो
ते	तुभ्यम्	तेरे-लिये
उग्रना	उग्रना	उग्रना (गर्जना) ने
सहसा	पलेन	पल से..
सहः	पलम्	पल को
वि	वि +	-
रोदसी०	यायापिब्यो	पलोक (मोर) पिब्यो को
मज्जना	पलेन (निर्गम्य)	पल से
बाधते	वि+बाधते, विलोडितयान् (पृष्ठेऽन्)	कंपा दिया

श्रवः	बलम्	बल
आ	आ +	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वातस्य	वायोः	वायु के
नऽमनः	नरेपुमनो यस्य तत्सम्बुद्धौ	हे मनुष्यों, मैं मन रखने वाले
मनऽयुजः	मनोमात्रेणयुक्ताः	मन से जोड़े गए
आ	आ +	-
पूर्यमाणम्	आ + पूर्यमाणम्	सब ओर से पूर्ण को
अवहन्	आ + अवहन् आवहन्तु (लोडगेलट्)	लावें
अभि	प्रति	की ओर
श्रवः	(हवीरूपम्) अन्नम्	(हवि रूप) अन्न को

(हे इन्द्र!) उशना (ऋषिः) स्तुति-बलेन यद्वलं  
त्वदर्थनिर्मितवान्(तद्) बलं व्यावापृथिव्यौ सहसा विलो-  
डितवान्, हे नृमनः! सर्वत आपूर्यमाणं त्वां वातस्य  
मनोयुजः(अर्वा हवीरूपम्) अन्नं प्रत्यावहन्तु ॥१०॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) उशना (ऋषि) ने स्तुति के बल से  
जो बल आपके लिये रचा था, उस बलने साहस से  
धुलोक (और) पृथिवीको कंपा दिया था, हे मनुष्यों में मन  
रखने वाले ! सब ओर से पूर्ण आपको वायुके मन से  
जुड़ने वाले (घोड़े हवि रूप ) अन्नके प्रति लावे ॥१०॥

जो काम उशना ऋषि ने पूर्व काल में किया था वह भयभी-  
सम्भव है यदि हम भी स्तुति किया करें तो हमारी रक्षामें असमर्थ  
भीर निर्बल इन्द्र को फिर सबल कर सकते हैं ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२। १२। १२। १२।

मन्दिष्टयदुशनैकाव्ये सचा इन्द्रो

वङ्गवङ्गुतराधितिष्ठति । उग्रो ययि

निरप्रः स्रोतसासृजद् विशुष्णस्यः

हं हिता ऐरयत्पुरः । ११ ।

मन्दिष्ट	दृष्टवान्	हर्षित हुआ
यत्	यदा	जब
उग्रने	उशनसि	उशना पर
काव्ये	कवि पुत्रे	कवि के पुत्र पर
सचा	सह(भूत्वा)	साथ (होकर)
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
वद्ध०	अद्वौ (यकिकौटिल्ये)	घोड़ों को
वद्धुऽतरा	अतिशयेन कुटिल गमनौ (विमलेराकारः)	बहुत टेढ़े चलने वालों को
	अधि +	

तिष्ठति

अधि+तिष्ठति

चढ़ा

आरुढ़वान्

(लङ्गैलट्)

उग्रः

उग्रः

भयानक ने

ययिस्

मेघात्

(पञ्चम्ययैद्वितीया)

मेघ से

निः

निः +

—

अपः

जलानि

जलों को

स्रोतसा

प्रवाहरूपेण

प्रवाह रूप से

असृजत्

निः+असृजत्

छुड़ाया

मोचितवान्

वि

वि +

—

शुष्णस्य

शुष्णस्य

शुष्ण के

दृष्टिताः

दृष्टानि

दृढ़

ऐरयत्

वि+ऐरयत्

तोड़ दिया

भेदितवान्

पुरः

दुर्गाणि

दुर्गों को



सेस्कृतार्थः ।

यदेन्द्रः सह (भूत्वा) कविपुत्रे उशनसि दृष्टवान्  
(तदा) कुटिलगमनावश्वावारूढवान् (आरुह्य च सः)  
उग्रो मेघात् प्रवाह रूपेण जलानि मोचितवान्,  
शुष्णस्य दृढानि दुर्गाणि (च) भेदितवान् ॥११॥

भाषार्थः ।

जब इन्द्र साथ (हो कर) कविके पुत्र उशना पर  
हर्षित हुए (तब) तिछीं गति वाले घोड़ों पर चढ़े  
(फिर) उस भयानक (इन्द्र) ने बादल में से प्रवाह रूप  
से जलों को छुड़ाया और शुष्ण 'के दुर्गों' को तोड़  
डाला ॥

जब इन्द्र उशना के अश्वों पर बैठ कर हुए सोम से हर्षित हुए तब  
वह धीरे, शुष्ण को जो अनामृष्टि रूप असुर पृथिवी को सुका  
रहा था मारने के लिए इतरा कर चलने वाले तेज घोड़ों के रथ  
पर सवार हुए और बादलों में से प्रवाह रूप से जल को छुड़ा  
कर पृथिवी को सिन्धुन किया ।

इन्द्रो देवता जगतीन्द्रः । १२। १२। १२। १२।

आस्मार्थं वृषपाणिं प्रुतिष्ठसि प्रा-

थ्यातस्य प्रभृताये पुमन्दसे । इन्द्र-

यथासुतसोमेषुचाकनोऽनर्वाणंश्रुलो  
कुमारोहसेदिवि ॥१२॥

आ	आ+	-
रुम	(पूरणः)	-
रथम्	रथम्	रथ पर
वृषऽपानेषु	वृषस्य सेचन स- मर्थस्य(सोमस्य) पानेषु	वीर्ययुक्त(सोम) पानों में
तिष्ठसि	आ+तिष्ठसि, आरोहसि	चढ़ते हो
शाट्यातस्य	शाट्यातस्य (राजर्षेः)	शाट्यात राजर्षिके
प्रऽभृताः	सम्पादिताः	सिद्धहुए २
येषु	येषु	जिन में

मन्द॑से	दृष्य॑सि	हर्षि॑त होते हो
इन्द्र॑	हे इन्द्र॑ !	हे इन्द्र
यथा॑	यथा	जैसे
सु॒तऽसो॑मेष्	सु॒ता नि॒ष्पी॑डिता सो॒मा ये॒षु (य॒ज्ञेषु॑)	सोम निचोड़े जाने वाले (यज्ञों) में
चा॒कनः॑	काम॑यसे (कनीकान्तौले टिसिपि छान्दस० इलुः)	तू कामना करता है
अ॒न॒र्वा॒णम्	अव्या॑हतम् (भा० शो०)	न रुकने वाले को
प्र॒ला॒कम्	यशः॑	यश को
आ	आ +	—
रो॒ह॒से	आ + रौह॑से प्राप्नो॑षि (सा० भा०)	प्राप्त करते हो
दि॒वि	द्यु॒लोके	द्युलोक में

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वं) सेचनं समर्थस्य (सोमस्य) पानेषु  
 (प्राप्तुम्) रथमारोहसि, येषु (सोमेषु) दृष्यसि (ते)  
 शार्यातस्य (राजर्षेः सम्बन्धिनः) सम्पादिताः  
 (सन्ति), यथा (त्वं) अभिपुत सोमेषु (यज्ञेषु) कामयसे  
 (तथा) द्युलोकेऽव्याहतं यशः प्राप्तोषि ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र आप वीर्य युक्त (सोम) के पीने (के लिये  
 जाने को) रथ पर चढ़ते हैं, जिन (सोमों में) आप  
 मोद करते हैं (वे राजर्षि) शार्यातने सम्पादन किए  
 हैं, ज्यों २ आप सोम निचोड़े, जाने वाले (यज्ञों) की  
 कामना करते हैं, त्यों २ आप न रुकने वाले यश  
 को द्युलोक में प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

जब राजा शार्यात ने सोम से इन्द्र को मदयुक्त किया तब  
 उन्होंने ने घड़े २ वीर्य युक्त कर्म किए, जिन से उनका यश द्युलोक  
 में चढ़ा, ऐसे ही अब भी अब कोई इन्द्र को सोम अर्पण करता है  
 तब वे रथ पर चढ़ कर दस्युवधादि वीरताके अनेक कर्म करते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

अददा॑ अभि॑म॒ह॒ते॒व॒च॒स्य॒वे॒ क॒क्षी

व॒ते॒व॒च॒या॒मिन्द्र॑ सु॒न्व॒ते । मे॒ना॒भ॒वो

वृषणप्रवस्यसुक्रतो विप्रवेत्तातेसव-  
नेषुप्रवाच्या ॥१३॥

अददाः	दत्तवान्	दी
अभाम्	अल्पाम् (युवती मित्यर्थः)	जवान को
महते	वृद्धाय	बुढ़े के ताई
वचस्यवे	स्तुतिकुशलाय	स्तुति में चतुर के ताई
कक्षीवते	कक्षीवते	कक्षीवान्श्रुषि के ताई
वृचयाम्	वृचयारुषाम्	वृचया नाम वाली को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सुन्वते	सोमनिष्पीडनं कुर्वत	सोम निचोड़ने वाले के ताई
मेना	वाणी (निघं० ११११)	वाणी

अभवः	अभवः	हुए
वृषणश्वस्य	वृषणश्वस्य (राज्ञः)	वृषणश्व(राजा) की
सुऽक्रतो०	हे सुकर्मन् !	हे सुन्दर कर्मों से युक्त
विप्रवा	सर्वाणि	सम्पूर्ण
इत्	एव	ही
ता	तानि	वह
ते	तव	तेरे
सवनेषु	सोमोत्सवेषु	सोमके उत्सवोंमें
प्रऽवाच्या	प्रकर्षेण वक्त- व्यानि	खूब कथन करने योग्य हैं

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! ( त्वम् ) सोमनिष्पीडनं कुर्वते स्तुति  
कुशलाय वृद्धाय कक्षीवते वृचयारण्यां युवर्ति दत्तवान्  
हे सुकर्मन् ! ( त्वम् ) वृषणश्वस्य ( राज्ञः ) वाणी

रूपोऽभवः, तानि सर्वाण्येव तव (कर्मणि) सोमोत्स-  
वेषु प्रकर्षेण वक्तव्यानि ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र (आपने) सोम निचोड़ने वाले स्तुति में  
चतुर बुद्धे कक्षीवान के ताई वृचयानाम वाली यु-  
वता को दिया, हे सुन्दर कर्मों से युक्त, (आप)  
वृषणश्च (राजा के) वाणी रूप बने, ये सम्पूर्ण ही  
आपके (कर्म) सोम के उत्सवों में खूब कथन करने  
योग्य हैं ॥ १३ ॥

कक्षीवान ऋषि के वर्णनके लिए देखो पृ० ३६३। सोम निष्पीडन  
और स्तुति के पुण्य से इनको वृक्षावस्थामें वृचयानामी युवति स्त्री  
ने बरा ओर घे फिर युवा हुए ।

वृषणश्च राजा सदा इन्द्र का नाम जपता था, इसलिए इन्द्र  
उस की वाणी रूप बने, नाम जपने का उपदेश ऋ० ७।२२।५ में भी  
है "सद ते नाम स्वयशो विधन्मि"

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११॥

इन्द्रो॑ अ॒श्रायि॑ सु॒ध्यो॑ नि॒रे॒के॒ प॒ज्जेषु॑-

स्तो॑ मो॒दु॒ट्यो॑ न॒यूपः॑ । अ॒व॒यु॒र्गव्यूर॑-

थयुर्वसुय रिन्द्रइद्रायः क्षयतिप्रय-  
न्ता ॥ १४ ॥

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अश्रायि	आश्रयति (लङ्यैलुङ्)	आश्रय देता है
सुधयः	शोभन कर्मणः	सुकर्म करने वालों को
निरेके	नितरांरिकेजाते	भीड़ में
पज्ञेषु	अङ्गिरस्सु (पञ्चावमङ्गिरस्सरति शादद्यायनः)	अङ्गिरा वंशियों में
स्तोमः	स्तोमरूपः	स्तोत्ररूप
दुष्ट्यः	द्वारिभवः	द्वारमें होने वाला
न	इव	न्याई
यपः	स्तम्भः	खंभा



अ॒श्व॒व॒ऽयुः	अ॒श्वानिच्छन् (अश्ववत्प्रत्ययः)	घोड़ों की कामना करता हुआ
ग॒व्युः	गाइच्छन्	गौओं की इच्छा करता हुआ
र॒थ॒ऽयुः	रथानिच्छन्	रथों की इच्छा करता हुआ
व॒सु॒ऽयुः	धनानीच्छन्	धनों की इच्छा करता हुआ
इ॒न्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
इ॒त्	एव	ही
रा॒यः	सम्पत्तेः	सम्पत्ति का
क्ष॒य॒ति	शास्ति (आ०को०)	राज्य करता है
प्र॒ऽय॒न्ता	प्रदाता,	देने वाला

संस्कृतार्थः ।

अङ्गिरस्सु स्तोमरूपो द्वारिभवःस्तम्भइव (स्थिरः)  
इन्द्रो नितरां रिक्तेजाने सुकर्मण आश्रयति, अश्वान्  
गा रथान् धनानि (च)कामयमान इन्द्र एव सम्पत्तेः  
शासिता प्रदाता (च) अस्ति ॥१४॥

अङ्गिरा वंशियों में स्तोत्र रूप (और) द्वार में होने वाले खंभे की न्याइँ (निश्चल) इन्द्र सुकर्म करने वाले को भीड़ में आश्रय देते हैं, घोड़े, गौ, रथ (और) धन की कामना करने वाले इन्द्र ही सम्पत्ति के स्वामी (और) देने वाले हैं ॥ १४ ॥

इन्द्र जो अङ्गिरा वंशियों में स्तोत्र रूप हैं, अर्थात् अङ्गिरा जिन की सदा स्तुति करते हैं पुण्यात्मा को भीड़ में सदा शरण देते हैं और जैसे मनुष्य घरके द्वार के खंभेका निदर्शक होकर सहाय ले सकता है वैसे निदर्शक होकर पुण्यात्मा इन्द्र की शरण ले सकता है ।

मनु के लिए इन्द्र घोड़े, गौ, रथ और धन की कामना करते हैं, यही इन के देने वाले और यही इनके स्वामी हैं ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११

इ॒दं न॑मो॒ वृष॑भा॒यस्व॑रा॒जै स॒त्य-  
शु॒भ॒मा॒य॒त॒व॒सेऽवा॑चि । अ॒स्मिन्नि॑न्द्र  
वृ॒ज॒ने॒सर्व॑वी॒राः स्म॑त्सू॒रिभि॑स्तव॒श-  
स्म॑न्त॒स्याम ॥१५॥

इ॒दम्	इ॒दम्	यह
नमः॑	नमः	नमस्कार
वृष॒भाय॑	श्रेष्ठाय	श्रेष्ठ के ताई
स्व॒ऽराज॑	स्वकीयेन(तेजसा) दीप्यमानाय	अपने (तेजसे) प्रकाशमानकेताई
{ स॒त्य॒ऽशु॒ ष्माय॑	सत्यबलाय	सच्चे बली के ताई
तव॑से	प्रवृद्धाय	बढेहुए के ताई,
अ॒वा॒चि॒	कथितम्	कही गई हे
अ॒स्मिन्	आस्मन्	इस से
इ॒न्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वृ॒ज॒न॑	सङ्ग्रामे!	युद्ध में

सर्ववीराः	सर्व वीर युक्ताः	सम्पूर्णवीरों से युक्त
स्मत्	सुष्ठु	भली प्रकार
सूरिभिः	स्तोत्रभिः (सह)	स्तोताओं के
तव	(निघं० ३।१६)	(साथ)
शर्मन्	तव	तेरी
स्थाम	शरणे	शरण में
	स्याम	हम होवें

संस्कृतार्थः ।

श्रेष्ठाय, निज-(तेजसा) दीप्यमानाय, सत्य-  
बलाय प्रवृद्धाय (च भवते) इदं नमोऽवाचि, हे इन्द्र !  
(वयम्) अस्मिन् सङ्ग्रामे सर्ववीरयुक्ताः, स्तोत्रभिः  
(सह) तव शरणे सुष्ठु स्याम ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

श्रेष्ठ (और) अपने (तेजसे) प्रकाशमान सच्चे  
बली (और) घड़े हुए (आपके) ताई यह नमस्कार  
उच्चारण की गई है । हे इन्द्र हम इस युद्ध में  
सम्पूर्ण वीरों से युक्त (और) स्तोताओं के (साथ) भली  
प्रकार आप की शरण में होवें ॥ १५ ॥

आ०मं०१ सू०५२मं०१ ( १२९२ )

“इस युद्ध में” जो उपस्थित है। युद्ध में सच्चे बली और धड़े हुए इन्द्र की शरण लेने से मय नष्ट होजाता है और विजय प्राप्त होती है।

इत्येकपञ्चाशत्सूक्तम्

अट०मं०१ सू० ५२।

विनियोग—यह सूक्त गवामयन के विपुवत् नामी मध्यम दिन में मरुतों के शस्त्र में पड़ा जाता है। (आ०धौ० सू०३० २।६।६)

इस सूक्त में इन्द्र के पराक्रम और धीर कर्मों की स्तुति है जिन में धृष्ट वधादि कई कर्म ऐसे हैं जिन के लिये मरुदगण ने स्तुति द्वारा उत्साह बढ़ा कर उनकी सहायता की। जब इन्द्र भी अपने सहायक मित्रों के ध्वजन से प्रोत्साहित होकर एक से बढ़कर दूसरा धीर कर्म करते हैं तो निर्यल मनुष्य को किसी बड़े कामके कारभारमें मित्रोंके अनुमोदन की कितनी भारी आवश्यकता है ॥

इन्द्रोदेवता सव्यआङ्गिरस ऋषिर्जगतीछन्दः।

१२।१२।१२।१२॥

तय॑सु॒मे॒षं॒म॒ह॒या॒स्व॒र्वि॒दं॒ श्र॒तं॒यस्य॑

सु॒भ॒वः॒सा॒क॒मी॒र॒ते॒। अ॒त्यं॒न॒वा॒जं॒ह॒व-

न॒स्य॒दं॒र॒थ॒ मे॒न्द्रं॒व॒व॒त्या॒म॒व॒से॒सु॒वृ॒त्ति-

भिः॑।१।

त्यम्	तम्	उसको
सु	सु+	-
मेषम्	सेकारम् (नरम्)	नर को
मह्य	सु+मह्य, सुष्ठु पूजय (महपूजायाम्)	खूब पूजो
स्वःऽविदम्	ज्योतिषो लम्भकम् (भग्नर्भाषितप्यर्थः)	ज्योति के प्राप्त कराने वाले को
शतम्	शतम्	सैंकड़ों
यस्य	यस्य	जिसके
सऽभवः	सुष्ठु भवन्ति ते, सौम्याः (उच्यतेऽप्राप्तौ यणादेश दृष्टान्दसः)	भद्र
साकम्	सह	साथ २
ईरते	गच्छन्ति	चलते हैं

अत्यम्	अश्वम्	घोड़ा
न	इव (निघं० १।१४)	की न्याई
वाजम्	वल रूपम्	वल रूप
{ हवनऽ- स्यदम्	हवने स्यदो वेगो यस्य, तम्	बुलाने परं शी आने वाले
रथम्	रथिनम् (आ० को०)	रथी को
आ	आ +	—
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्रको
ववृत्त्याम्	आ + ववृत्त्याम् आवर्तयामि	फेरता हूँ
अवस्ते	रक्षार्थम्	रक्षा के लिये
सुहृत्तिऽभिः	सुष्ठुनमनैः (आवर्जनं नग्नम्)	बहुत नमस्कारों से

संस्कृतार्थः ।

तं ज्योतिषोलम्भकं नरं सुष्ठुपूजय, यस्य शतं  
सौम्याः (देवाः) सार्धं गच्छन्ति (अहम्) अश्वमिव

बलवन्तं . रथिनमिन्द्रं सुष्ठु नमनैः रक्षार्थम् (स्वाभि  
मुखम्) आवर्तयामि ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

उस ज्योति के प्राप्त कराने वाले नर (वीर)  
को खूब पूजो, जिस के साथ सैकड़ों भद्र (वीर)  
चलते हैं, मैं घोंड़े जैसे बलवान् . बुलाने पर शीघ्र  
आने वाले रथी इन्द्र को बहुत नमस्कारों से (अपनी  
ओर) फेरता हूँ ॥ १ ॥

(१) भद्र वीरों से मरुद्गण का आशय है।

इन्द्रोद्देवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

सपर्वतो न धरुणो ऽवच्युतः सहस्र

मूतिस्तविषीषु बाहधे । इन्द्रो यद्वच

सवधीन्नदीवतं मुञ्जन्नयौ सिजह-

षाणो अन्धसा । २ ।

सः	सः	वह
पर्वतः	पर्वतः	पर्वत



न	इव	की न्याईं
धरुणेषु	जलेषु (निघं०१।१२)	जलों में
अच्युतः	चलनराहित्येन स्थितः	निश्चल ठहरा हुआ
{ सहस्रम् ऽकृतिः	सहस्रमूतयोयस्य सः(लुगभावश्छान्दसः)	सहस्रों रक्षाओं से युक्त
तविषीषु	बलेषु	बलों में
ववृधे	ववृधे	बढ़ा
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
यत्	यदा	जब
वृचम्	वृत्रम्	वृत्र को
अवधीत्	हतवान्	मारा
नदीऽवतम्	उदकानामावर- कम् (नदनान्मद्यमापः)	जलों के रोकने वाले को

उ॒ज्जन्	नि॒ष्पीडयन्	निचोड़ता हुआ
अ॒र्णो॑सि	जलानि (निघं० १।१२)	जलों को
ज॒ह्मि॑षाणः	अतिशयेन हृष्यन्	अत्यन्त हर्षित होता हुआ
अ॒न्ध॑सा	सोमेन	सोम से

संस्कृतार्थः ।

जलेषु पर्वत इव निश्चलः सहस्ररक्षाभिर्युक्तः स इन्द्रो बलेषु बबृधे, यदा सोमेनाऽत्यन्तं हृष्यन् (मेघेभ्यः) जलानि निष्पीडयन्नुदकानामावरकंवृत्रं हतवान् ॥ २ ॥

भाषार्थः

जलों में पर्वत की न्याईं निश्चल ठैरे हुए सहस्रों रक्षाओं से युक्त वह इन्द्र बलों में बढे । जब सोम से अत्यन्त हर्षित हुए २ ( ओर बादलों से ) जलों को निचोड़ते हुए उन्होंने जलों के रोकने वाले वृत्र को मारा ॥ २ ॥

शत्रु से युद्ध प्रकट करने से पहले बलों में बढना, और सहस्रों रक्षाओं और अत्यन्त हर्ष से युक्त होना भावश्यक है । नहीं तो निस्तन्देह भाव होता है ॥

इन्द्रोदेवता'जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

सहि॒हरो॒द्वरि॒षुव॒त्रऊ॒धनि च॒न्द्र-  
वृ॒ध्नोम॒दवृ॒द्धोम॒नीषि॒भिः । इन्द्रं॒ तम-  
ह्वेस्व॒पस्य॒याधिया॑ मंहि॒ष्ठरा॒तिंस-  
हि॒पप्रि॒रन्ध॑सः । ३ ।

सः	सः	वह
हि	खलु	सचमुच
१ द्वरः	आवरकः (इ.आवरणे, अच् प्रत्ययः)	रोकने वाला
१ द्वरिषु	आवरकेषु कतरि इ प्रत्ययः)	रोकने वालों में
२ वत्रः	प्रच्छन्नः (वृञ्आवरणे, कर्मणि क.प्रत्ययो द्विर्माविद्धा- न्दस)	छिपा हुआ
२ ऊधनि	स्तने	धन में

चन्द्रवुधनः	आल्हादक मूलः	आनन्द देने वालों का मूल
मदः	मदाः सोमास्ते वर्धितः	सोम रसों से वढ़ाया हुआ
मनीषिभिः	मेधाविभिः	बुद्धिमानों से
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
तम्	तम्	उसको
अह्ने	आह्वयामि	मैं बुलाता हूँ
{ सुऽअप- स्यया	शोभनकर्मैच्छा युक्तया	सुकर्मकी इच्छा वाली से
धिया	धुड्या	बुद्धि से
{ मंहिष्ठ- रातिम्	मंहिष्ठाप्रवृद्धा रातिर्दानं यस्य, तम्	घड़े हुए दान वाले को
सः	सः	वह
हि	यतः	यथोंकि

पप्रिः	पूरयिता	पूर्ण करने वाला
अन्नसः	अन्नस्य (निघं० २।७)	अन्न के

सस्त्रुतार्यः ।

सः खलु आवरकेष्वावरकः (आकाश-)स्तने  
प्रच्छन्नः, आल्हादकमूलः, मेधाविभिः सोमैर्वर्धितः  
(चाऽस्ति) (अहम्) प्रवृद्धदानं तमिन्द्रं शोभनकर्म-  
च्छायुक्तया वृद्ध्या आह्वयामि यतः सोऽन्नस्य पूर-  
यिता (अस्ति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच वह रोकने वालों में रोकने वाला,  
(आकाश के) थन में छिपा हुआ, आनन्द देनेवालों  
का मूल (और) वृद्धिमानों से सोम रसों द्वारा बढ़ाया  
गया (है) मैं उस बड़े हुए दान वाले इन्द्र को सुकर्म  
की इच्छा करने वाली वृद्धि से बुलाता हूँ, क्योंकि  
वह अन्न के पूर्ण करने वाले (हैं) ॥ ३ ॥

(१) "रोकने वालों में रोकने वाला" अर्थात् जो वृष्टि को  
रोकने वाले वृत्रादि असुर हैं इन्द्र उन को इस रोकने के कर्म से  
रोकने वाले हैं ।

(२) आकाश का थन बादल हैं, इन्द्र उन बादलों में विद्युत  
रूप से छिपे हुए हैं ।

(३) इन्द्र ही सच्चे आनन्द को देने वाले पदार्थों को मूल है ।  
जो आनन्द इन्द्र से भिन्न है वह दुःख का मूल है ।

(४) सुकर्म की इच्छा वाली बुद्धि से ही उस बड़े दानी को  
घुलाना चाहिए । बुरे कर्म में लगाया हुआ उस का दान भी क-  
स्याण को नहीं करता ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

आयं॑पृ॒णन्ति॑दि॒विस॒न्नवर्हि॑षः स-  
म॒द्रं न॑सु॒भ्वः॑स्वा॒अभि॑ष्टयः । तं॑वृ॒त्र-  
ह॒त्ये॒अनु॑त॒स्यु॒रु॒तयः॑ शु॒ष्मा॒इन्द्र॑म-  
वा॒ता॒अ॒रु॒त॒सवः॑ ।४।

आ	आ +	-
यम्	यम्	जिस को
पृ॒णन्ति॑	आ + पृणन्ति, सर्वतः पूरयन्ति	सब ओर से भरते हैं
दि॒वि	द्युलोक	द्युलोक में

{ सञ्जऽव- र्हिषः	जलमेव बर्हिर्येषां ते (समेत्येदक नाम निघ० १।१२)	जल रूपी कुशा वाले
समुद्रम्	समुद्रम्	समुद्र को
न	इव	की न्याई
सुऽभ्वः	सौम्याः	भद्र
स्वाः	स्वकीयाः	अपे
अभिष्टयः	सहायकाः (आन्की०)	सहायक
तत्	तम्	उसको
वृत्रऽहत्ये	वृत्रहनने (लिङ्गव्यत्ययदृष्टान्दस)	वृत्र को मारने में
अनु	अनु +	-
तस्थुः	अनु + तस्थुः,	पीछे ठहरे
ऊतयः	रक्षितारः	रक्षा करने वाले

शुष्माः	(शत्रूणाम्)शोष- यितारः	(शत्रुओं के) सुकाने वाले
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
अवाताः	चलन रहिताः (वातिर्गतिकर्मा निघं० १२।१४)	न ढिगने वाले
{ अक्रुतः सर्वः	अहुतोऽकुटिलः प्सरूपं येषां ते, ऋजुरूपाः	सीधे रूप वाले

संज्ञितार्थः ।

यं द्युलोक उदकवर्हिपः सौम्याः स्वकीयाः सहा-  
यकाः समुद्रमिव सर्वतः पूरयन्ति, तमिन्द्रं वृत्रहनने  
(शत्रूणाम्) शोषयितारश्चलन रहिता ऋजुरूपा रक्षि-  
तारः (मरुतः) अनुतस्थुः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

जिस को द्युलोक में जल रूपी कुशा वाले भद्र  
अपने सहायक समुद्र की न्याईं सब ओर से भरते  
हैं, वृत्र को मारते समय (शत्रुओं के) सुकाने वाले  
न ढिगने वाले, सीधे रूप वाले रक्षक (मरुत) उस  
इन्द्र के पीछे ठहरे ॥ ४ ॥



जैसे नदियां समुद्र को सब ओर से भरती हैं। इसी प्रकार इन्द्र के सहायक और भक्त मरुद्गण घुलोरु में जल रूपी धुंसा बिछा कर इन्द्र को सोम रस से पूर्ण करते हैं। इन्हीं लोगों ने वृत्र को मारते समय इन्द्र के पीछे ठहर कर "प्रहर भगवो जहि वीर्यस्य" इत्यादि वचनों से उन का उत्साह बढ़ाया था ॥

इन्द्रोदेवता जगती छन्दः । १२। १२। १२। १२॥

अभिस्वष्टिंमदे अस्य युध्यती  
रध्वीरिव प्रवणे सस्रुतयः । इन्द्रोय-  
वजीधृपमाणो अन्धसा भिनवलस्य  
परिधीरिव त्रितः ॥ ५॥

अभि

प्रति

की ओर

स्वष्टिंमदे

स्वा अधीना वृष्टिं

वृष्टि को घस में

सदे

यस्य तम् (वृत्रम्)

करने वाले को

अस्य

अस्य

इस के

मदे (सन्नि)

मद (होने पर)

वलस्य	वलस्य	वल के
{ परिधीन् ऽइव	परिधीनिव	जैसे घेरों को
चितः	त्रितः	त्रित ने

संस्कृतार्थः

(सोमस्य) मदं वृष्टिप्रतिबन्धकं प्रति युध्यतोऽस्य सहायकाः ( मरुतः ) निम्नदेशे वेगवत्यः ( नद्यः ) इव [इन्द्रम्] प्रतिजग्मुः, यदा वज्रयुक्त इन्द्रः (पीतेन) सोमेन प्रगल्भः सन् त्रित[रूपेण] वलस्य पारिधीनिव (सम्पादितान् दुर्गान्) अभिनत् ॥५॥

भाषार्थः ।

(सोम के) मद में वृष्टि रोकने वाले के साथ युद्ध करते हुए इसके सहायक (मरुत) (इन्द्र को) ऐसे प्राप्त हुए जैसे वेगवाली नदियां नीचे स्थान में (प्राप्त होती हैं) जब वज्रधारी इन्द्र ने सोम (पान करने से) वेधड़क होकर त्रित (रूप से) घेरों की न्याई (घनाए हुए), वल के (गर्दों) को तोड़ डाला ॥ ५ ॥

त्रित, द्वित और एकत ये तीनों पापिंधि अग्नि के पूर्ण रूप हैं जो मनुष्य सृष्टि से पहले हो चुके हैं। इन में से त्रित विद्युत है जो इन्द्र का भी एक रूप है विद्युत रूप से ही इन्द्र 'घल' अर्थात् वृक्ष के दुर्गों को तोड़ कर वर्षा करते हैं।

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२। १२। १२। १२।

परि॑ घृ॒णा च॑र॒तिति॑ त्विषे॒श्वो ऽपो॑

वृ॒त्वीर॑ज॒सो वृ॑ध्न॒माश्र॑यत् । वृ॒चस्य॑य

तप्र॑व॒णे दु॒र्गभि॑श्च॒वन्तो निज॑घ्नन्थ॒हन्वो-

रिन्द्र॑तन्य॒तुस् । ६।

परि॑	परितः	चारों ओर से
ई॒म्	(पूर्णः)	-
घृ॒णा	तेजः (पृणदीप्ती)	तेज
च॒र॒ति	व्याप्नोत् (लडघेंठर्)	व्याप्त हुआ
ति॒त्विषे॑	दीप्तवान्	चमका

शवः	वलम्	वल
अपः	अपः+	-
वृत्वी	अपः+वृत्वी जलानामावरकः	जलों के रोकने वाला
रजसः	अन्तरिक्षस्य	अन्तरिक्ष के
बुधनम्	मूलम्	पेंदे में
आ	आ+	-
अशयत्	आ + अशयत् (शीङ्स्वप्ने)	सोंया
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
वर्ण	निम्न प्रदेशे	नीचे के स्थान में
दुःशृभि- प्रवनः	यस्य व्यापनं दुःखेन गृहीतुं शक्यते सः (ग्रहउपादाने, अगूष् व्याप्ता)	जिसके फैलने को रोकना कठिन है

निऽजघ्न्य	प्रहृतवान्.	मारा
हन्वोः	मुख पार्श्वयो.	दोनों ज़बड़ों के
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तन्यतुम्	वज्रम् (आ०को०)	वज्र को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वाम्) तेजः परितो व्याप्नोत्, (तव) चलं (च) दीप्तवान्, जलानामावरकः (च) अन्तरिक्षस्य मूलप्रदेशे शयितवान् यदा ( त्वम् ) दुर्ग्रह व्यापनस्य घृत्रस्य हन्वोः प्रवणोद्देशे वज्रप्रहृतवान् । ६

भाषार्थः ।

हे इन्द्र (आप को) तेज सब ओर से व्याप्त हुआ, आप का चल चमका (और) जलों के रोकने वाला अन्तरिक्ष के पेंदे में सोया, जब आपने न रुकने वाले विस्तार युक्त घृत्र के ज़बड़ों के नीचे के स्थान में वज्र को मारा ॥ ६ ॥

(१) अन्तरिक्ष का पेंदा अर्थात् पृथिवी, जिस पर घृष्टि के रोकने वाला घृत्र घृष्टि के पण रूप से सितता ।

(२) ज़बड़ों के नीचे का स्थान ग्रीवा (गर्दन) है

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

क्र॒दं न॒हि॒ त्वा॒न्यु॒षन्त्यु॒र्म॒यो ब्र॒ह्मा॒-  
णीन्द्र॒तव॒यानि॒वर्ध॑ना। त्व॒ष्टा॒चित्ते॒  
यु॒ज्य॑वा॒ह॒धेश॒व स्त॒त॒क्ष॒व॒ज॒म॒भि॒भू॒-  
त्यो॒ज॑सम् ।७।

क्र॒दम्	जलाशयम्	ताल को
न	इव	जैसे
हि॒	खलु	सचमुच
त्वा॒	त्वाम्	तुझ को
निऽकृ॒ष॒- न्ति	प्राप्तुवन्ति	प्राप्त होते हैं
ऊ॒र्म॒यः	जलप्रवाहाः (सा०मा०)	जल के प्रवाह
ब्र॒ह्मा॒णि	स्तोत्राणि	स्तुतियों

इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र ;
तव	तव	तेरे
यानि	यानि	जो
वर्धना	वर्धयितृणि (करणेन्युद्, शैलीपः)	बढ़ाने वाले
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
चित्	अपि	भी
ते	तव	तेरे
युज्यम्	स्वीयम्	निजके
वृद्धे	वर्धितवान् (अन्तर्माचितवर्धः)	बढ़ायां
श्वः	बलम्	बल को
ततश्च	तक्षितवान्	धड़ा
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को

<p><b>अभिभूति</b> <b>ऽओजसम्</b></p>	<p>अभिभूयते परा- जीयते येन बलेन तम्</p>	<p>पराजय करनेवाले बलसे युक्त को</p>
---	---	---

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! तवार्धयितृणि यानि स्तोत्राणि (सन्ति, तानि) जलप्रवाहा हृदमिव त्वां खलु प्राप्नुवन्ति, त्वष्टाऽपि तव स्वीयं बलं वर्धितवान् अपराजितबलम् तव वज्रम् (च) तक्षितवान् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र, आपके बढ़ाने वाले जो स्तोत्र हैं वे सचमुच आपको (ऐसे) प्राप्त होते हैं जैसे ताल को जल के प्रवाह, त्वष्टा ने भी आपके निजके बलको बढ़ाया (और) पराजय करने वाले बलसे युक्त (आपके) वज्र को घड़ा ॥ ७ ॥

(१) अथ दृष्टि होती है, तो ग्राम के समीप छोटी छोटी गादियाँ बह कर तलाओं में पहुँचती हैं, और यद् ताल बढ़ता जाता है । इसी प्रकार हमारी स्तुतियों से इन्द्र बढ़ते हैं ।

(२) यल इन्द्र में स्वयं विद्यमान है परन्तु त्वष्टा ने जो दृष्टि कर्ता की कारीगरी के अमिमानी देवता हैं यज्ञ को पता कर इन्द्र का बल और भी अधिक किया ।



इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

जघन्वाँउहरिभिःसम्भतक्रत

विन्द्रवृचमनुषेगातुयन्नपः। अयच्छ

थावाह्वीर्वज्रमायस मधारयोदिव्या-

सूय्यहृशे । ८।

जघन्वान्	हतवान् (हन्तलिट् कथसु )	मारा
जम्०	(पूरण )	-
हरिऽभिः	अश्वै	घोडों से
{ सम्भतऽ- क्रतो०	हे सम्पादित बल	हे बलको सपादन करने वाले
इन्द्र	हे इन्द्र ।	हे इन्द्र
वृचम्	वृत्रम्	वृत्र को

मनुषे	मनुष्याय (व्यत्ययदृष्टान्बसः)	मनुष्य के लिये
गातुऽयन्	प्रापयन्	प्राप्त कराता हुआ
अपः	जलानि	जलों को
अयच्छथाः	धृतवान् (इत्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	धारण किया
बाह्वीः	भुजयोः	भुजाओं में
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
आयसम्	अयोमयम्	लोहे के (वने हुए) को
अधारयः	स्थापितवान्	धारण किया
दिवि	द्युलोके	आकाश में
आ	(समुच्चयाऽर्थः)	और
सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य को
दृष्टे	दृष्टुम्	दर्शन के लिए

संस्कृतार्थः ।

हे अश्वैः सम्पादित बल ! इन्द्र ! (यदा) मनु-  
ष्याय जलानि प्रापयन् (त्वम्) वृत्रं हतवान् (तदा)  
अयोमयं वज्रं दाहोर्धृतवान् ( लोकानाम् ) दर्शनाय  
द्युलोके सूर्यम् (च) स्थापितवान् ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे घोड़े द्वारा बलको सम्पादन करने वाले इन्द्र !  
(जब) मनुष्य के लिए जलो को प्राप्त कराते हुए  
आपने वृत्र को मारा तब आपने लोहे के वज्र को  
भुजाओं में लिया (और लोकों के) दर्शन के लिए  
आकाश में सूर्य को स्थापन किया ॥ ८ ॥

(१) शत्रु के साथ युद्ध करने में घोड़े भी बल की सामग्री में एक  
प्रधान अंग हैं ।

(२) सूर्य का दर्शन इस पृथिवी पर प्रथमज, वृत्र को मारने  
से ही हुआ है [देखो पृ० ७५६]

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

बृहत्स्वप्नचन्द्रममवद्यदुक्थ्यः ।

मक्षयवतभियसारीहणं दिवः । यन्मां

नृषप्रधनाद्बुद्धमृतयः स्वर्नृषाचोम-  
रुतोऽमदन्ननु ॥६॥

बृहत्	महत्	महान को
स्वऽचन्द्रम्	स्वतआह्लादकम्	स्वयं आनन्द देने वाले को
अमऽवत्	बलयुक्तम् (आ०को०)	बल युक्त को
यत्	यत्	जो
उक्थ्यम्	स्तुतियोग्यम्	स्तुति योग्य को
अकणवत्	कृतवन्तः	किया
भियसा	भयेन (सुगागमश्छान्दस.)	भय से
रोहणम्	आरोहणहेतुभूतम्	प्राप्त कराने वालेको
दिवः	स्वर्गस्य	स्वर्ग के
यत्	यदा	जब

{ मानुषः- प्रधानः	मनुष्य हित सङ्ग्रामाः	मनुष्यों के लिए युद्ध करने वाले
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
ऊतयः	सहायकाः	सहायक
स्वः	द्युलोके (भग्नयम्)	द्युलोक में
नऽसाचः	मनुष्यान्सेवमानाः (एव सेवने)	मनुष्यों पर उप- कार करने वाले
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
अमदन्	अनु + अमदन् अनुमोदितवन्तः	अनुमोदन किया
अनु	अनु +	

सस्वतार्यः ।

(मनुष्याः) स्वतआहादकं वलयुक्तं स्तुतियोग्यं  
स्वर्गस्याऽऽरोहण भूत यन्महत् ( स्तोत्रमस्ति तद्-  
पृथ- ) भयेन कृतवन्तः, यद्वा मनुष्यहिताय सङ्ग्रामे

प्रवृत्ता मनुष्यान्सेवमाना सहायका मरुतो द्युलोके  
इन्द्रमनुमोदितवन्तः ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

(मनुष्यों ने) स्वयं आनन्द देनेवाला बलवृत्त  
स्तुति के योग्य स्वर्ग को प्राप्त करानेवाला जो  
महान (स्तोत्र है उसको धृत्र के) भय से बनाया,  
जब मनुष्यों के लिये युद्ध करने वाले मनुष्यों पर  
उपकार करने वाले, इन्द्र के सहायक मरुतों ने  
द्युलोक में इन्द्र को अनुमोदन किया ॥ ९ ॥

मनुष्यों के हित के लिये सम्मान करने वाले मरुतों ने मनुष्यों  
के उपकार के लिए इन्द्र को धृत्र के साथ युद्ध करने के लिये प्रेरण  
किया, जब देवता मनुष्यों के लिए ऐसे हित के काम करते हैं तो  
यह लोक सुख रूप होने की जगह दुःख रूप क्यों हैं, इसका एक  
कारण यह है कि मनुष्य दुःख या भय के समय पर ;स्वयं  
आनन्द देने वाले, यह वृत्त और सुख को प्राप्त करने वाले स्तोत्र  
को नहीं गाते, जिस से दुःख के कारणों को जीतने के लिए देव-  
ताओं का यह पद ॥

इन्द्रोदेवता जगतीन्द्रः १२।१२।१२।१२।

द्यौश्चिदस्यामवाँअहःस्वना

दयोयवीज्ञियसावर्जइन्द्रते । वृचस्य

यद्बद्बधानस्यरोदसी मदेसुतस्य  
शवसाऽभिनच्छिरः ॥१०॥

द्यौः	द्युलोकः	द्युलोक
चित्	अपि	भी
अस्य	अस्य	इसके
अमऽवान्	बलवान्	बली
अहेः	वृत्रस्य	वृत्र के
स्वनात्	शब्दात्	शब्द से
अयोयवीत्	पुनःपुनःकम्पित वान् (युमिध्रणामिध्रणयोः)	बार बार कांपा
भियसा	भयेन	भय से
वज्रः	वज्रः	वज्र न

इन्द्र	हे इन्द्र	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
{ बद्धवधा- नस्य	बाधनशीलस्य (बाधू विलोडने)	सताने वाले के
रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	धुलोक (और) पृथिवी को
मदे	मदे	मद में
सुतस्य	निष्पीडितस्य (सोमस्य)	सोम के
शवसा	वलेन	चल से
अभिनत्	अच्छिन्नत्	काट दिया
शिरः	शिरः	शिर को



संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! अस्य वृत्रस्य शब्दात् बलवान् द्यो-  
रपि भयेन पुनः पुनः कम्पितवान् (यदा) सोमस्य  
मदे (सति) तव वज्रो व्यावा पृथिव्यौ बाधन शीलस्य  
वृत्रस्य शिरो धलेनच्छेदितवान् ॥ १० ॥

मापार्थः ।

हे इन्द्र ! इस वृत्रके शब्द से बलवाला द्युलोक  
भी डर से चार बार कांपा, जब सोमके मद में आप  
के वज्रने द्युलोक और पृथिवीको सताने वाले वृत्रके  
शिर को धल से काट दिया ॥ १० ॥

(१) वृत्रके शब्दसे आकाशका बारम्बार कांपना "अयोयद्यीत्"  
शब्द ठीक चोतन करता है, प्रायेक ध्वनि से आकाश के परमाणु  
बारबार मिलते और भलग होते हैं और यही कम्पनके लक्षण हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

यदि॑न्वि॒न्द्र॑पृ॒थि॒वीद॑ग्न॒भु॒जि॒र॒हा-  
नि॒वि॒श्व॑वा॒त॒त॒न॒न्त॑कृ॒ण्ट॑यः । अ॒त्रा॑ह॒ते  
म॒घ॒व॒न्वि॑श्रु॒तं॒स॒हो॒ द्या॑म॒नु॒श॒व॒सा॒व-  
ह॑णा॒भु॒वत्॥११॥

यत्	यदि	यदि
इत्	अपि	भी
नु	खलु	सचमुच
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
दशभुजिः	दशगुणिता भोग वती	दस गुने भोग वाली
अहानि	दिनानि (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	दिनों में
विप्रा	सर्वाणि (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	सब
ततनन्त	विस्तृताभवेयुः (लिङर्थे लङ् द्विमांश- इच्छाद्दसः)	फैलें
कुण्टयः	मनुष्याः (निघं० २।३)	मनुष्य
अत्र	अत्र	यहां
अह	खलु	सचमुच

ते	तव	तेरा
म॒घऽव॒न्	हे धनवन् !	हे धन वाले
वि॒ष्॒तम्	विख्यातः	प्रसिद्ध
स॒हः	पराक्रमः	पराक्रम
द्याम्	द्युलोकम्	द्युलोक को
अ॒नु	(साम्ये)	तुल्य
श॒वसा	बलेन (निघं० २।८)	बल से
वृ॒ह॒णा	परितो वृद्धः (निघं० ४।३)	चारों ओर बढ़ा हुआ
भु॒वत्	भवेत् (लेटघडागमउपडा देशद्वय)	होवे

सप्ततार्यः ।

हे इन्द्र ! यदि खलु पृथिवी दश गुणिता भोग  
वत्यपि स्यात् मनुष्याः (च) सर्वेषु दिनेषु विस्तृता  
भवेयुः, (तदापि) हे धनवन् तव पराक्रमोऽत्र विख्यातो  
द्युलोकवत् परितो वृद्धः (च) भवेत् ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! जो सब मुच पृथिवी दसगुनी भोग वाली भी हो जावे (और) मनुष्य सब दिन बढ़ते रहें (तोभी) हे धनवाले ! आपका पराक्रम यहां पर प्रसिद्ध और बलोक के सदृश चारों आर बढ़ा हुआ हो ॥ ११ ॥

पृथिवी पर मनुष्यों की संख्या अन्नादि भोग पर निर्भर है यदि अब से दस गुना अन्न होने लगे और मनुष्य दिन दिन बढ़ने लगें तौ भी इन्द्र का पराक्रम इन सब मनुष्यों में फैल जावेगा ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

तवमस्यपारेरजसोव्योमनः स्वभू-  
तयोजाअवसेधृषन्मनः । चक्षुषेभूमि-  
प्रतिमानमोजसो ऽपःस्वःपरिभूरेष्या  
दिवम् ॥ १२ ॥

तवम्      | त्वम्      | तू ने

अस्य	अस्य	इस के
पारे	सीमायाम्	सीमा में
रजसः	लोकस्य (लोकार्जास्युपपत्ते निघ०)	लोक की
विऽओमनः	अन्तरिक्षस्य (निघ० ११३)	अन्तरिक्ष की
{ स्वभूतिऽ ओजाः	स्वभूतबलः	स्वयं होने वाले बल से युक्त
अवसे	रक्षायै	रक्षा के लिए
धृषत्ऽमनः	धृषत्, प्रगल्भमनो यस्य तत्सम्बुद्धौ	हे निडर मनवाले
चक्षुषे	कृतवान्	घनाया है
भूमिम्	पृथिवीम्	पृथिवी को
प्रतिऽमानम्	प्रतिरूपम्	नमूना
ओजसः	बलस्य	बल का

अपः	जलानि	जलों को
स्वः०	ज्योतिः	ज्योति को
परिऽभूः	परिग्रहीता	घेरने वाला
एषि	प्राप्नोषि	पहुंचते हो
आ	(मर्यादायाम्)	तक
दिवम्	द्युलोकम्	द्युलोक को

सदृशार्थः ।

हे प्रगल्भमनः ! अस्याऽन्तरिक्षलोकस्य सीमायां स्वयम्भूतबल युक्तस्त्वम्(अस्मद्)रक्षायेऽपृथिवीं(निज) बलस्य प्रतिरूपां कृतवानसि (स्वम्) जलानि ज्योतिः (च) परिग्रहीत्वा द्युलोक पर्यन्तं प्राप्नोषि ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

हे निडर मनवाले ! इस अन्तरिक्ष लोक की सीमा में स्वयं होनेवाले बल से युक्त आपने हमारी रक्षा के लिये पृथिवी को अपने बल का नमूना घनाया है, आप जल और ज्योतिको घेर कर द्युलोक तक पहुंचते हो ॥ १२ ॥

इन्द्रके बल का एक छोटा सा नमूना पृथिवी है, इन्द्र तो आकाश के जल और ज्योति को बीच में ले कर घेरता है - - -

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
११८२	०	+ प्राध	+ प्राधि,	१२१२	१६	संघम्नेन	संघम्नेन
"	११	स्युट	स्युट्	१२१०	१३	रु संरु	रु संरु
११८५	०	घममिति	मघमिति	"	१६	सुऽपे	सुऽपे
११८८	३	न्ता	न्ती	"	१७	सुऽखम्	सुऽखम्
"	१०	यद	यदु	१२१८	१४	तरनु	तूरनु
१२०२, १०		गुणन्ति	गुणन्ति	१२२०	१३	गमनों का	गमनोंकी
१२०५	८	मरमाघ	मरमाघ	१२२२	११	तथा	तथा
१२०७	६	ददात	ददातु	१२२६	२	अप	अप
१२०८	४	स्तोमा	स्तोमा	"	४	प्रसिद्धः)	प्रसिद्धः)
१२०९	५	संविज्ञान्द	संविज्ञान्द	१२१८	१३	सष्ट	सष्ट
"	१३	पुथ	पुथ				

उंक ३१-३२]

[चैत्र वैशाख १९६६]

# ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद  
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर  
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुल्तान निवासी प० शङ्करदत्त  
शास्त्री की सहायता से शिखनाथ  
भादितानि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकादमी के सन्ध्यालय में प्रिण्टर काला  
सालमन के अधिकार से छपा ।

१२ अकों का अग्रिम मूल्य २)

पहले २४ अकों का मूल्य ५०)



इन्द्रोदेवता त्रिष्टुब्धन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्व

वीरस्य हतः पतिर्भूः । विश्वमाप्नो-

अन्तरिक्षं सहित्वा सत्यमद्वानकि-

रन्त्यस्तवावान् ॥१३॥

त्वम्	त्वम्	तू
भुवः	अन्तरिक्षस्य (निघ० १।३)	अन्तरिक्ष का
प्रतिमानम्	परिमाणम्	माप
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी का
{ ऋष्वऽ	ऋष्वामहान्तोवा	जहां चडे शूरीर
वीरस्य	रायस्मिन्-तथो- क्तस्य (अ० य० ११३३) (निघ० ३।३)	हैं ऐसे का

बृहत्तः	महत्तः (धुलोकस्य)	महान्(धुलोक)का
पतिः	स्वामी	स्वामी
भूः	अभूः (पडमायः)	हुए हो
विप्रवम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
आ	आ +	-
अप्राः	आ+अप्राः, आपू- रितवानसि (प्रापूरणे)	पूर्ण किया है
अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
महिऽत्वा	महिम्ना	महिमा से
सत्यम्	सत्यम्	ठीक है
अज्ञा	खलु	सच मुच
नकिः	नास्ति	नहीं है
अन्यः	अन्यः	और

त्वांऽवान् | त्वत्सदृशः | आपके तुल्य  
(सादृश्याऽर्थेवतुप्)

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र ! ) त्वमन्तरिक्षस्य पृथिव्याः (च) परि-  
माणं, महावीरवतो महतः(द्युलोकस्य) पतिः(च)अभूः  
(त्वं निज-) महिम्ना सर्वमन्तरिक्षमापूरितवान् त्वत्स-  
दृशोऽन्यो नास्ति (इति) सत्यंखलु ॥ १३ ॥

मापार्थः ।

(हे इन्द्र) आप अन्तरिक्ष(और)पृथिवी के माप  
(और) बड़े वीरों से युक्त महान (द्युलोक के) स्वामी  
हुए हैं (आपने अपनी) महिमा से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष  
को पूर्ण किया है आपके तुल्य और नहीं है (यह)  
सच मुच ठीक है ॥ १३ ॥

विनियोग—यह मन्त्र बृहस्पति सत्र में भू नाम वाले एकादश के  
महत्त्वतीय शास्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू०उ० ३।५।१६)

(१) इन्द्र, अन्तरिक्ष और पृथिवी के माप हुए हैं, मर्थात्  
वैसे इन्द्र महान हैं वैसे ही उनकी बनार्ह हुई पृथिवी और अन्तरिक्ष  
भी महान हैं ।

(२) बड़े वीर महत आदि देवताओं से तात्पर्य है ।

श्र०मं०१ मू०५२ मं०१४ ( १३३० )

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

नयस्यद्यावापृथिवीअनुव्यचो न  
 सिन्धवोरजसोअन्तमानुशुः । नीत  
 स्ववृष्टिंमदेअस्ययुध्यत एकोअन्य-  
 चचक्षुषेविश्वमानुषक् । १४।

न	न	नहीं
यस्य	यस्य	जिसके
{ द्यावापृ- थिवी०	द्यावापृथिव्यौ	दुलोक (और) पृथिवी
अनु	साम्ये (आ०को०)	तुल्य
व्यचः	विस्तारम् (आ०को०)	विस्तारको
न	न	नहीं

सिन्धवः	स्यन्दनशीलाः [आपः]	जल
रजसः	अन्तरिक्षस्य	अन्तरिक्ष के
अन्तम्	सीमाम्	सीमा को
आनयुः	प्राप्तवन्तः (व्यात्ययेनपरस्मैपदम्)	पहुंचे हैं
न	न	नहीं
उत	अपि च	और
स्वऽवृष्टिम्	स्वा, अधीनावृष्टि र्यस्य तम्	वर्षा रोकने वाले को
मदे	मदे (सति)	मद युक्त होने पर
अस्य	अस्य	इसके
युध्यतः	युध्यतः	युद्ध करते हुए के
एकः	एकः	एक

अन्यत्	अन्यत्	और
चक्षुषे	कृतवान् ,	किया
विपूर्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
आनुषक्	अनुपक्तम्	अनुक्रम से

ससृष्टार्थः ।

यस्य विस्तार साम्य द्यावापृथिव्यो न जग्मतुः ।  
अन्तरिक्षस्याऽऽपः (यस्य) सीमां न प्रापुः अपि च मदे  
(सति) पृष्टि निवारकम् प्रति युध्यतोऽस्य (बलम्)  
न (कोऽपि प्रमातुमशकत् हे इन्द्र एकः त्वम् (एव)  
अन्यत्सर्वमनुपक्त कृतवान् ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

जिसके विस्तार की तुल्यता को आकाश (और)  
पृथिवी नहीं पहुँचे है, अन्तरिक्ष के जल जिस  
की सीमा को प्राप्त नहीं हुए और मद युक्त होकर  
वर्षारोकने वाले के प्रति युद्ध करते हुए जिसके (बल की  
कोई तुलना नहीं कर सकता) हे इन्द्र ! आप अकेले  
ने (ही) अन्य सब को क्रम पूर्वक रचा है ॥ १४ ॥

यहा इन्द्र परमात्मा के महत्त्व और रचना शक्ति के अनिमानी  
देवता हैं । सृष्टि की रचना क्रम पूर्वक हुई है । एक साथ नहीं हुई ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥१११११११११॥

आर्चन्मरुतःसस्मिन्नाजी

विप्रवेदेवासीमदन्ननुत्वा । वृच-

स्ययद्मष्टिमतावधेन नित्वमिन्द्र-

प्रत्यानंजघन्य ॥५॥

आर्चन्	स्तुतवन्तः	स्तुति की
अत्र	अत्र	यहां
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
सस्मिन्	तस्मिन् (सा०मा०) (सत्वछान्दसम्)	उस में
आजी	सङ्ग्रामे	युद्ध में
विप्रवे	सर्वे	सब
देवासः	देवा-	देवता

अमदन्	हर्षितवन्तः	हर्ष को प्राप्त हु
अनु	अनु (सृत्य)	पीछे
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
भृष्टिमता	भृष्टिर्धारातद्वता	नौकीले से मदे
वधेन	वधसाधनेन (वज्रेण)	वध करने (वज्र) (वज्र)स
नि	नि +	-
त्वम्	त्वम्	तूने
इन्द्र	हे इन्द्र	हे इन्द्र
प्रति	प्रति	प्रति
आनम्	आननम् (वर्णलोपश्छान्दसः)	सुख पर



जघन्थ | नि+जघन्थ | प्रहार किया  
प्रहारंकृतवानसि

ससृत्तार्थः ।

तस्मिन्सङ्ग्रामे मरुतोऽत्र भवन्तम् स्तुतवन्तः  
विश्वेदेवाश्च त्वामनुसृत्य हर्षमाप्नुवन्, यदा हे  
इन्द्र ! त्वं धारा युक्तेन वज्रेण वृत्रस्य मुखम्प्रति  
प्रहारं कृतवान् ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

च - उस युद्ध में मरुतों ने आप की स्तुति की और  
। तब देवता आपके साथ हर्ष को प्राप्त हुए, जब  
हे इन्द्र आपने नौकीले वज्र से वृत्र के मुख पर प्रहार  
किया ॥ १५ ॥

देवता और मनुष्यों के शत्रु के मारे जाने से मनुष्य हितकारी  
मरुद्गण और सब देवता हर्षित हुए । अब भी हमारे सुख को देख  
कर देवता सुखी और दुःख को देख कर दुःखी हैं परन्तु जब तक  
हम यज्ञ, स्तुति और देवानुकूल आचरण द्वारा उन का वध न यथायं  
तब तक घे हमारे दुःख के कारण धृत असुरोंको नाश करने में  
असमर्थ हैं ॥

इति द्विपञ्चाशं सूक्तम्

## ऋ०मं१ स० ५३

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यज्ञके प्रथम चर्याय में ब्राह्मणा-  
च्छंसी के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० थौ० सू० ६।४।८) .

इस सूक्तमें मी इन्द्रकी स्तुति है, वह सोनेवालों अर्थात् पुरुषार्थ न करने वालों को धन नहीं देते। वह गी छोड़े, और यथादि धान्य के देनेवाले हैं, वह सदा से दान धीर हैं और कामना करने वालों को कभी हताश नहीं करते। जो उन से मित्रता रखता है उसके मित्र हैं, वह युद्धिमान, बहुत काम करने वाले और सब धन के प्रसिद्ध स्वामी हैं, उपासक की दरिद्रता के हटाने वाले, और उसके द्वेषियों को छिन्न भिन्न करने वाले हैं। वह अपने यत्न द्वारा गढ़ से गढ़ को तोड़ते हुए निहर होकर एक युद्ध से दूसरे युद्ध की ओर जाने वाले हैं। इन्होंने अपने भक्त नगी के लिए मायावी नमुचि को मारा और अतिथिग्न अर्थात् राजा दिवोदास के रस्ता रोकने वाले करंज और पर्णय नामी दस्युओं को मारा। इन्होंने रिजिइवा के शत्रु वंगृद के सैंकड़ों गधों का तोड़ा, और बन्धुहीन अपने भक्त सुयवा के शत्रु कृत्स, दिवोदास, आयु, और अन्य सत्रह राजाओं को जो इस युवा राजा पर साठ हजार निन्नानवे सेना लेकर चढ़ आए थे, उसके घस में किया। ऐसे इन्द्र को सब प्रकार से अपना मित्र बनाने का यत्न करना चाहिये ॥

इन्द्रोदेवता सव्यऋषिर्जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

न्यू३षुवा३त्रं३प्रस३हेभ३राम३हे गिर-

इन्द्राय३सद॑ने॒विव॑स्वतः। नूचि॒धिर-

तनं॑ स॒स॒तामि॒वावि॑द न्नदु॑ष्टुति॒द्र-

वि॒णोदे॑पु॒शस्य॑ते ॥१॥

नि	नितराम्	खूब
ऊ॒म्०	[परणः]	- . .
सु	सु +	-
वा॒चम्	सु + वाचम्	सुन्दर वचन को
प्र	प्र +	-
म॒हे	महते	महान् के ताई
भ॒रा॒म॒हे	प्र + भरामहे, अर्पयामः	हम अर्पण करते हैं
गिरः॑	स्तोतारः (अ० १।६।६)	स्तोता
इन्द्रा॑य	इन्द्राय	इन्द्र के लिए
स॒द॒ने	एहे	घर में
वि॒व॒स्व॒तः	यजमानस्य	यजमान के

नु	(प्रश्ने)	कथा
चित्	खलु	सचमुच
हि	यतः	क्योंकि
रत्नम्	रमणीयम्(धनम्)	धन को
{ ससताम् ऽद्भुव	स्वपतामिव	सोते हुआ की न्याई
अविदत्	लब्धवान्	पाया है
न	न	नहीं
दुःस्तुतिः	निकृष्टा स्तुतिः	निकृष्ट स्तुति
द्रविणःऽदेषु	धनदातृषु	धन देने वालों में
शस्यते	शस्यते	उचित है

संस्तरार्थः ।

(वयम्) स्तोतारो महत इन्द्राय यजमानस्य  
एहे सुवाचमर्पयामः, यतः स्वपतामिव (आचरतां

मध्ये) कः खलु रमणीयम् (धनम्) लब्धवान्, धन-  
दातृषु निकृष्टा स्तुतिः (च) न शस्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हम स्तोता लोग महान इन्द्र के लिये यजमान  
के घर में सुन्दर वचन को अर्पण करते हैं, क्योंकि  
सोते हुआ की न्याई (आचरण करने वालों में) सच  
मुच किसने धन को पाया है (और) धन देने वालों  
में निकृष्ट स्तुति उचित नहीं है ॥१॥

हम को इन्द्र की खूब स्तुति करनी चाहिये इस लिये कि  
बिना पुत्रपार्थ के धन नहीं मिलता और स्तुति करना एक महान  
पुत्रपार्थ है, स्तुति भी ऐसी होनी चाहिये जो धन देनेवालों के  
योग्य हो ॥

इन्द्रोदेवता भुरिगजगतीछन्दः ।१२।१२।१३।१२।

दुरो॒अ॒श्व॒स्य॒दुर॒इन्द्र॒गो॒र॒सि॒ दुरो॒

य॒व॒स्य॒व॒सु॒न॒इन्द्र॒न॒स्पतिः॑ । शि॒क्षा॒न॒रः॑

प्र॒दि॒वो॒अ॒का॒म॒कर्ष॑नः॒ स॒खा॒स॒खि॑भ्य-

स्त॒मि॒दं॒गृ॒णी॒म॒सि॑ ।२।

दुरः	दाता (ददातेर्बाहुलकादुरच्)	देने वाला
अ॒श्व॒स्य	अश्वस्य	घोड़े के
दुरः	दाता	देने वाला
इ॒न्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
गोः	गोः	गौ के
अ॒सि	असि	तू है
दुरः	दाता	देने वाला
य॒व॒स्य	यवस्य	जौ के
व॒सु॒नः	धनस्य	धन का
इ॒नः	स्वामी	स्वामी
प॒तिः	पालक	रक्षा करने वाला
शि॒क्षा॒ऽन॒रः	दानस्यनेता (शिक्षतिर्दानवर्मा निघ०३१२०)	दान वीर

प्रऽदिवः	प्रगता दिवो दिव	प्राचीन काल से
	सा यस्मिन् सः	
	प्राचीन इत्यर्थः	
{ अकामऽ-	कामान्कर्शयति	कामनाओं को न
कर्शनः	नाशयतीतिकाम-	तोड़ने वाला
	कर्शनः, न काम-	
	कर्शनः, अकाम	
	कर्शनः	
सखा	सखा	मित्र
सखिऽभ्यः	मैत्री युक्तेभ्यः	मैत्री वालों के ताई
तम्	तम्	उसको
इदम्	इदम्	यह
गुणीमसि	स्तुमः	हम स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) अश्वस्य दाता, गोदाता, यव-  
 (आदिधान्यस्य च) दाताऽसि (त्वम्) धनस्य स्वामी  
 रक्षकः (चाऽसि, त्वम्) प्राचीनो दानस्य नेता कामानाम

मोघयिता मैत्री युक्तेभ्यः सुहृत् (चाऽसि) तम् (भव-  
न्तम्प्रति) इदं स्तुमः ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र! (आप) घोड़े के देने वाले, गौ के देने वाले, (और) यव (आदि धान्य) के देने वाले हैं आप धन के स्वामी, (और) रक्षक (हैं) आप प्राचीन काल से दानवीर, कामनाओं को न तोड़ने वाले (और) मैत्री रखनेवालों के लिये मित्र (हैं) उस (आप के प्रति) हम यह स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

प्रचीवद्इन्द्रपुरुषद्व्युत्तम तवे-  
दिदमभितप्रचेकितेवसु । अतःसं-  
गृभ्याऽभिभूतआभर मात्वायतो ज-  
रितुःकाममूनयीः । ३।



शचीऽवः	हे प्रज्ञावन् (शचीतिप्रज्ञानाम • निघं०३।९)	हे बुद्धिमान्
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पुरुऽकृत	हे बहूनाम्[कर्म- णाम्] कर्तः !	हेबहुत (कामोंके) करने वाले
द्युमत्ऽतम	हे अतिशयेन दीप्तिसन्	हे सबसे अधिक दीप्ति वाले
तव	तव	तेरा
इत्	एव	ही
इदम्	इदम्	यह
अभितः	सर्वतः	चारों ओर
चेकिते	ज्ञायते (कितगाने, अस्माद्यङ् न्ताद्वर्त्तमानेतिङ् )	हम से जाना जाता है
वसु	धनम्	धन
अतः	अतः	इससे

सम्पृभ्य	संगृह्य (हृप्रहोमंदलन्दसीति हस्यमत्वम्)	इकट्ठा करके
अभिभूते	हे अभिभवितः ! (सुपामितिज्ञेमादेशः)	हे जयशील
आ	आ +	-
भर	आ + भर, आहर	ले आओ
मा	मा	मत
त्वाऽयतः	त्वामिच्छतः (यजन्ताल्लङाशवृ, भात्रंछान्दसम्)	तुझ को चाहते हुए की
जरितुः	स्तोतुः	स्तोता की
कामम्	अभिलापम्	कामना को
ऊनयीः	ऊनं कुरु (लोडयेल्ड्)	हीन करो

संस्कृतार्थः ।

हे प्रज्ञावन् ! ब्रह्मनाम् (कर्मणाम्) कर्तः ! अति-  
शयेन वीप्तिमन् ! इन्द्र ! सर्वत इदंधनं तवेव

ज्ञायते, अतः संशय (अस्मभ्यम्) आहर, स्वामिच्छतः  
स्तोतुरभिलाष मा हीनंकुरु ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे बुद्धिमान बहुत (कर्मों) के करने वाले, सब  
से अधिक प्रकाश वाले इन्द्र, चारों ओर यह धन  
आपका ही जाना जाता है, इस में से इकट्ठा करके,  
हमारे लिये लाओ, आपको चाहते हुए स्तोता की  
कामना को हीन मत करो ॥ ३ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

ए॒भिर्द्यु॑भिः सु॒मना॑ ए॒भिरि॑न्दुभिः  
नि॒रुन्धा॑नो अ॒मति॑गोभि॒रश्वि॑वना ।  
इ॒न्द्रेण॑ द॒स्युं द॒रय॑न्त इ॒न्दुभि॑ र्युत-  
वै॒षसः॑ स॒मिषा॑रभेमहि । ४।

ए॒भिः		ए॒भिः		इन से
द्यु॑भिः		दी॒प्तैः		चमकते हुआं से

सु॒ऽमनाः	प्रीतः	प्रसन्न
ए॒भिः	एभिः	इन से
इ॒न्दु॒ऽभिः	सोमैः	सोमों से
{ नि॒ऽरु॒न्धा	निवर्तयन्	हटाता हुआ
नः		
अ॒म॒तिस्	दारिद्र्यम्	दरिद्रता को
गो॒भिः	गोभिः	गौओं से
अ॒श्वि॒वना	अश्ववता(धनेन]	घोड़ों से युक्त [धन] से
इ॒न्द्रेण	इन्द्रेण	इन्द्र द्वारा
द॒स्युम्	शत्रुम्	शत्रु को
द॒रय॒न्तः	विदारयन्तः	छिन्न भिन्न
इ॒न्दु॒ऽभिः	सोमैः	करते हुए सोमों से
	(मा०को०)	

युतऽर्ध्वसः	पृथग्भूतद्वेषाः (यु-अमिश्रणे)	द्वेषसे रहितहुए २
सम्	सम्+	-
द्वेषा	बलेन	बल से
रभेमहि	सम्+रभेमहि संयुक्ताभवेम	हम संयुक्त हों

संस्कृतार्थः ।

एभिर्दीप्तैः (हविर्भिः) एभिःसोमैः (च) प्रीतः  
(इन्द्रः)गोभिरद्वययुक्तेन (धनेन चाऽस्माकम्) दारिद्र्यं  
निवर्त्तयन् (तिष्ठतु) (यतोवयम्) सोमैः (प्रीतेनाऽनेन)  
इन्द्रेण शत्रुं विदारयन्तो द्वेष रहिताः(सन्तः) बलेन  
संयुक्ता भवेम ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

(इन्द्र देव) चमकती हुई इन (हवियों और) इन  
सोमोंसे प्रसन्न होकर गौओं से (और) घोड़ों से युक्त  
(धन) से (हमारी) दारिद्र्यता को हटाते हुए (ठेरें)  
(जिस से) हम (इस) इन्द्र के द्वारा शत्रु को छिन्न  
भिन्न करते हुए द्वेष से रहित (होकर) बलसे संयुक्त  
हों ॥ ४ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

समिन्द्ररायासमिषारभेमहि स-  
वाजभिः पुरुषचन्द्रैरभिद्युभिः । सदे-  
व्याप्रमत्यावीरशुष्मया गोअग्रयाऽ-  
प्रवावत्यारभेमहि । ५ ।

सम्	सम्	-
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
राया	धनेन	धन से
सम्	सम्(युक्ताभवेम)	हम सं(युक्त होवें)
इषा	अन्नेन	अन्न से
रभेमहि	सम्+रभेमहि	हम संयुक्त होवें
सम्	संयुक्ताभवेम	
	सम्(युक्ताभवेम)	हम सं(युक्त होवें)

वाजिभिः	चलैः	बलों से
परुचन्द्रैः	बहूनामाहादकैः	बहुतों के प्रसन्न करने वालों से
{ अभिः- दुभिः	अभितोदीप्य- मानैः	चारों ओर प्रकाश वालों से
सम् देव्या	सम् + द्योतमानया	- प्रकाश वाली से
प्रसंत्या	प्रकृष्ट्याबुद्ध्या	उत्तम बुद्धि से
{ वीरःशु- ष्मया	वीरसम्बन्धिवल युक्तया	शूर वीरों के बल वाली से
गोऽग्रया	गावोऽग्रामुख्या यस्यांतादृश्या	जहां गौएं मुख्य हैं ऐसी से
{ अप्रवऽव- त्या	अश्वोपेतया	घोड़ों वाली से
रभेमहि	सम् + रभेमहि संयुक्ताभवेम	हम संयुक्त होवें

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (वयम्) धनेनाऽन्नेन (च) संयुक्ताभवेम  
(तथा) अभितोदीप्यमानैर्वहूनामाहादकैर्वलैः (च)  
सं-(युक्ताभवेम, अपि च) द्योतमानया, वीरसम्ब-  
न्धिवलवत्या, अश्वोपेतया, गोमुख्यया प्रकृष्ट बु-  
द्ध्या(च) संयुक्ताभवेम ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र हम धन से (और) अन्न से संयुक्त होवें  
हम चारों ओर प्रकाशित बहुतों के प्रसन्न करने वाले  
बलों से (संयुक्त होवें और) प्रकाश वाली शूरवीरों के  
बल वाली, घोड़ों से युक्त, और जिसमें गौण प्रधान हैं  
ऐसी उत्तम बुद्धि से संयुक्त होवें ॥ ५ ॥

इन्द्रो देवतां जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

ते॒ त॒वा॒म॒दा॒श्च॒म॒द॒न्ता॒नि॒वृ॒ण॒या  
ते॒सो॒मा॒सो॒वृ॒त्र॒ह॒त्ये॒षु॒स॒त्प॒ते । य-  
त्का॒र॒वे॒द॒श॒ह॒चा॒य॒प्र॒ति॒वृ॒हि॒ष्म॒ते-  
नि॒स॒ह॒स्रा॒णि॒वृ॒ह्यः॑ । ६ ।



ते	ते	उन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
मदाः	हर्षाः	आनन्दों ने
अमदन्	मदयुक्तकृतवन्तः	मद युक्त किया
तानि	तानि	उन
वृष्ण्या	वीर्याणि	वीर्यों ने
ते	ते	उन
सोमासः	सोमाः	सोमों ने
वृत्रहृत्पु	वृत्रस्य हत्यायेषु	वृत्र हत्यावालों में
सत्पते	हे सतां पते !	हे सज्जनों के
यत्	यत्	जो पालक
कारवे	[स्तुति-] कर्त्रे	[स्तुति] करने
		वाले के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (वयम्) धनेनाऽन्नेन (च) संयुक्ताभवेम  
(तथा) अभितो दीप्यमानैर्वहूनामाहादकैर्वलैः (च)  
सं-(युक्ताभवेम, अपि च) द्योतमानया, वीरसम्ब-  
न्धिवलवत्या, अश्वोपेतया, गोमुख्यया प्रकृष्ट बु-  
द्ध्या (च) संयुक्ताभवेम ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र हम धन से (और) अन्न से संयुक्त होवें  
हम चारों ओर प्रकाशित बहुतों के प्रसन्न करने वाले  
बलों से (संयुक्त होवें और) प्रकाश वाली शूरवीरों के  
बल वाली, घोड़ों से युक्त, और जिसमें गौण प्रधान हैं  
ऐसी उत्तम बुद्धि से संयुक्त होवें ॥ ५ ॥

इन्द्रो देवतां जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

ते त्वामदा॑ अमदन्तानि॒ वृष॑ण्य॒  
ते सोमा॑ सो वृ॒त्रह॑त्येषु सत्पते । य-  
त्क॒ार॒वे॒द॒श॒वृ॒त्रा॒ग॒य॒प्र॒ति॒ ब॒र्हि॒ष्म॒ते-  
नि॒स॒ह॒स्रा॑णि व॒र्ह्यः॑ । ६ ।

ते	ते	उन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
मदाः	हर्षाः	आनन्दों ने
अमदन्	मदयुक्तवन्तः	मद युक्त किया
तानि	तानि	उन
वीर्या	वीर्याणि	वीर्यों ने
ते	ते	उन
सोमासः	सोमाः	सोमों ने
वृत्रहृत्थेषु	वृत्रस्य हृत्पायेषु	वृत्र हत्यावालों में
सत्पते	हे सतां पते !	हे सज्जनों के
यत्	यत्	जो पालक
कारवे	[स्तुति-] करें	[स्तुति] करने / वाले के लिये

दश	दश +	-
वृत्राणि	शत्रून् (लिङ्गपत्ययश्छान्दसः)	शत्रुओं को
अप्रति	नास्तिप्रतिद्वन्द्वी- यस्यसः (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	जिसका कोई सामना नहीं कर सका
वर्हिष्मते	वर्हिर्युक्ताय	कुशा से युक्त के लिये
नि	नि +	-
सहस्राणि	दश + सहस्राणि	दश सहस्रों को
वर्हयः	नि + वर्हयः, हतवान् (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	मारा

संस्कारार्थः ।

हे सतापते ! ( इन्द्र ! ) वृत्रहत्या सम्बन्धिषु  
(युद्धेषु) ते मदास्तानि वीर्याणि ते सोमाः (च) त्वां  
मदयुक्तं कृतवन्तो यत् प्रतिद्वन्द्विरहितः (त्वम्, स्तुति-)

कर्त्रे बर्हिर्युक्ताय (च यजमानाय) दश सहस्र संख्या-  
काञ्छत्रून् हतवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे सज्जनों के पालक (इन्द्र) वृत्रकी हत्या वाले  
(युद्धों) में उन आनन्दों ने उन वीर्यों ने (और) उन  
सोसों ने आप को मद युक्त किया, जिसका कोई  
सामना नहीं कर सकता ऐसे (आपने स्तुति)  
करने वाले (और) कुशा से युक्त (यजमान के)  
लिए दस हजार शत्रुओं को मारा ॥ ६ ॥

उन आनन्दों और वीर्यों ने, जो इन्द्र में स्वभाव से ही विद्य-  
मान हैं, और उन सोसों ने जो पृथिवी पर मनुष्य, और ध्रुलोक में  
देवता, इन्द्र को पान कराते हैं इन्द्र को घृत्र के भारने के लिए  
सदैव मदयुक्त किया है, जिस इन्द्र ने अपने उपासक के दसहजार  
शत्रुओं को मारा है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२ ।

यु॒धायु॒धमु॒घदे॒षिधृ॒ष्णया॒ पुरा॑  
पुरं॑स॒मिदं॑हं॒स्योज॑सा । न॒म्याय॑दि-  
न्द्र॒सख्या॑पराव॒ति निव॑र्ह्यो॒नमु॑चिं॒  
नाम॑मा॒यिनम् ॥ ७ ॥

युधा	युद्धेन	युद्ध से
युधम्	युद्धम्	युद्ध
उप	प्रति	की ओर
घ	(पूर्णः)	—
इत्	सलु	सचमुच
एषि	गच्छसि	जाते हो
धृष्णुऽया	प्रगल्भनया	बेधड़क होकर
परा	दुर्गेण (सह)	गढ़ के (साथ)
पुरम्	दुर्गम्	गढ़ की
सम्	सम्यक्	अत्यन्त
इदम्	इदम्	इसकी
हंसि	विनाशयन्ति	नाश करने हों

ओजसा	बलेन	बल से
नम्या	नम्या(सह)	नमी के (साथ)
यत्	यत्	जो
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र !
सख्या	मित्रेण	मित्र से
पराऽवति	दूरदेशे	दूर देश में
निऽवर्ह्यः	हतवान्	मारा
नमुचिम्	नमुचिम्+	-
नाम	नमुचिम् +नाम नमुचिनामानम्	नमुचि नाम वाले को
मायिनम्	मायोपेतम्	कपटी को

सस्वतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) युद्धेन (सह) युद्धं प्रति प्रग-  
ल्भतया खलु गच्छसि (त्वम्) बलेनेदं दुर्गं दुर्गान्तरेण

युधा	युद्धेन	युद्ध से
युधम्	युद्धम्	युद्ध
उप	प्रति	की ओर
घ	(पूरणः)	-
इत्	खलु	सचमुच
एपि	गच्छसि	जाते हो
धृष्णुऽया	प्रगल्भनया	बेधड़क होकर
परा	दुर्गेण (सह)	गढ़ के (साथ)
पुरम्	दुर्गम्	गढ़ को
सम्	सम्पक्	अत्यन्त
इदम्	इदम्	इसको
हंसि	विनाशयामि	नाश करने हो



त्वम्	त्वम्	तूने
करञ्जम्	करञ्जम्	करञ्ज को
उत	च	और
पर्णयम्	पर्णयम्	पर्णय को
वधीः	हतवान् (अडभावः)	मारा
तेजिष्ठया	अतिशयेन तेज-	बहुत प्रकाशवाला
{ अतिथिऽ-	स्विन्या	से
ऽग्वस्य	अतिथिग्वस्य	अतिथिग्वनामी (राजा)के
वर्त्तनी	मार्गे (वर्तनी मार्गः, भा०श्री०) (विमर्केलुक)	रस्ते में
त्वम्	त्वम्	तूने
शता	शतानि	सैकड़ों को

क्र०सं०१ सू०५३ सं०८ ( १३५६ )

(सह) सम्यग्विनाशयसि यत् (त्वम्) मित्रेण  
नम्या मायोपेतं नमुचि नामानम् (असुरम्) दूर  
देशे विनाशितवान् ॥ ७ ॥

मापार्थः ।

हे इन्द्र, सच मुच (आप) युद्ध से युद्ध की ओर  
बेधड़क (होकर) जाते हैं आप बल से इस गढ को  
(दूसरे) गढ के (सहित) अत्यन्त नाश करते हैं, जो  
आपने नमी(नाम वाले अपने) मित्रके द्वारा मायावी  
नमुचि नामी [असुर] को दूर देश में मारा ॥ ७ ॥

सत्य का पुत्र 'नमी' इन्द्र का मत्त था, जिस की स्तुति और  
पूजा के फल से इन्द्र ने नमुचि को जो घृष्टि को रोकने वाला एक  
मायावी असुर था दूर अन्तरिक्ष में मार कर अपने मित्र नमी को  
पर्या रूपी गीर्वाँ (देखो । क्र० ६।२० । ६ और १० । ४८ । ९ ।)

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

त्वंकरञ्जमुतपर्णयंवधी स्तेजि-  
ष्ठयाऽतिथिग्वस्यवर्त्तनी। त्वंशता-  
वङ्गदस्याऽभिनत्पुरो ऽनानुदःप-  
रिपूताऽऽजिप्रवना । ८ ।

ऐसे आपने अतिथिग्व (नामी राजा) के रस्तेमें (वर्तमान) करञ्ज (और) पर्णय को बहुत प्रकाश वाली (विद्युत् वा चर्छीसे) मारा, आपने ऋजिदवा (नामी राजा) से घिरे हुए बङ्गदके सैकड़ों गढोंको तोड़ा ॥८॥

अनार्य करञ्ज, और पर्णय राजा, अतिथिग्व अर्थात् दिवोदास के शत्रु प्रतीत होते हैं, जो किसी की चर्छी से अथवा बिजली के गिरने से मारे गए, ऋजिदवा (देखो अ० १। ५१। ५) को शत्रु बङ्गद को जीतने में भी इन्द्र ने अपने आर्य उपासक की सहायता की थी ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

त्वमेताञ्जनराज्ञोद्विर्दशाऽव-

न्धुनासुश्रवसोपजग्मुः । षष्टिंस-

हस्त्रानवर्तिनवश्रुतो निचक्रेणरथ्या

दुष्पदावृणक् । ६ ।

त्वम्	त्वम्	तूने
एतान्	एतान्	इन को

वङ्गदस्य	वङ्गदस्य	वङ्गद के
अभिन्नत्	विदारितवान् (लङिसिपि हल्ङया भ्यति सकारलोपः)	तोड़ दिया
पुरः	दुर्गाणि	गढ़ों को
अननुदः	नास्त्यनुदस्तुल्य दानीयस्यसः	जिसके तुल्य कोई और दानी नहीं है ऐसा
परिसूताः	परितोऽवष्टब्धाः	घिरे हुए
अजिद्रवना	अजिद्रवाख्यराज्ञा	अजिद्रवानामी राजा से

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र ! ) तुल्य दातृ रहितस्त्वमतिथिग्वस्य  
(राजः) मार्गे (वर्तमानम्) करञ्जं पर्णयञ्चाऽतिते-  
जस्विन्या (विद्युता शक्त्या वा) हतवान्, त्वम्, अजि-  
द्रवना (राज्ञा) परितो ऽवष्टब्धानि वङ्गदस्य शतानि  
दुर्गाणि विदारितवान् ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र ! ) जिसके तुल्य और कोई दानी नहीं है

नव	नवतिम्+नव	निन्नानवे को
श्रुतः	नव नवतिसङ्ख्याकान्	विख्यात
नि	नि+	-
चक्रेण	चक्रेण	पहिये से
रथ्या	रथसम्बन्धिना	रथ वाले से
दुःपदा	दुष्प्राप्येन	जिस को कोई
अवृणक्	नि+अवृणक् निराकृतवान् (घृजी बर्जने)	नहीं पहुँच सका हटाया

संस्कृतार्थः ।

( हे इन्द्र ! ) विख्यातस्त्वं बन्धु रहितेन सुश्रवसा  
( राज्ञा ) समीपे प्राप्नुवतो विंशति सङ्ख्याकानेताञ्जना  
ऽधिपान् ( तथैतेषाम् ) नवनवत्यधिक पण्डितसहस्र संख्या  
कान् ( अनुचरांश्च ) दुष्प्राप्येन रथसम्बन्धिना चक्रेण  
॥ १ ॥

जनऽराज्ञः	जनाधिपान् (समासान्तविधेरनि- त्यावाद्यचमाद्य)	राजाओं को
द्विः	द्विः+	-
दश	द्विः+दश, विंशति सङ्ख्याकान्	बीस को
अबन्धुना	बन्धुरहितेन	बन्धु हीन से
सुऽश्रवसा	सुश्रवसा (राज्ञा)	सुश्रवा नामी (राजा) से
उपऽजग्मुषः	समीपे प्राप्नुवतः	समीप आते हुआं को
षष्टिम्	षष्टिम्+	-
सहस्रा	षष्टिम् + सहस्रा, षष्टिसहस्रसङ्- ख्याकान्	साठ हजार को
नवतिम्	नवतिम्+	-

त्वम्	त्वम्	तूने
आविथ	ररक्षिथ	रक्षित किया
सुऽश्रवसम्	सुश्रवसम्	सुश्रवा को
तव	तव	तेरी
ऋतिऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं से
तव	तव	तेरी
चामऽभिः	त्राणैः	पालनाओं से
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तूर्वयाणम्	तूर्वयाणम्	तूर्वयाण को
त्वम्	त्वम्	तूने
अस्मै	अस्मै	इसके ताई
कुत्सम्	कुत्सम्	कुत्स को

१ ( हे इन्द्र ! ) विख्यात आपने बन्धु हीन सुश्रवा ( राजा ) के द्वारा, समीप आते हुए इन बीस राजाओं को ( और इनके ) साठ हजार निन्नानवे ( अनुचरों ) को किसी से न पहुँचने योग्य रथ के पहिये से हटाया ॥ ९ ॥

( १ ) राजा सुश्रवा ने बन्धु रहित होने पर भी इन्द्र की भक्ति के फल से बीस राजा और ६००८८ सेना को पराजय किया इन बीस राजाओं में तीन का नाम अगले मन्त्र में दिया है जिससे प्रतीत होता है कि यह युद्ध भार्यव राजाओं में ही था ॥

( २ ) " किसी से न पहुँचने योग्य रथ का पहिया " अगले मन्त्र में और अ० ६ । १८ । १३ में " तूर्वयाण " राजा सुश्रवा का ही नामान्तर प्रतीत होता है, यह नाम इस लिये पड़ा होगा कि यह बहुत शीघ्र गामी थे, इन के रथ के पहिये ऐसे बने हुए थे कि कोई इनको पहुँच नहीं सकता था । तूर्वयाण का अर्थ शीघ्रगामी है ( देखो आ० को० ) ॥

इन्द्रो देवता भुरिक् त्रिष्टुच्छन्दः १२ । ११ । ११ । ११

तव माविथ सुश्रव संतवोतिभि स्तव-  
चामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् । तव मस्मै  
कुत समतिथि ग्वमायुं महेराज्ञेयूनं  
अरन्धनायः । १० ।



(१) फुत्स, अतिथिग्र अर्थात् दिवोदास और मायु भी इन्द्र के उपासक थे, परन्तु इन्होंने अग्न्याय से सग्रह और राजाओं के साथ बन्धु रहित युवा राजा सुग्रहा पर घढ़ाई की इसलिये इन्द्र ने इन को दण्ड देने के लिए सुग्रहा के अधीन किया ।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुच्छन्दः १०।११।११।११

य॒उ॒ह॒ची॒न्द्र॒दे॒व॒गो॒पाः॑ सखा॒य-  
स्ते॒शिव॒त॒मा॒अ॒साम॑ । त्वां॒स्तो॒षा-  
म॒त्वया॑सु॒वीरा॒ द्राघी॑यि॒आयुः॑प्र॒त॒र॒द-  
धा॒नाः ॥११॥

ये	ये	जो
उ॒त्॒ऽ॒ऋ॒चि॑	उदकें	उत्तरकाल में
इ॒न्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
दे॒व॒ऽ॒गो॒पाः॑	देवैरक्षिताः	देवताओं से रक्षा किये हुए

{ अतिथिऽ- ग्वम्	अतिथिग्वम्	अतिथिग्व को
आयुम्	आयुम्	आयु को
महे	महते	महान् के ताई
राज्ञे	राज्ञे	राजा के ताई
यूने	यूने	युवा के ताई
अरन्धनायः	वशमनयः (रथ्यतिर्नशगमनेऽपि दृश्यते, निरु०)	अधीन कराया

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं निज रक्षाभिः सुश्रवसं निज त्राणैः (च) तूर्वयाणम् रक्षितवान् त्वमस्मै महते यूने राज्ञे कुत्स मतिथिग्वमायुम् (च) वशमनयः । १० ।

नापार्थः ।

हे इन्द्र ! आपने अपनी रक्षाओं से सुश्रवा को (और) अपनी पालनाओं से तूर्वयाणको रक्षित किया आपने इस महान् (और) युवा राजा के ताई कुत्स, (और) आयु को अधीन कराया ॥ १० ॥

( १११७ ) का० मं० १ सू० ५ अं० ११

संस्तुतार्यः

हे इन्द्र ! ये ( वयम् ) देवैरक्षिताः स्तव सखायः  
(स्मः) ते ( वयम् ) उत्तर काले ( अपि ) अतिशयेन सुख  
रूपा भवाम, स्वया ( सह ) अतिवीरोपेता अतिदीर्घ  
मत्स्युकृष्टमायुः ( च ) धारयन्तस्त्वास्तवाम ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! जो ( हम ) देवताओं से रक्षा किए हुए  
आप के मित्र ( हैं ) वे हम आगे ( भी ) बहुत सुखी रहें  
( और ) आपके साथ अति वीरों से युक्त ( और ) बहुत  
लम्बी बहुत उत्तम आयु को धारण करते हुए आप  
की स्तुति करते रहें ॥ ११ ॥

इति त्रिपञ्चाशं सूक्तम् ।

सखायः	सखायः	मित्र
ते	तव	तेरे
शिवऽतमाः	अतिशयेनसुख रूपाः	बहुत सुखी
असाम	भवाम	हम होवें
त्वाम्	त्वाम्	तुझ को
स्तोषाम	स्तवाम	हम स्तुति करें
त्वया	त्वया	तुझ से
सुऽवीराः	अति वीरोपेताः	अति वीरोंसे युक्त
द्राघीयः	अतिदीर्घम्	बहुत बड़ी को
आयुः	आयुः	आयु को
प्रऽतरम्	अत्युत्कृष्टम्	बहुत उत्तम को
दधानाः	धारयन्तः	धारण करते हुए

( १३६९ ) मा० सं० १ सू० ५४ सं० १०

इन्द्रो देवता जगती छन्दः १२।१२।१२।१२।

मानो अस्मिन्मघवन्पृथस्वंहसि  
न हिते अन्तःश्वसः परीयशे । अन्तः-  
न्दयो नद्यो रोरुवद्वना कथानक्षो-  
णीभिर्भयसासमारत ॥१॥

मा  
नः  
अस्मिन्  
मघऽवम्

१ पृत्ऽसु

१ अंहसि

मा  
अस्मान्  
अस्मिन्  
हे धनवन् !

सहामे  
(यवनव्यत्ययः)

कष्ट (रूपे)  
(मा० की०)

मत  
हमको  
इसमें  
हे धन वाले

युद्ध में

कष्ट (रूप) में

# ऋ० सं० १ सू० ५४ ।

सव्य ऋषिः

यह सूक्त अतिरात्र यज्ञ के प्रथम पर्याय में भच्छाघाक के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० धौ० सू० ६।४।१०)

इस सूक्त में भी इन्द्रकी स्तुति है और उन की भक्ति का फल दिखाया है। जिस के भय से ध्रुलोक और पृथिवी कांपते हैं उस इन्द्र को हम अपना शत्रु न बनायें, जो शक्तिमान अपने बल से पाथापृथिवी को सुशोभित करते हैं, उस सुनने वाले इन्द्र को हम भादर से नमस्कार करते हुए स्तुति करें, जो स्वतन्त्र इन्द्र निडर मन वाले हैं, उस महान के तारे हम बल करने वाला वेदमंत्र रूप, घघन उच्चारण करें, जो इन्द्र पूर्वकाल में घृत्र को मार कर इस देश की अमावृष्टि को दूर करते रहे हैं, यदि वह भय भी ऐसा करें तो उन को कौन रोक सकता है। जिस इन्द्र ने हमारे प्राचीन मनुष्य हितकारी राजा तुर्वशा, बधु, और तुर्षाति की रक्षा की और युद्ध में उन के शत्रुओं का नाश किया, वह भय भी हमारा परित्याग नहीं करेंगे ॥

जो इन्द्र को हवि देता हुआ उन के शासन पर चलता है या जो उनके स्तोत्रों को सुन कर स्तोताओं को दान देता है उसके लिए संपत्ति आकाश से धर्मों को न्याई बरसती है। जो सोम द्वारा दानी इन्द्र के महान बल और धीर्य को बढ़ाते हैं, उन का बल अतुल है, और उन की युद्धि अतुल है। इन्द्र हमारे अर्पण किए हुए सोम को पोषे और फिर हम को धन देने के लिए मन करें, इन्द्र हम लोगों में सुख यश और मनुष्यों के दयाने वाले बड़े राज्य बलको स्थापन करें, हमारे धनियों की और स्तोता ग्राहणों की रक्षा करें और हम को वेदपथ, उत्तम सन्तान और बल के लिए प्रेरण करें ॥

भियसा	भयेन	भय से
सम्	सम् +	-
आरत	सम् + आरत समगच्छत्	संगत होती

संस्कृतार्थः ।

हे धनवान् ! (इन्द्र ! त्वम्) अस्मिन् कण्ट रूपे युद्धेऽस्मान् मा (प्रेरय, यतोऽस्माभिः) तव धलस्य सीमा परितो व्याप्नु नहि (शक्यते त्वम्) जलानि शब्दयन्नदीरकन्दयः कथम् (पुनः) पृथिवी भयेन न समगच्छत् ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे धन वाले (इन्द्र) आप इस कण्ट रूप युद्ध में हम को मत (प्रेरण करो) क्योंकि हम आपके धल के अन्त को नहीं पहुँच सके जलों को शब्द कराते हुए आपने नदियों को शब्द युक्त किया (फिर) कैसे पृथिवी भय युक्त न होती ॥ १ ॥

(१) कण्ट रूप युद्ध में, अर्थात् ऐसे युद्ध में जिस में इन्द्र हमारे शत्रु की ओर हों, ऐसे युद्ध में विजय असम्भव है और कण्ट ही कण्ट होता है ।

नहि	नहि	नहीं
ते	तव	तेरे
अन्तः	अन्तः	अन्त
शवसः	बलस्य	बलका
परिऽनशे	व्याप्नुम् (शक्यते) नशतिर्योऽपि कर्मा एत्यार्थे केन् प्रत्ययः)	पहुँचा जा सकता है
अक्रन्दयः	अशब्दयः	तूने शब्द कराया
नद्यः	नदीः (द्वितीयाथे प्रथमा)	नदियों को
रोरुवत्	अत्यर्थं शब्दयन् (भन्तर्माधितण्यर्थः)	अत्यन्त शब्द कराता हुआ
वना	जलानि (निघं० १।११, शीलोपः)	जलों को
कथा	कथम्	कैसे
न	न	नहीं
क्षोणीः	पृथिवी (निघं० १।१। मूलोपाऽ भायदछान्दमः)	पृथिवी



इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
१ म॒ह्यन्	आद्रियन् (आ०को०)	आदर करता हुआ
अभि	अभि+	-
स्तुहि	अभि + स्तुहि	स्तुति कर
यः	यः	जो
धृ॒ष्ट॒गु॒ना	धर्षकेण	प्रगल्भ से
श॒व॒सा	बलेन	बल से
गो॒द॒क्षी०	द्यावापृथिव्यो	द्यौ(और)
उ॒भे	उभे	पृथिवीको दोनों को
२ वृ॒षा	वृषा	नर
२ वृ॒ष॒ऽत्वा	सेचनसामर्थ्येन (विभक्तेषात्त्वम्)	सेचनसामर्थ्य से
वृ॒ष॒भः	(कामानाम्) वर्षयिता	(कामनाओंके), बरसाने वाला

(२) जब वर्षा ऋतु में जलों के खोंसाट से नदियां भी शब्द युक्त हो कर भय से पुकारती हैं तौ पृथिवी के जीव कैसे भय युक्त न हों । मंत्र का तात्पर्य यह है कि जिस इन्द्र के भय से सब कांपते हैं उस को शत्रु बनाना बड़ी मूर्खता है ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

अर्चा शक्राय शक्तिने शचीवते शृण्व  
न्तमिन्द्रं मह्यन्नभिष्टुहि । योधु-  
ष्णुना शवसारीदसीउभे वषावप्रत्वा  
वषभोन्युज्जते ॥२॥

अर्च	नमस्कुरु (भा०को०)	नमस्कार करो
शक्राय	समर्थाय	समर्थ के लिए
शक्तिने	शक्तियुक्ताय	शक्तिमानके लिये
शचीवते	प्रज्ञावते	बुद्धिमान के लिये
शृण्वन्तम्	शृण्वन्तम्	सुनते हुए को

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

अर्चा॑दि॒वे॒हृ॒ते॒श॒ष्यं॑श्च॒ः स्व॒क्ष-  
चं॒य॒स्य॑धृ॒प्र॒तो॒धृ॒ष॒न्म॒नः॑ । वृ॒ह॒च्छृ॒वा-  
अ॒सु॒रो॒व॒र्ह॒णा॑कृ॒तः पु॒रो॒ह॒रि॒भ्यां॑वृष-  
भो॒रथो॑हि॒षः ॥३॥

अर्च॑	आदरेणोच्चारय	आदर से कहो
दि॒वे	दीप्ताय	दीप्तिमानके ताई
वृ॒ह॒ते	महते	महान के ताई
श॒ष्य॑म्	बलकरम् (तत्रसाधुरितियत्, शूष मितियलनाम निघं० २।९)	बल करने वाले को
वचः॑	वचः	वचन को
स्व॒क्ष॒त्रम्	स्वाधिपत्य युक्तम्	स्वतन्त्र
यस्य॑	यस्य	जिसका

३ { निऽञ्ज- | नितरां प्रसा- | अत्यन्त शोभाय  
ञ्जते | धयति | मान करता है

संस्कृतार्थः ।

(हे आर्यगण!) समर्थाय शक्तियुक्ताय प्रज्ञावते (इन्द्राय) नमस्कुरु शृण्वन्तमिन्द्रमाद्रियन् (सन्) अभिष्टुहि, यः सेचनसामर्थ्येन वृषा (कामानाम्) वर्षयिता धर्पकेण बलेन द्यावा पृथिव्यौ नितरां प्रसाधयति ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्यगण) समर्थ शक्तिमान, (और) बुद्धिमान (इन्द्र) के ताई नमस्कार करो, (और) आदर करते हुए सुनने वाले इन्द्र की स्तुति करो, जो सेचनसामर्थ्य से नर और (कामनाओं को) बरसाने वाले (हैं) ऐसे इन्द्र) प्रगल्भ बल द्वारा द्यौ (और) पृथिवी को अत्यन्त शोभायुक्त करते हैं ॥ २ ॥

(१) यह समझ कर कि इन्द्र सुनते हैं, आदर पूर्वक उन की स्तुति करो ।

(२) जो सेचनसामर्थ्य से नर हैं, और मनुष्य की सय कामनाओं को पूर्ण करते हैं ।

(३) ऐसे इन्द्र द्यौ और पृथिवी को अपने असह्य बल द्वारा शोभायुक्त करते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अर्चा॑दिवे॑हृ॒तेश॑ष्ठ्यं॑श्च॒ स्व॒क्ष-

त्रं॒यस्य॑धृ॒ष॒तो॒धृ॒ष॒न्मनः॑ । हृ॒हृ॒च्छृ॒वा-

अ॒सुरो॑व॒र्हणा॑कृतः॒ पुरो॑हरि॒भ्यां॑व॒ष-

भोर॑थोहि॒षः ॥३॥

अर्च॑	आदरेणोच्चारय	आदर से कहो
दिवे॑	दीप्ताय	दीप्तिमानके ताई
हृ॒हृ॒ते	महते	महान के ताई
शु॒ष्ठ्य॑म्	बलकरम् (तत्रसाधुरितियत्, शूष मितियलनाम निघ० २।९)	बल करने वाले को
वचः॑	वचः	वचन को।
स्व॒क्षत्र॑म्	स्वाधिपत्ययुक्तम्	स्वतन्त्र
यस्य॑	यस्य	जिसका

धृषतः	धर्पणशीलस्य	शूरवीर का
धृषत्	धृष्टम्	निडर
मनः	मनः	मन
बृहत्श्रवाः	महायशस्वी	बड़े यश वाला
२ असुरः	असुःप्राणस्तद्वान् (रोमत्प्रर्थीयः निद०)	प्राण से युक्त
वर्हणा	वलघान् (मा०फो० (विमकेडदेशः)	बलवान्
कृतः	कृतः	किया गया
२ पुरः	पुरोवर्ती	अगवैया
३ हरिभ्याम्	अश्वाभ्याम्	घोड़ों द्वारा
दृषभः	सेचनसमर्थः	नर
४ रथः	रथरूपः	रथरूप
हि	यनः	जिससे
सः	सः	वह

संस्कृतार्थः ।

धर्पणशीलस्य यस्य (इन्द्रस्य) धृष्टं मनः स्वाधि-  
पत्य युक्तम् (अस्ति) दीप्ताय महते (तस्मै) बलकर-  
वच आदरेणोच्चारय, यतो महायशस्वी प्राणवान्बल-  
वानश्वभाभ्यांपुरस्कृतः सेचनसमर्थः (सः) रथरूपः  
(अस्ति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

जूरवीर जिस (इन्द्र) का निडर मन स्वतंत्र (है)  
दौप्तियुक्त (उस) महान के ताई बल करने वाले  
वचन को आदरपूर्वक कहो क्योंकि बड़े यश वाला  
प्राण से युक्त, बलवान, घोड़ों द्वारा अगवैया किया  
गया (वह) नर रथरूप है ॥ ३ ॥

(१) "बल करने वाला वचन" छेद मंत्र रूप स्तुति जिस के  
कारने से इन्द्र में बल उत्पन्न होता है ।

(२) "प्राणसे युक्त" अर्थात् जीवन की चेन्दासे युक्त (Full of life)

(३) जिस के घोड़े सप से भागे रहते हैं ।

(४) "रथरूप" अर्थात् इस ससार के दुःख और पाप से पार  
लंघाने वाला ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

तव॑द्वि॒वो॒वृ॒ह॒तः॑ सा॒नु॒को॒प॒यो ऽव॒-

तमना॑ धृष॒ताश॑म्बरं॒भिनत् । यन्मा॒-  
यिनो॑ब्र॒न्दिना॑म॒न्दिना॑ धृष॒ चि॒ह्नां-  
गभ॑स्ति॒मश॑नि॒पृ॒तन्य॑सि । ४ ।

त्वम्	त्वम्	तूने
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
बृ॒ह॒तः	महतः	महान के
सानु॑	शिखरम्	शिखर को
को॒प॒यः	अव + कोपयः अकम्पयः	कंपाया है
अ॒व	अव +	—
तमना॑	निजसामर्थ्येन (मन्त्रेष्टित्याकारलोपः)	अपनी सामर्थ्य से
धृष॒ता	धृष्टेन	प्रगल्भ से
श॒म्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को



भि॒न॒त्

वि॒दा॒रि॒त॒वा॒न्

(परुषव्यत्ययोऽडमा-  
षदच्)

ची॒र डाला है

यत्

यत्

जो

२ मा॒यि॒नः

मा॒यो॒पे॒ता॒न्

मा॒या॒वि॒यों को

२ ब्र॒न्दि॒नः

स॒मू॒ह॒व॒तः

स॒मू॒ह वा॒लों को

म॒न्दि॒ना

दृ॒ष्टे॒न (म॒न॒सा)

ह॒र्षि॒त (म॒न) से

धृ॒ष॒त्

धृ॒ष्टः

धे॒धड़॒क

शि॒ता॒म्

ती॒क्ष्णे॒न

(तृतीयायें द्वितीया)

ती॒खे से

ग॒भ॒स्ति॒म्

ह॒स्ते॒न

(तृतीयायें द्वितीया)

हा॒थ से

अ॒श॒नि॒म्

व॒ज्ररू॒पे॒ण

(तृतीयायें द्वितीया)

व॒ज्ररू॒प से

पृ॒त॒न्य॒सि

पृ॒त॒न॒ये॒च्छ॒सि

सङ्ग्रामे हन्तु

मिच्छसीत्यर्थः

यु॒द्ध में मारने की

इ॒च्छा करते हो

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) त्वं महतो द्युलोकस्य शिखरमकम्पयः,

धृष्टेन निज सामर्थ्येन शम्बरम्(च)विदारितवान् यद्-  
हृष्टेन (मनसा) धृष्टः(त्वम्) समूहवतो मायोपेतान्  
(वृत्रान्) तीक्ष्णेन वज्र रूपेण हस्तेन सङ्ग्रामे हन्तुमि-  
च्छास ॥४॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) आपने महान् णुलोक के शिखर को  
कंपाया है, आपने अपनी प्रगल्भ सामर्थ्य से शम्बर  
को चीर डाला, जो हर्षित (मन) से वेधड़क आप  
समूह वाले मायावी (वृत्रों को) तीक्ष्ण वज्र रूप हाथ  
से युद्ध में मारने की इच्छा करते हो ॥ ४ ॥

(१) शम्बर भी वृत्र का नामान्तर हैं । (देखो निघं० १।१०)

(२) समूह योंधे हुए मायावी वृत्र, जल को घेरने वाला धूलि  
का कण समूह है जिस को इन्द्र विद्युत रूपी तीक्ष्ण वज्र से जो  
इन्द्र का हस्त है मार कर जल को छुड़ाते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।११।१२।१२

नियद्दृ॒ण॒क्षि॒प्र॒व॒स॒न॒स्य॒मूर्ध॒नि

शु॒ष्ण॒स्य॒चि॒द्र॒न्दि॒नो॒रो॒रु॒व॒द्व॒ना ।

प्रा॒ची॒ने॒न॒म॒न॒सा॒व॒र्ह॒णा॒व॒ता॒ यद्द॒द्या

चि॒त्कृ॒ण॒वः॒क॒स्त्वा॒परि॑ ॥५॥

नि	नि +	-
यत्	यत्	जो
वृणक्षि	नि+वृणक्षि, नितरांहिसितवान् (लङ्घ्येल्)	मार डाला
प्रवसनस्य	वायोः	वायु के
मूर्धनि	उपरिप्रदेशे	ऊपर
शुष्णस्य	शुष्णम् (द्वितीयाथे पष्ठी)	शुष्ण को
चित्	अपि	भी
ब्रन्दिनः	समूहोपेतम् (द्वितीयाथे पष्ठी)	समूह वाले को
रोरुवत्	गर्जयन्	गर्जाता हुआ
वना	जलानि (जेलोंफः)	जलों को
प्राचीनेन	प्राचीनेन	प्राचीन से

मनसा	मनसा	मन से
बर्हणाऽवता	बलवता (मा०को)	बल वाले से
यत्	यत्	जो
अद्य	अद्य	आज
चित्	अपि	भी
कृणवः	करोषि (कृविकरणे, लेटिसि- व्यङ्गागमः)	करते हो
कः	कः	कौन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
परि	प्रति(बध्नाति)	रोक सकता है

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) यत् (त्वम्) वायोरुपरि प्रदेशे जलानि गर्जयन् (सन्) समूहोपेतमपि शुष्णं नितरांहिसितवान् (स त्वम्) बलवता प्राचीनेन मनसा यदद्यापि (तत्कर्म) करोषि, कस्त्वां प्रति(बध्नाति) ॥५॥

माप्यर्थः ।

(हे इन्द्र) जो वायु के ऊपर देश में जलों

को गर्जाते हुए आपने समूह बांधे हुए भी शुष्ण को मारा था (वह आप) बल वाले प्राचीन मन से जो आज भी (उस कर्म को) करें तो कौन आपको रोक सकता है ॥ ५ ॥

मन्त्र का अर्थ यह है कि शोषण द्वारा प्रजा को पीड़ित करने वाले देव और मनुष्य के शत्रु को जैसे इन्द्र ने प्राचीनकाल में मारा था, यदि उस को मार कर मय भी हमारे देश में अनाधृष्टि को दूर करें तो उन को रोकने वाला कौन है ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुच्छन्दः १११११११११११

तवमा वि॒श्व॒न॒ट्य॒र्ष॒तु॒र्व॒श॒य॒दं॒ त॒वं॒तु॒र्वी॒  
ति॒व॒ट्य॒यं॒श॒त॒क्र॒तो॒॥ त॒वं॒र॒थ॒मे॒त॒श॒क्त॒व्ये  
ध॒ने॒ त॒वं॒पु॒रो॒न॒व॒ति॒द॒म्भ॒यो॒न॒व॒ ॥६॥

तवम्	त्वम्	तूने
आविश्व	ररक्षिथ	रक्षित किया
नट्यर्षम्	नृभ्योहितम् (हितार्थ्यवत्)	मुनियों के लिये हितकारी को

१ तुर्वशम्	तुर्वशम्	तुर्वश को
१ यदुम्	यदुम्	यदु को
तवम्	त्वम्	तूने
१ तुर्वीतिम्	तुर्वीतिम्	तुर्वीति को
वयम्	वयकुलजम्	वयवंशी को
१ शतक्रती०	हे बहु कर्मन्	हे बहुत कर्म वाले
तवम्	त्वम्	तूने
१ रथम्	रथम्	रथ को
१ एतशम्	अश्वम् (निघं० १।१४)	घोड़े को
१ कठव्ये	कर्मणि ( निघं० २।१ )	कर्म में
धने	धनसम्बन्धनि	धन सम्बन्धी में
तवम्	त्वम्	तूने

पुरः	पुराणि	गदों को
नवतिम्	नवतिम् +	-
दम्भयः	नाशितवान् (भडमायः)	नाश किया
नव	नवतिम् + नव नवनवतिसङ्ख्याकानि	निन्ना नवे को

संस्कृतार्थः :

हे बहुकर्मन् ! (इन्द्र ! ) त्वं मनुष्य हितकारिणं  
तुर्वशं रक्षितवान्, त्वं यदुम् (तथा) वट्यवंशोत्पन्नं  
तुर्वीतिम् (रक्षितवान्) ( त्वम् ) धन सम्बधिकर्मणि  
रथमश्वम् (च रक्षितवान्, त्वम्) नवनवति सङ्ख्या  
कानि पुराणि नाशितवान् । ६ ।

माथार्थः ।

हे बहुत कर्म वाले (इन्द्र) आपने मनुष्यों के हित-  
कारी तुर्वश की रक्षा की, आपने यदु की (और) वट्य-  
वंशी तुर्वीति की (रक्षा की) आपने धन सम्बन्धी कर्म  
में रथ (और) घोड़ों की (रक्षा की) आपने निन्ना-  
नवे गदों को नाश किया ॥ ६ ॥

(१) तुर्वश, यदु और तुर्वीति के लिये देखो पृ० १४०

(२) जन सखन्धी कर्म युद्ध है जिस में शत्रु के धन की प्राप्ति होती है ॥

(३) निम्नानरे गढ़ जो वृत्र ने चादल रूप में अपनी रक्षा के लिए बनाए हुए थे अयना त्वंश, यदु, और त्वंशति, के शत्रु राजाओं को अनेक गढ़ जिन को इन्द्र ने नाश किया ॥

इन्द्रोदेवता जगनीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

स॒घ्रा॒रा॒जा॒सत्प॑तिः॒शू॒श्रु॒व॒ज्ज॒नो॑  
रा॒त॒ह॒व्यः॒प्रति॑यः॒शा॒स॒मि॒न्व॒ति॒। उ॒-  
क्थ॑वा॒वा॒यो॒अ॒भि॒गु॒णा॒ति॒रा॒ध॒सा॒ दान॑  
र॒स्मा॒उ॒प॒रा॒पि॒न्व॒ते॒दिवः॑ । ७ ।

सः

सः

वह

घ

खलु

सच मुच

राजा

राजा

राजा

सत्पतिः

सतांपालयिना

सत्पुरुषोंकापालक

शूश्रुवत्

वृद्धिप्राप्नोति  
(द्विषष्टौलङ्घ्येण्ड्र-  
मडमायश्च)

वृद्धि को प्राप्त  
होता है



जनः	मनुष्यः	मनुष्य
रातऽह्वयः	दत्तहविष्कः(सन्)	हवि देकर
प्रति	प्रति +	-
यः	यः	जो
शासम्	शासनम्	नियम को
इन्वति	प्रति+इन्वति,अनु गच्छति (निघं०२।१४)	पीछे चलता है
उक्था	शस्त्राणि	स्तुति के गीतों को
वा	वा	अथवा
यः	यः	जो
{ अभिऽग- णाति	अभिनन्दयति (आ०को०)	सत्कार करता है
राधसा	धनेन	धन से
दानुः	समृद्धिः (आ०को०)	सम्पत्ति

अस्मै	अस्मै	इसके ताई
उपरा	अधस्तात् (भा०को०)	नीचे की ओर
पिन्वते	परिस्रवति (भा०को०)	बहती है
दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से

संस्कारार्थः ।

स मनुष्यः खलु सतां पालयिता राजा (च भूत्वा) वृद्धिं प्राप्नोति यो दत्तहविष्कः (सन्) शासन मनुगच्छति अथवा यः शस्त्राणि धनेनाऽभिनन्दयति, अस्मै (पुरुषाय) द्युलोकादधस्तात् समृद्धिः परिस्रवति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच वह मनुष्य सत्पुरुषों का पालक (और) राजा (होकर) वृद्धि को प्राप्त होता है जो हवि दे कर नियम पर चलता है, अथवा जो स्तुति के गीतों का धन से सत्कार करता है ऐसे (पुरुष) के लिये संपत्ति द्युलोक से नीचे की ओर बहती है । ७।

जो देवताओं को हवि देता हुआ उन के शासन पर चलता है, अथवा जो यज्ञ में वेद के स्तोत्रों को सुनकर पढ़ने वाले

श्रुतिजों का धन से सत्कार करता है वह मनुष्य सत्पुरुषों का पालक और राजा होकर बुद्धि को प्राप्त होता है और उसके लिये संपत्ति मूसलधार वर्षों की न्याई आकाश से नीचे की ओर बहती है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

असमंक्षमसमामनीषा प्रसोम-

पाअपसासन्तुनेमे। येतइन्द्रददुषो-

वर्धयन्ति महिच्छत्रंस्थविरंवृष्यय-

ञ्च ॥८॥

असमम्	अनुपमम्	अतुल्य
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्य का बल
असमा	अनुपमा	अतुल्य
मनीषा	बुद्धिः	बुद्धि
प्र	प्र+	-

सोमऽपाः	सोमपाः	सोम पीने वाले
अपसा	कर्मणा (निघ० २।१)	कर्म से
सन्तु	प्र + सन्तु अग्रे भवन्ति (लङ्येलोद्)	आगे होते हैं
नेमे	एते (सा० भा०)	ये
ये	ये	जो
ते	तव	तेरे
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ददुषः	दत्तवतः	दानी के
वर्धयन्ति	वर्धयन्ति	बढ़ाते हैं
महि	महत्	बड़े को
क्षुचम्	राज्य धलम्	राज्य के धल को
स्थविरम्	स्थिरम्	निश्चल को

हृष्ययम्	वृषत्वम्	पुंस्त्व को
च	च	और

संस्कृतार्थः ।

एते सोमपाः कर्मणा ( सर्वेषाम् ) अग्रे भवन्ति  
( एषाम् ) राज्यबलमनुपमं बुद्धिः ( च ) अनुपमा  
( भवति ), ये ( सोमपाः ) हे इन्द्र ! दत्तवतस्तव महत्  
राज्यबलं स्थिर पुंस्त्वं च वर्धयन्ति ॥ ८ ॥

भाष्यार्थः ।

ये सोम पीने वाले कर्मद्वारा ( सब को ) आगे होते  
हैं, ( इनका ) राज्य बल अतुल और बुद्धि अतुल ( होती  
है ), जो ( सोम पीने वाले ) हे इन्द्र ! आप दाता के बड़े  
राज्य बल और निश्चल पुंस्त्व को बढ़ाते हैं ॥ ८ ॥

" ये सोम पीने वाले " अर्थात् जो हम में से सोम यह करते  
हैं और उसके द्वारा दानो इन्द्र के बल और वीर्य को बढ़ाते हैं ।  
वे सब के अग्रगण्य होते हैं और उन का क्षत्र बल और बुद्धि  
अनुपम होती है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुछन्दः ॥ १११११११११॥

तुभ्येदेति बहुला अद्रिदुग्धा प्रच-

मूषदश्चमसाद्गन्द्रपानाः । व्यश्नु-  
हितर्पयाकाममेषा मथामनोवसुदे-  
यायकृष्व ॥ ६ ॥

तुभ्य	तुभ्यम् (छान्दसोमलोपः)	तेरे लिये
इत्	एव	ही
एते	एते	ये
बहुलाः	प्रभूताः	बहुत
{ अद्रिऽ दुग्धाः	मावभ्योदुग्धाः	पथरों से दोहे हुए
चमूऽसदः	चमसेष्ववस्थिताः	चमस पात्रों में विद्यमान
चमसः	चम्यन्तेभक्ष्यन्त इतिचमसाःसोमाः	सोम

इन्द्रऽपानाः	इन्द्रस्यपान	इन्द्रके पीने योग्य
वि	योग्याः वि+	—
अश्नुहि	वि+अश्नुहि, भुङ्क्ष्व	भोगो
तर्पय	पूरय	पूर्ण करो
कामम्	अभिलाषम्	इच्छा को
एषाम्	एषाम्	इन की
अथ	अनन्तरम्	पीछे
मनः	मनः	मन को
वसुऽदेयाय	धनदानाय	धन देने के लिये
कृण्व	कुरुण्व (विकरणस्यलुक्)	करो

संस्कृतार्थः ।

तुभ्यमेवैते प्रभूता ग्रावभ्यो दुग्धा, शर्चमसेष्व-  
स्थिता इन्द्रस्यपानयोग्याः सोमाः ( वर्तन्ते, तान् )

भुङ्क्ष्व (भुत्तवा) एषाम् (सोमानाम्) अभिलापं पूरय,  
अनन्तरम् (अस्मभ्यम्) धनं दातु मनः करुष्व ॥९॥

भाषार्थः ।

आपके लिए ही ये पंथरों से दोहे हुए चमस  
पात्रों में रखे हुए इन्द्र के पीने योग्य, बहुत सोम  
(हैं, इनको) भोगो, भोग कर इन (सोमों) की इच्छा  
को पूर्ण करो, फिर (हम को) धन देने के लिए मन  
को (प्रवृत्त) करो ॥ ९ ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः ॥१२॥१२॥१२॥१२॥

अपाम॑ति॒ष्ठद्भ॑रुण॑ह्वरं॒तमो॑ ऽन्त  
र्ह॑च॒स्यज॒ठरे॑षु॒पर्व॑तः । अ॒भीमि॑न्द्रो-  
न॒द्योव॑त्रिणा॒हिता॑ वि॒श्वानु॑ष्ठाः प्र-  
व॒णेषु॑ जि॒घ्रन्ते ॥१०॥

अपाम्	जलानाम्	जलों की
अतिष्ठत्	अनिष्ठत्	ठैरा हुआ था



ध॒रुणाऽह्व॑रम्	धारानिरोधकम्	प्रवाह के रोकने वाला
तमः	अन्धकारम्	अन्धकार
अ॒न्तः	मध्ये	बीच में
वृ॒चस्य॑	वृत्रस्य	वृत्र के
ज॒ठरेषु॑	उदरेषु	उदरों में
पर्व॑तः	मेघः (मिथु० ११०)	बादल
अ॒भि	अभि +	-
ई॒म्	(पूरणः)	-
इ॒न्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
न॒द्यः	(अपः नदनात्) (द्वितीयायें प्रथमा)	जलों को
व॒त्रिणा॑	आवरकेण	रोकने वाले से

हिताः	धृताः	पकड़े हुए
विप्राः	सर्वाः	सब को
१ अनुऽस्थाः	अनुक्रमेण तिष्ठन्तीः	अनुक्रम से ठहरे हुओं को
१ प्रवणेषु	निम्नप्रदेशेषु	नीचे स्थानों में
१ जिघ्रन्ते	अभि+जिघ्रन्ते प्रापितवान् (लिङ्घेल्)	पहुँचा दिया
	(अन्तर्माधितण्यर्थः)	

संस्कृतार्थः ।

(पूर्व काले) जलाना धारा निरोधकमन्धकार-  
मतिष्ठत्, वृत्रस्योदर प्रदेशेषु मेघः (अभूत्) इन्द्रो  
ऽनुक्रमेण तिष्ठन्तीरावरकेण (वृत्रेण) धृताः सर्वा-  
अपो निम्नप्रदेशेषु प्रापितवान् ॥ १० ॥

भाषार्थः ।

(पूर्वकाल में) जलों की धारा को रोकने वाला  
अन्धकार ठहरा हुआ था, (और) बादल वृत्र के उदर  
प्रदेशों में (थे), इन्द्र ने अनुक्रम से ठहरे हुए, रोकने  
वाले (वृत्र) से पकड़े हुए सब जलों को नीचे स्थानों  
में पहुँचा दिया ॥ १० ॥

इस मंत्र में ऋषि मनुष्यों की उत्पत्ति से पूर्व वृत्तान्तको देख रहे हैं, जिस का वर्णन सूक्त ३२ में है '(देखो पृ० ७४०)'

(१) अनुक्रम से ठीके हुए अर्थात् ओ वादलों की तह पर यह लगी हुई थी उन सब को इन्द्रने नीचे स्थान अर्थात् जहाँ पर अब समुद्र हैं वहाँ पहुँचा दिया।

(२) हमें अपनी समझ के लिये लट् का लिट् अर्थ करना पड़ता है, ऋषि तो पूर्ण वृत्तान्त को मन द्वारा उपस्थित की स्याई देख रहे हैं इस लिये लट् का प्रयोग करते हैं।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

सशे॒वध॒मधि॒धाद्यु॒म्नम॒स्मे म॒हि

क्षु॒चंज॒नाषा॒लिन्द्र॒तव्य॑म् । रक्षा॒चनो॑

म॒घो॒नःपा॒हिसू॒रीन् रा॒येच॑नःस्वप्न॒-

त्यादू॒षधाः॑ ॥ ११ ॥

सः

शे॒वध॒म

अधि

सः

सुखम्  
(निघं० ३१६)

अधि +

वह

सुख को

धाः	अधि+धाः, स्थापय (लोडयेँलुड, अड मावदच)	स्थापन करो
द्यम्नम्	यशः	यश को
अस्मे०	अस्मास्तु	हम में
महि	महत्	बड़े को
क्षत्रम्	राज्यवलम्	राज्य बल को
जनाषाट्	मनुष्याणामभि- भावकम्	मनुष्यों के दवानेवाले को
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र
तव्यम्	प्रवृद्धम् (तयतिर्दृढार्थः)	बड़े हुए को
रक्ष	रक्ष	रक्षा करो
च	च	और
नः	अस्माकम्	हमारे
मघीनः	धनवतः	धनवानों को

पाहि	पाहि	पालन करो
सूरीन्	स्तोतन् (निघं०३।१६)	स्तोताओं को
राये	ऐश्वर्याय (को०)	ऐश्वर्य के लिये
च	च	और
नः	अस्मान्	हम को
सुऽअपत्यै	सुसन्तत्यै	उत्तम सन्तान के लिये
वृषे	बलाय (आ०को०)	बल के लिये
धाः	स्थापय (लोडयेंलुड्, भडभावद्व)	स्थापन करो

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! सः (त्वम्) अस्मासु सुखं यशो मनु-  
ष्याणामभिभावकं प्रवृद्धं महत्क्षत्रबलम् (च) स्थापय  
अस्माकं धनवतो रक्ष स्तोतृश्च पाहि, अस्मानैश्व-  
र्याय सुसन्तत्यै बलाय (च) प्रेरय ॥ ११ ॥

मापार्थः ।

हे इन्द्र ! वह (आप) हम में सुख को, यश को,  
(और) मनुष्यों को दवाने वाले बड़े हुए महान राज्य  
बल को स्थापन करो, हमारे धनवानों की रक्षा करो

ऋ०मं०१ सू०५४मं०११ ( १४०० )

और स्तोताओं का पालन करो, (और) हम को ऐश्वर्य्य  
उत्तम सन्तान और बलके लिए प्रेरण करो ॥११॥

(१) अपनी जाति के धनधानों की रक्षा के लिए भी प्रार्थना  
करनी चाहिये, क्योंकि वे विपत्ति के समय जाति की रक्षा करते हैं

(२) स्तोता ब्राह्मणों की रक्षा के लिए भी प्रार्थना करनी चाहिए  
जो श्रुति द्वारा जाति के धन धर्म आदि सर्वस्व की रक्षा करते हैं।

इति चतुःपञ्चाशं सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू०५५

सव्य ऋषिः

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यज्ञ के प्रथम पर्याय में मैत्रा  
वक्षत्र के शस्त्र में पढ़ा जाता है ( आ०भ्री० सू०६।४।१०) और  
दशरात्रके द्वितीय छन्दोम के निष्क्रेषल्यशस्त्र में भी पढ़ा जाता है  
( आ० भो० सू० ३।२।७।२३ )

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है—इन्द्र पृथ्वी से भी बड़े  
और पृथ्वी से भी बड़े हैं जो उन की आज्ञा को उल्लंघन करता है,  
उसके लिये वह भयानक और सन्तापकारी हैं, शूरवीर इन्द्र सदासे  
बलकर्म द्वारा स्तुति की इच्छा करते हैं, वह सब धनादि पदार्थों के  
धारण करने वालों के स्वामी हैं, और वीर्य्य द्वारा सब देवताओं से  
बड़े हुये और सब के अगवैया हैं, जो इन्द्र से प्रेम करता है वा जो  
उन की पूजा करता है उस की कामना पूर्ण होती है, धानप्रस्थी  
भी इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्र ही मनुष्यों को संप्राप्त में प्रेरण करते  
हैं, जिससे वे सुख होकर इन्द्र में अज्ञा को धारण करें, मनुष्यों

को जल की प्राप्ति यश के चाहने वाले इन्द्र के ही वीर्ययुक्त कर्मों से हुई है, जब इन्द्र देने का मनसूबा करके अपने स्तोता की ओर अपना रथ फेरते हैं तो उनके चतुर सारथि कमी भूल नहीं करते और उन को शीघ्र मृत के पास पहुँचाते हैं, इन्द्र दोनों हाथों में धन को और शरीर में असह्य बल को धारण किये हुए हैं, यह बल स्तुति करने वालों की स्तुति से उत्पन्न होता है, ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२।

दिव॑श्चि॒दस्य॑व॒रिमा॑विप॒प्रथ॑-

इन्द्रं॑नम॒क्लापृ॑थि॒वीच॑नप्रति । भीम-

स्तुवि॑ष्माञ्चर्ष॒णिभ्य॑आत॒पःशि॒शो-

तेव॑ज॒न्तेज॑सेन॒वंस॑गः ॥१॥

दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
चित्	अपि	भी
अस्य	अस्य	इस की
वरिमा	पृथुता	चौड़ाई

वि	वि +	-
पप्रथे	वि+पप्रथेविशेषेण विस्तृता	विशेष फैली है
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
न	न	नहीं
मह्ना	महिम्ता	महिमा से
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
चन	अपि	भी
प्रति	(सादृश्ये) (आ०को०)	सदृश
भीमः	भयङ्कर.	भयानक
तुविष्मान्	बलवान्	बली
वर्षाणिऽभ्यः	मनुष्येभ्यः (निघ० २।३)	मनुष्यों के लिये
आऽतपः	सन्तापकारी	सन्ताप देने वाला



शिशीते

तनूकरोति

पैनाता है

(शो तनूकरणे व्यत्य-  
येनाऽऽत्मनेपदम्,  
धिकरणस्यदल-  
दछान्दसः )

वज्रम्

वज्रम्

वज्र को

तेजसे

तैक्षण्याय

तीखाकरनेकेलये

न

इव

की न्याईं

वंसगः

वृषभः

वैल

ससृष्टार्थः ।

अस्य( इन्द्रस्य ) पृथुता द्युलोकादपि विशेषणे  
विस्तृता, पृथिव्यपि महिम्नेन्द्रतुल्या न(अस्ति) भय-  
ङ्करो बलवान् मनुष्येभ्यः (च) सन्ताप कारी (इन्द्रः)  
वृषभ इव तैक्षण्याऽर्थं वज्रं तनूकरोति । १ ।

भाषार्थः ।

इस (इन्द्र) की चोडाई द्युलोक से भी विशेष  
फैली है, पृथिवी भी महिमा से इन्द्रके तुल्य नहीं (है)  
भयानक, बलवान (ओर) मनुष्यों के लिये सन्ताप  
देने वाला ( इन्द्र ) वैल की न्याईं वज्र को तीखा  
करने के लिए पैनाता है ॥१॥

(१) “मनुष्यों को संताप देने वाला” जो मनुष्य इन्द्र के शासन का उल्लंघन करते हैं उनके लिए वह ऐसे भयानक और संताप देने वाले हैं जैसे रुष्ट बैल साँगों को पैना कर संतापकारी होता है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

सो॒अ॒र्ण॒वो॒न॒द्यः॑स॒मु॒द्रि॒यः॑ प्र॒ति॒-  
गृ॒ह्णा॒ति॒वि॒श्रि॒ता॒वरी॑म॒भिः॑ । इन्द्रः  
सो॒म॒स्य॑पी॒तये॑व॒षाय॑ते स॒नात्स॒यु॒-  
ध॒म॒ञ्जी॒जसा॑प॒नस्य॑ते ॥२॥

सः	सः	वह
अ॒र्ण॒वः	समुद्रः	समुद्र
न	इव	की न्याइँ
न॒द्यः	नदीः	नदियों को
स॒मु॒द्रि॒यः	(द्वितीयाऽर्थे प्रथमा) अन्तरिक्षे भवः	अन्नरिक्ष में रहने वाला

प्रति	प्रति+	-
गृह्णाति	प्रति+गृह्णानि	ग्रहण करता है
विद्विषिताः	प्रतिदृष्टानि विद्विषिताः (अपः)	केलेहुए [अर्थों] को
वरीमऽभिः	उत्तरैः	विष्ठागों से
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
सोमस्य	सोमस्य	सोम के
पीतये	पानार्थम्	पीने के लिए
हृषयते	हृषयवाऽऽगमि	खेद बर्हि ग्याहें माथरा करता है
सुनात	पिबामासु	परा से
सः	सः	सह
यधमः	यधमः	जोधा
पोषसा	पोषसा	पल्ल के ३ तं से

प॒न॒स्य॒ते

स्तुतिमिच्छति  
(पनस्तुतो, व्यत्ययेना  
ऽऽत्मनेपदम्)

स्तुति की इच्छा  
करता है

सहृत्तार्थ ।

अन्तरिक्षेभवः स इन्द्रो विस्तृताः (अपः) समुद्रो  
नदीरिव (स्वकीयैः) विस्तारैः प्रतिगृह्णाति, पुनः सोमस्य  
पानार्थं वृषद्वाऽऽचरति, स योद्धा चिरकालाद् बल  
कर्मणा स्तुतिमिच्छति ॥ २ ॥

भाषार्थ

अन्तरिक्षमें रहने वाले वह इन्द्र फैले हुए (जलों)  
को (अपने) विस्तार द्वारा ग्रहण करते हैं जैसे समुद्र  
नदियों को, फिर सोम पीने के लिए घैल की न्याईं  
आचरण करते हैं वह जोधा सदा से बल कर्म द्वारा  
स्तुति की इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

जो प्राक् सोमरस में है, वह अन्तरिक्ष के जलों से ही  
उत्पन्न सोमरस में प्रवेश हुई है । इसलिए कहा है कि इन्द्र  
अन्तरिक्ष में फैले हुए जलों को ग्रहण करके उन जलों में जो सोम  
है उसका घैल की न्याईं पी जाते हैं ।

इन्द्रो देवना जगती छन्द । १२। १२। १२। १२॥

त्वं तमिन्द्र पर्वत न भोजसे मुहो-

नृ॒ण॑स्य॒ध॒र्म॑णा॒मिर॑ज्यसि । प्र॒वी॒र्ये॑ण॒दे॒वता॑ऽति॒चे॒किते॑ वि॒श्व॑स्मा॒  
 ल॒यः॑ क॒र्म॑णे॒पुरो॑हि॒तः ॥३॥

तवम्

त्वम्

तू

तम्

तम्

उसके

इन्द्र

हे इन्द्र !

हे इन्द्र

पर्व॑तम्

मेघम्  
(निघं० १। १०)

मेघ को

न

इव

जैसे

भोज॑से

भोगाय

भोग के लिये

म॒हः

महतः

महान के

नृ॒ण॑स्य॒ध॒न॑स्य

धनस्य  
(निघं० २। १०)

धन के

ध॒र्म॑णा॒म्

धारयितुम्  
(द्वितीयाध्यायः)धारण करने वालों  
को

दूरज्यसि	राजाऽसि (हरज्यतिरैश्वर्य्यकर्मो) (निघ० २।२१)	राजा हो
प्र	प्रकृष्टम्	अत्यन्त
वीर्य्येण	वीर्य्येण	बलसे
देवता	देवता	देवता
अति	अति+	—
चेकिते	अति+चेकिते अतिरिच्यते (कितजीवने, अतिजी- वति अतिरिच्यते । शा० फो०)	बढ़कर है
विपूर्वस्मै	सर्वस्मै	सब के ताई
उग्रः	भयानकः	भयानक
कर्मणो	कर्मणो	कर्म के ताई
पुरःऽहितः	अग्रेनियुक्तः	अगवैयावनाया हुआ

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं तमेघमिव भोगाय महतो धनस्य  
धारयितुं निरज्यसि (सः) देवो वीर्येण प्रकृष्टमति  
रिच्यते, (सः) उग्रः सर्वस्मै कर्मणेऽप्रेनियुक्तः ॥३॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र आप जैसे उस मेघ के स्वामी हैं वैसेही  
भोग के लिए सब धन के धारण करने वालों के (भी)  
हैं (वह) देवता, बल द्वारा (सब से) अत्यन्त बढ़ कर-  
हैं, (वह) भयानक सब कर्मों के लिए अगवैया बनाए  
हुए हैं ॥३॥

(१) भोग के लिए जो धनादि पदार्थों को धारण करने वाले  
हैं इन्द्र उन सब के स्वामी हैं जैसे जल रूपी धन को धारण  
करने वाले उस ऊपर दीखते हुए मेघ के (ज्योति रूपी धन को  
धारण करने वाले सूर्य के, सुवर्णादि धन को धारण करने वाले  
पृथिवी के इत्यादि)

(२) इन्द्र देवता अपने महान वीर्य द्वारा सब से अत्यन्त  
बढ़े हुए हैं ।

(३) जितने कठिन कर्म हैं, उन सब में बल द्वारा भयानक  
इन्द्र को ही देवता अपना अगवैया बनाते हैं ।

इन्द्रो देवता अगती छन्दः ॥१२॥१२॥१२॥१२॥

सद्गुणैर्नमस्युभिर्वचस्यते चा-

रुजनेषु प्रवृत्तान्द्रियम् । वृषाक-  
न्दुर्भवति हृदयतो वृषा क्षेमैर्गन्धना  
मघवायदिन्वति । ४ ।

सः	सः	वह
इत्	एव	ही
वने	वने	वन में
नमस्युऽभिः	पूजयितृभिः (नमस्यतिःपरिचरण कर्मा निघ० ३१५)	पूजने वालों से
वचस्यते	स्तुयते (ता० मा०)	स्तुति किया जाता है
चारु	शोभनम्	सुन्दर
जनेषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
प्रवृत्तान्	प्रकटयन्	प्रकट करता हुआ



इन्द्रियम्	वीर्यम् (आ०को०)	बल को
वृषा	(कामानाम्) वर्षयिता	(कामनाओंके) घरसाने वाला
छन्दः	अर्चनीयः (छन्दस्तिरर्थमकर्म नियं० ३।१४)	पूजने योग्य
भवति	भवति	होता है
हृदयतः	कामयितव्यः (हृदयकान्ती)	कामना करने योग्य
वृषा	(कामानाम्) वर्षयिता	(कामनाओंके) घरसाने वाला
क्षेमिण	सुखेन	सुख से
धेनाम्	वाचम्	घाणी को
मघऽवा	धनवान्	धनवान
यत्	यदा	जब
इन्वति	प्राप्नोति (इन्वतिर्वातिद्वर्मा नियं० २।१४)	प्राप्त होता है

संस्कृतार्थः ।

स एव (इन्द्रः) मनुष्येषु शोभनं वीर्यं प्रकटयन्  
वने (स्थितैः) पूजयितृभिः स्तूयते, अर्चनीयः (सः)  
(कामनाम्) वर्षयिता भवति, कामयितव्यः (सः)  
(कामानाम्) वर्षयिता (भवति) यदा धनवान् (इन्द्रः)  
सुखेन (स्तुतिरूपाम्) वाचं प्राप्नोति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

वह (इन्द्र) ही मनुष्यों में सुन्दर वीर्य को प्रकट  
करते हुए धन में पूजने वालों से स्तुति किए जाते  
हैं, पूजने योग्य वह (कामनाओं के) वरसाने वाले  
हैं, कामना करने के योग्य वह (कामनाओं के) वरसाने  
वाले हैं जब धनवान् (इन्द्र) सुख से स्तुति रूप वाणी  
को प्राप्त होते हैं ॥४॥

(१) धानप्रस्थो भी इन्द्र की ही स्तुति करते हैं, जैसे ग्राम  
में रहने वाले ।

(२) जब इन्द्र को स्तुति प्राप्त होती है, तब पूजने और  
कामना करने के योग्य वह कामनाओं की वर्षा करने हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

सद्गन्महानि समिथानि मज्जमना

कृणोति युध्मञ्जसाजनेभ्यः ।

धाचनश्रद्धधतित्विषीमत इन्द्राय-

वज्रं निघनिघनतेवधम्॥५॥

सः	स.	वह
इत्	एव	ही
महानि	महतः	बड़ो को
सम्पद्धानि	सङ्ग्रामान् (निघ० २१७)	युद्धों को
मज्जमना	शोधकेन (टम सृजो शुद्धी)	शुद्ध करनेवाले से
वृणोति	करोति	करता है
युधमः	योद्धा	जोधा
ओजसा	बलेन	बल से
जनेभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिए
अध	अनन्तरम्	पीछे

च॒नः	ए॒व	ही
अ॒त्	अ॒द्धा॒म्	अ॒द्धा को
द॒ध॒ति	धा॒र॒य॒न्ति	धा॒र॒ण॒ कर॒ते हैं
ति॒व॒प्रि॒ऽम॒ते	दी॒प्ति॒म॒ते	दी॒प्ति॒मा॒न के लि॒एँ
इ॒न्द्रा॒य	इ॒न्द्रा॒य	इ॒न्द्र के॒ लि॒एँ
व॒ज्र॒म्	व॒ज्र॒म्	व॒ज्र को
{ नि॒ऽघ॒नि॒-	पुनः॑ पुनः॑ प्र॒ह॒रं	वा॒र॒वा॒र म॒ार॒ने
{ ष॒न्ते	कु॒र्व॒ते	वा॒ले के॒ लि॒ये
व॒ध॒म्	व॒ध॒रू॒प॒म्	व॒ध रू॒प को :

संस्कृतार्थः । .

स एव योद्धा (इन्द्रः) शोधकेन धलेन मनुष्येभ्यो  
महतः सङ्ग्रामान् करोति, अनन्तरमेव (मनुष्याः)  
दीप्तिमते वधरूपं वज्रं पुनः पुनः प्रहर्त्रे (तस्मै)  
इन्द्राय अर्द्धां धारयन्ति ॥ ५ ॥

मापार्थः ।

वह ही योद्धा (इन्द्र) शुद्ध करने वाले बल से

मनुष्यों के लिए बड़े, युद्ध करते हैं इसके अनन्तरही (मनुष्य) दीप्तिमान (और) वध रूप वज्र से बार बार मारने वाले (उस) इन्द्र के ताई श्रद्धा को धारण करते हैं ॥५॥

जब किसी मनुष्य जाति में अश्रद्धा रूपी अशुद्धि आजाती है तब इन्द्र उस को अपने शोधक बल द्वारा सप्राम में प्रेरण करते हैं, और जब उस जाति के लोग सप्राम में इन्द्र को मनुष्यों का पध करते हुए देखते हैं तब उन में श्रद्धा उत्पन्न होती है, और पध जाति फिर शुद्ध हो जाती है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्द. १२।१२।१२।१२।

स॒हि॒श्च॒व॒स्युः॒स॒द॒ना॒नि॒कृ॒त्रि॒मा॑

द॒म॒या॒व॒धा॒न॒श्री॒ज॒सा॒वि॒ना॒श्र॒य॒न् ।

ज्योती॑षि॒कृ॒ण॒व॒न्न॒वृ॒का॒ण्य॒ज्य॒वे॒ऽव॑

सु॒क्र॒तुः॒स॒र्त॒वा॒अ॒पः॒सृ॒ज॒त् ॥६॥

सः	स	वह
हि	एव	ही

अवस्युः	यशोऽभिलाषी	यशकाअभिलाष
सदनानि	गृहाणि	घरों को
कृत्रिमा	कृत्रिमाणि	कृत्रिमों को
पृथिव्या	पृथिव्या	पृथिवी से
वृधानः	वर्धमानस्य ("सुपांसुलुक्" अ० ७।१।३९)	वढ़ते हुए के
बोजसा	बलेन	बल से
{ विनाश यन्	विनाशयन्	नाश करता हुआ
ज्योतीषि	ज्योतीषि	ज्योतियों को
कृण्वन्	कुर्वन्	करता हुआ
अवकाणि	आवरकेण रहि- तानि	ढांपने वाले से रहितों को
यज्यवे	यज्मन्	यजमान के ताई

अव	अव +	-
सुकृत्तुः	सुकर्मा	सुकर्मा ने
सर्वे	प्राप्तुम् (सुगती सर्वे प्राप्य)	प्राप्त होनेकेलिये
अपः	जलानि	जलों को
सृजत्	अव+सृजत् विसृष्टवान्	छोड़ा

संस्कृतार्थः ।

स एव यशोऽभिलाषी सुकर्मा (इन्द्रः) पृथिव्या  
वर्धमानस्य कृत्रिमाणि गृहाणि घलेन विनाशयन् ज्यो-  
तींषि (च) आवरण रहितानि कुर्वन् यजमानाय प्राप्तुं  
जलानि विसृष्टवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

इस ही यश के अभिलाषी सुकर्मा (इन्द्र ने)  
पृथिवी से बढ़ने वाले के कृत्रिम घरों को तोड़ते हुए  
(और) ज्योतिओं को आवरण रहित करते हुए, यज-  
मान के ताई प्राप्त होने के लिए जलों को छोड़ा । ६।

(१) पृथिवी से बढ़ने वाला घलित कर कृत्रिम  
घरों को तोड़ कर इन्द्र मनुष्य के लिए बढ़ने को वर्षा रूपी अन्न  
छोड़ने हैं ।

अ०मं०१ सू०५५ मं०७ ( १४१८ )

(२) इसी वृत्तने सूर्य चन्द्र और नक्षत्रादि ज्योतिषों का प्रकाश पृथिवी तक पहुँचने से रोका हुआ था (देखो पृ० ७५६)

इन्द्रोदेवताजगती छन्दः १२।१२।१२।१२।

दानाय॑ मनः॑ सोमपावन्नस्तु॑ ते॒

ऽर्वाञ्चा॑ हरीवन्दनश्रुदा॑र्कधि । यमि-

ष्ठासः॑ सारथ्यो॒य इन्द्र॑ ते न तवा॒ के-

ता आद॑भ्नुवन्ति॒ भूण॑यः ॥७॥

दानाय॑	दानाय	देने के लिये
मनः॑	मनः	मन
सोम॑ऽप्रावन्	हे सोमस्यपातः!	हेसोमकेपीने वाले
अस्तु॑	अस्तु	हो
ते॒	तव	तेरा
अर्वाञ्चा॑	अभिमुखी (विभक्तेराणम्)	सामने



हरी०	अद्वौ	घोड़ों को
वन्दनऽश्रुत्	हे स्तुतीर्नाश्रुतः!	हे स्तुतियों के सुनने वाले
आ	आ +	-
कृधि	आ + कृधि, परिवर्तस्व	फेरो
यमिष्ठसः	अतिशयेन यन्तार अद्वयनियमन कृशला इत्यर्थः	घोड़ों को रोकने में चतुर
सारथयः	सारथयः	सारथी
ये	ये	जो
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	ते	वे
न	न	नहीं
त्वा	त्वाम्	तुझ को
केताः	ज्ञातारः (जिज्ञासने)	जानने वाले
आ	आ +	-

द॒भ॒न्नु॒व॒न्ति॒	आ + द॒भ॒न्नु॒व॒न्ति॒	भरमाते हैं
भू॒यः॑	भ्रमयन्ति शीघ्रकारिणः (क०१७३४)	शीघ्रकारी

संस्कृतार्थः ।

हे सोमस्यपातः ! तव मनोदानायाऽस्तु, हे स्तुती-  
नां श्रोतः ! (निज-) अश्वौ (अस्मद्-) अभिमुखौ कुरु,  
हे इन्द्र ! ये (अश्व-) नियमन कुशलाः तव सार-  
थयः (सन्ति, अत्र विद्यायाः) ज्ञातारः शीघ्र कारिणः  
(व) ते त्वाम् (मार्गं) न भ्रमयन्ति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे सोम के पीने वाले ! आपका मन दान के लिये  
हो, हे स्तुतियों के सुनने वाले ! (अपने) घोड़ों को  
(हमारे) सामने फेरो, हे इन्द्र ! घोड़ों को रोकने में  
चतुर जो (आपके) सारथी हैं (अश्व विद्या के) जानने  
(और) शीघ्रकारी वे आपको (रस्ता) नहीं भुलाते ७  
इन्द्रो देवता जगती छन्दः १२।१२।१२।१२।

अप्र॑क्षितं॒ वस॑ वि॒भर्षि॑ हस्त॒यो र॒षा-  
ह्वं॑ सह॒स्तन्वि॑श्रुतो॒दधे॑ । आ॒वृता॑

सोऽवतासोनकर्तृभि स्तनूषुतेक्रत

वद्वन्द्वभूरयः ॥८॥

अप्रऽक्षितम्	प्रक्षयरहितम्	क्षय से रहित को
वसु	धनम्	धन को
विभर्षि	धारयसि	धारण करते हो
हस्तयोः	हस्तयो.	हाथों में
अप्राह्णम्	असह्यम् (पहमर्पणे)	न सहारे जाने वाले को
सहः	बलम्	बल को
तन्वि	शरीरे	शरीर में
श्रुतः	विख्यातः	विख्यात
दधे	धारयति (लङ्घेलिङ्)	धारण करता है

आऽव॒तासः	आविष्टानि (आ०को०) (जसोऽसुगागमः)	भरेहुए
अ॒व॒तासः	जलाशयाः (भा०को०)	सरोवर
न	इव	जैसे
कर्तृ॑ऽभिः	(स्तुति-)कर्तृभिः	(स्तुति)करनेवालों से
त॒नूषु	शरीरेषु	अंगों में
ते	तव	तेरे
क्रा॒तवः	बलानि	बल
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
भूरयः	बहूनि	बहुत

संस्कृतार्थः

हे इन्द्र ! (स्वम्) हस्तयोःक्षयरहितं धनं धारयसि  
विष्ण्यातः(भवान्) शरीरेऽसह्यं बलं धारयति, (अपिच)

# च०मं० २६-३० अङ्कयोः शुद्धयशुद्धि पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२३१	१३	द्रष्टुम्	द्रष्टुम्	१२५१	२	बल	बलै
१२३२	४	भुरण्यन्तम्	भुरण्यन्तम्	१२५७	६	दुमे	दुमे
१२३७	१८	युक्तिभिः	युक्तिभिः	१२६२	८	मायाभ	मायाभि
१२३८	१६	पुत्रि	पुत्रो	१२६३	१६	शुष्णऽ	शुष्णऽ
१२३९	८	सूर्य	सूर्या	१२६४	२	रक्षा की	रक्षा की
१२४०	४	उत्तऽतः	उत्तऽतः	१२६५	२२	करकयुक्	करकयुक्
॥ ११		ज्योतिरूपम्	ज्योतीरूपम्	१२६६	१२	रात्वम्)	रात्वम्)
१२४१	८	अथवा	अथवा	॥ १६			
॥ १०		दादादा	दादादा	१२७०	६	शाकी	शाकी
१२४२	१२	द्युलोकम्	द्युलोकम्	॥ १२		उनका	उनकी
॥ १६		द्युलोक	द्युलोक	१२७२	११	आऽभूमिः	आऽभूमि
१२४३	८	आधुकी	आधुकी	१२७८	२	स्रोतसा	स्रोतसा
१२४४	२	स्थापन	इमस्थापन	॥ १०		वङ्	वङ्
॥ १४		सारिकायु	सारिकायु	१२८१	७	वृषाय	वृषायः
॥ १८		मनाभी	मैनाभी	१२८२	११	इलाकम्	इलाकम्
१२४३	१८	मंसूतम्	मंसूतम्	॥ १३		रोङ्से	रोङ्से
१२४०	१८	इन्द्र	इन्द्र	१२८४	१४	कुर्वत	कुर्वत
				१२८७	१५	यपः	यपः
				१२८०	११	इससे	इससे

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२८२	५	शत्सूक्तम्	शंसूक्तम्	१३०८	१३	वणे	प्रवणे
१२८३	१३	सु॒ऽऽ॒वः	सु॒ऽऽ॒वः	१३१२	३	येन	यस्य
१२८७	■	जर्हृ॒पा॒यः	जर्हृ॒पा॒यः	"	२१	दम्द्र	इम्द्र
१२८८	३	वव	वव	१३१४	११	धारण	स्थापन
"	४	बु॒नी	बु॒नी	१३१६	१२	(सुगा	(असुगा
१३०१	८	मद्रन्	मुद्रन्	१३१८	१४	वज्रम	वज्रने
१३०२	७	अ॒प॒ने	अ॒प॒ने	१३२३	४	वि॒ऽऽ	वि॒ऽऽ
"	१४	क॒तयः	क॒तयः	"	८	शवसा	शवसा
१३०४	३	मरुदण	मरुदण	अ०स० अ० २० २८ । पृ० पं० अशुद्धम् शुद्धम् १३२३ १७ शत्सूक्तम् शंसूक्तम्			
१३०८	७	बु॒नम्	बु॒नम्				

पुस्तक मिलने का पता—

मुन्शी जयराम, मैनेजर

ऋग्वेद संहिता मुलतान

अंक ३३-३४]

[ज्येष्ठ-आषाढ़ १९६६]

# ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद  
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर  
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुल्तान निवासी पं० शङ्करदास  
शास्त्री की सहायता से शिवनाथ  
भादितानि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकाग्रीमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर खासा  
खालमग के अधिकार से दया ।

१२ अंकों का मूल्य मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५४)

तव शरीरेषु बहूनि घलानि (स्तुति) कर्तृभिरावि-  
ष्टानि (सन्ति) यथा जलाशयाः (बहुभिर्मनुष्यैरा-  
विष्टा भवन्ति) ॥८॥

भाषार्थः।

हे इन्द्र ! आप दोनों हाथों में क्षय रहित धन  
को लिए हुए हो, विरुधात (आप) शरीर में  
असह्य बल को धारण करते हैं (ओर) आपके शरीरों  
में बहुत बल (स्तुति) करने वालों द्वारा भरे हुए (हैं)  
जैसे सरोवर (बहुत मनुष्यों से घिरे हुए होते हैं) ।८।

अनेक स्तोताओं को रुग्नि द्वारा इन्द्र के शरीरमय घलानों से भरे हुए हैं जैसे सरोवरों के तट मनुष्यों से भरे हुए होते हैं। यह प्राचीन समय की बात है आज बल तो स्तोताओं के भ्रमाय से इन्द्र यज्ञों से ऐसे शून्य हैं जैसे शुष्क सरोवर मनुष्यों से शून्य होता है।

इति पञ्चपञ्चाशं सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू० ५६।

सव्य ऋषि ।

विनियोग—यह सूक्त विष्णुधत्त के निकेवत्यश्वमेध में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० उ० २।६।१३)।

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है। जब इन्द्र का अंक उन के लिये सोम की चमत्त पात्र में रगना है, तो वह अत्यन्त कामना पूर्वक उसके घर पर आते हैं और अपने रथको ठहरा कर सोमपान



क० मं०१ सु०५६ मं०१ ( १४२४ )

करते हैं। जैसे घन की इच्छा करने वाले को समुद्रयात्रा में उद्योग करना पड़ता है वैसेही इन्द्रकी इच्छाकरने वालेको स्तुतिऔर पूजन में उद्योग करना पड़ता है। इन्द्र लोहे के शरीर वाले हैं और युद्ध में प्रहार करते हुए उनका चल पर्वत के शिखर की न्याई प्रकाशित होता है, इन्होंने पृथिवी को सुकाने वाले शुष्ण को बेल से बांध कर कारागारमें रखाथा,जिस से फिर अनावृष्टि न हो। जब मत्त की स्तुति से इन्द्र का चल बढ़ता है तब वह अपने तीव्र प्रकाश से मन्धकार को नाश करते हैं और मेघों की उत्पत्ति के लिए धूलको आकाश में उठाते हैं। आकाश की दिशामों में जलों के धारण करने वाले दद मन्तरिक्ष को इन्द्र ने ही स्थापन किया है और यही वृत्र को मार कर जलों को बाढ़ को पृथिवी पर छोड़ते हैं। इन्द्र सोमके मद में वृत्र के पयरीले कोटों को तोड़ते हैं और उस से घिरे हुए जलों को छुड़ते हैं ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ११२।१२।१२।१२।

एषप्रपूर्वीरवतस्यचमिषोऽत्यो-  
नयोषामुदयस्तभुर्वणिः । दक्षमहे  
पाययतेहिरण्ययं रथमावृत्याहिरि-  
योगमृभवसम् । १।

एषः	एषः	यह
प्र	प्रकर्षेण	अत्यन्त
पर्वीः	पूर्णानि (पृ पूरणे कु प्रत्ययः)	पूर्ण
अव	अव +	-
तस्य	तस्य	उसके
चमिषः	चमूपु चमसेध्वव- स्थिताइषः, सोम रूपाणि हवींषि (यकारस्य रेफवर्णाः)	चमसों में रखे हुए सोमरूप हवियों को
अत्यः	अश्वः (निघं० १।१४)	घोड़ा
न	इव	जैसे
योषाम्	(निज)पत्नीम् (घडवाम्)	घोड़ी को
उत्	उत् +	-
अयंस्त	उत् + अयस्त उत्तिष्ठति (लङ्घ्ये लट्)	उठता है

भूर्वाणिः	शीघ्रकारी (भुर्युष्टिति क्षिप्र नाम नि० २।१५)	शीघ्रता करने वाला
दक्षम्	वलरूपम् (सोमम्)	वलरूप (सोम) को
महे	महते (स्वात्मने)	महान (अपने) ताई
पाययते	पाययते	पिलाता है
हिरण्ययम्	सुवर्णमयम्	सुवर्णमय को
रथम्	रथम्	रथ को
आऽवृत्त्य	अवस्थाप्य	ठेरा कर
हरिऽयोगम्	हय्योरश्चयोर्योगो योजनं यस्मिन्मस्तम्	दो घोड़ों से जुड़े हुए को
चतुर्वसम्	उरु भासम् (पृषोदरादित्यादभ्यस्ता देशः)	विस्तीर्ण दीप्ति वाले को

संस्कृतार्थः ।

एषः (इन्द्रः) तस्य (यजमानस्य) चमसेष्ववस्थितानि  
प्रकर्षेण पूर्णानि सोमरूपाणि हर्वापि (प्रति) शीघ्रकारी

(सन्) उत्तिष्ठति यथा वडवाम्(प्रति) अश्वः[शीघ्रतयो  
त्तिष्ठति] ( तदनन्तरं तस्य गृहे) अश्वाभ्यां युक्तं  
सुवर्णमयमुहभासं रथमवस्थाप्य महते [ स्वात्मने ]  
बल रूपम्(सोमम्) पाययते ॥१॥

भाषार्थः ।

यह [इन्द्र]इस[यजमान]के चमस पात्रोंमें रखे  
हुए अत्यन्त पूर्ण सोमरूप हवियों के प्रति [ऐसी]  
शीघ्रता करते हुए उठते हैं जैसे घोड़ा घोड़ी(के प्रति  
शीघ्रतासे उठता है)[फिर उसके घर पर]दो घोड़ों से  
जुड़े हुए सुवर्णमय विन्तृत दीप्ति वाले रथ को ठहरा  
कर महान्[अपने]को बलरूप (सोम) पान कराते हैं ॥१॥

यह मन्त्र इन्द्र की सोमप्रियता की वर्णन करता है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ॥१२॥१२॥१२॥१२॥

तंगूर्तयो॑नेम॒न्निषः॒परी॑णसः स-

मु॒द्रं न॒स॒ञ्च॒र॒णो॒सनि॒ष्यवः॑ । पति॑न्द-

क्ष॒स्य॒विद॒ध॒स्य॒नू॒स॒हो॒ गि॒रि॒न॒वे॒ना-

अधि॑री॒हृते॑जसा । २ ।

तम्	तम्	उस को
गर्तयः	स्तोतारः (शृणन्तिस्तुवन्ति)	स्तुति करनेवाले
नेमन्ऽद्रुषः	नीत हविष्काः	जिन्हों ने हवियें पहुँचाई हैं
परीणसः	बहवः (निघं० ३।१)	बहुत
१ समुद्रम्	समुद्रम्	समुद्र को
न	इव	जैसे
सम्ऽचरणे	प्रवासे	परदेस यात्रा में
१ सनिष्ठयवः	धनमिलन्तः	धन की इच्छा करते हुए
पतिम्	स्वामिनम्	स्वामी को
दक्षस्य	बलस्य (निघं० २।९)	बलके
विदथस्य	यज्ञस्य (निघं० ३।१७)	यज्ञ के
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र

सहः	बल रूपम्	बलरूप को
२ गिरिम्	पर्वतम्	पर्वत को
न	इव	जैसे
२ वेनाः	मेधाविनः (निघ० ३।१५)	बुद्धिमान
अधि	अधि +	-
रोह	अधि + रोह	खद
तेजसा	ओजसा	बल से

संस्कृतार्थः ।

नीतहविष्का बहवः स्तोतारो बलस्य यज्ञस्य(च) स्वामिनंतम् ( इन्द्रं प्राप्नुवन्ति ) यथा धनमिच्छन्तः प्रवासे समुद्रम् (प्राप्नुवन्ति) [स्वमपि तम्] बल रूपं क्षिप्रमोजसाऽधिरोह यथा मेधाविनः पर्वतम् (अधिरोहन्ति) ॥ २ ॥

माषार्थः ।

जिन्होंने ने हवियें दी हैं ऐसे बहुत स्तोता लोग बल (और) यज्ञ के स्वामी उस (इन्द्र) को (प्राप्त

अ०मं०१ सू०५६ मं०३ ( १४३० )

होते हैं) जैसे धनको चाहनेवाले परदेसकी यात्रा में समुद्र को (प्राप्त होते हैं) (तू भी उस) बल रूप को शीघ्र बल पूर्वक चढ़ कर प्राप्त हो जैसे बुद्धिमान पर्वत को (प्राप्त होते हैं) ॥ २ ॥

(१) जैसे धन की इच्छा करने वालों की शरण समुद्र है (यद्युत धन की प्राप्ति तभी होती है जब समुद्र के पार जा कर परदेसों में व्यवहार किया जावे) वैसे ही हवि देने वाले, स्तोताओं की शरण इन्द्र हैं ॥

(१) बल रूप इन्द्र की प्राप्ति बल पूर्वक प्रयत्न से ही हो सकती है जैसे पहाड़ की चढ़ाई को बुद्धिमान बल पूर्वक प्रयत्न द्वारा तय कर लेते हैं

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

सतुर्वणिर्म॑च्छा॑अ॒रेणु॑पौ॒र्य॑ गि॒रे-  
भृ॒ष्टिर्न॑भ्रा॒जते॑तुजाश्वः । येन॑शु-  
ष॑ण्मा॒यिन॑माय॒सोम॑दे दु॒धआ॒भूषु-  
रा॒मय॑न्नि॒दाम॑नि ॥३॥

सः	सः	बह
सुर्वणिः	शीघ्रकारी (निघ० ४३)	शीघ्रकारी
महान्	महान्	बड़ा
अरिणु	अनवयम्	वोष राहत
पौस्ये	सङ्ग्रामे (निघ० २१७)	युद्ध में
गिरेः	पर्वतस्थ	पर्वत के
भृष्टः	शिखरम्	शिखर
न	इव	की न्याई
भ्राजते	दीप्यते	चमकता है
तुजा	प्रहारेण (आ०को)	प्रहार से
श्वः	बलम्	बल
येन	येन	जिस से
शुष्णम्	शुष्णम्	शुष्ण को



मायिनम्	मायोपेतम्	मायावी को
आयसः	लोहमयः	लोहे के शरीर वाला
मदे	मदे (सति)	मद के होने पर
दुधः	(शत्रूणाम्) अवरोधकः	(शत्रुओं को) रोक रखने वाला
आभूष-	काराग्रहेषु	कारागारों में
रमयत्	नि+रमयत् व्यवासयत्	रखा था
नि	+ नि	
दामनि	बन्धके निगडे	बांधने की वेल में

संस्कृतार्थः ।

सः शीघ्रकारी महान् [चाञ्छति] संग्रामे प्रहा-  
रेण [तस्य] अनवर्य चल पर्वतरथ शिखरमिव  
दीप्यते, येन [वलेन] लोहमयः [शत्रूणाम्] अवरोधकः  
[इन्द्रः] मायोपेतं शुणं काराग्रहेषु बन्धके निगडे  
॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

॥ १२ ॥ उवह ( शीघ्रकारी ) ( और ) महान है, युद्ध में प्रहार से ( उनका ) मिर्दोष बल पर्वत के शिखर की न्याई चमकता है जिस ( बल ) से लोहे के शरीर वाले ( शत्रुओं को ) रोक कर रखने वाले ( इन्द्र ने ) मायावी शुष्ण को कारागारों में बेल से ( बांध कर ) रखा था ॥ १२ ॥

शुष्ण के लिए देखो पृ० २४९—शुष्ण को बेल में बांध कर कारागार में रखना ऋषि की कल्पना है जिसका आशय पढ़ने या सुनने वाले के मन पर शत्रु को सब प्रकार से ध्याने का संस्कार बढ़ करने का है, वास्तव में न इन्द्र ने कोई युद्ध किए हैं न कोई उनका शत्रु हुआ है देखो अ० १० । १४ । २ ।

॥ ११ ॥ 'मायेत्साले, यानि युद्धान्याहुर्नाथ शत्रु न पुत्र विधिते' ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

देवीयदितविषीत्वाधोतय इन्द्रं

सिषक्त्युषसंनसूर्यः । योधुष्णुना-

शवसाबाधतेतम इयतिरेणुं वृहदह-

रिष्वणिः । १४ ।

देवी	दीप्यमानम्	चमकता हुआ
यदि	यदा	जब
तविषी	वलम्	बल
तवाऽवधा	स्वयावर्धितम् (विभक्तोरात्मम्)	तुझसे बढ़ाये हुए को
ऊतये	रक्षाऽर्थम्	रक्षा के लिए
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
सिसक्ति	सेवते (यास्कः)	सेवन करता है
उपसम	उपसम्	उपा को
न	इव	जैसे
सूर्यः	सूर्यः	सूर्य
यः	यः	जो
धृष्टगुना	धर्षकेण	दवाने वाले से
शवसा	बलेन	बल से

बाधते  
तमः  
द्वयति  
रेणुम्  
बृहत्  
अर्हृरिऽ-  
स्वनिः

नाशयति  
अन्धकारम्  
प्रेरयति  
धूलिम्  
प्रभूतम्  
अरो गच्छन्तो ह-  
रन्तीत्यर्हरयः श-  
त्रवः तेषां व्यथो-  
त्पादनेन स्वन-  
यिता शब्दयिता

नाश करता है  
अन्धकार को  
उठाता है  
धूलि को  
बहुत  
शत्रुओं में आर्त  
नाद को उठाने  
वाला

संस्कृतार्थः ।

(हे स्तोतः!) रक्षाऽर्थं त्वया वर्धितं दीप्यमानं बलं  
यदा सूर्यउपसमिवेन्द्रं सेवते ( तदा सः ) शत्रूणां  
शब्दयिता धर्षकेण बलेन अन्धकार नाशयति प्रभूतं  
धूलिम् [च] प्रेरयति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

[हे स्तोता] रक्षा के लिए तुझ से बढ़ाया हुआ  
दीप्यमान बल जब इन्द्र को सेवन करता है जैसे

सूर्य उपा को, [तब वह] शत्रुओं में आर्तनाद को  
उठाने वाले देवाने वाले बल से अन्धकार को नाश  
करते हैं [और] बहुत धूलि को प्रेरण करते हैं ॥ ४ ॥

जब स्तोता की स्तुति से इन्द्र में बल होता है, तब वह उस  
बल से अन्धकार को नाश करके तीव्र प्रकाश से वायु के घेग को  
यदा कर बहुत धूलि को आकाश में प्रेरण करते हैं, जिससे बादलों  
की उत्पत्ति होकर घृष्टि हो ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

वियत्तिरोधरुणमच्युतं रजोऽति-

ष्ठिप्रोदिव आता सुबर्हणा नाः स्वर्मी-

ह्लेयन्मद इन्द्र हर्ष्या ऽहन्वचं नि-

रुपामौ रजो अर्णवम् । ५ ।

वि	वि	जो
यत्	यत्	जो
तिरः	तिरः	आर. पार

धरुणम्	धारकम्	धारण करने वाले
अच्युतम्	दृढम्	दृढ को
रजः	अन्तारक्षम्	अन्तरिक्ष को
अतिस्थिपः	वि+अतिस्थिप स्थापितवान्	स्थापन किया
दिवः	आकाशस्य	आकाश के
आतासु	दिक्षु (निघ० १।६)	दिशाओं में
बर्हणा	बलवान् (आ० को०) (विभक्तोर्द्धादेश)	बलवान्
स्वःऽमी हृल्ले	ज्योतिषेकृते सहग्रामे (मीहृल्ले इतिसङ्० ग्रामनाम निघ० २।१०)	ज्योति के लिए किये हुए युद्ध में,
यत्	यत्	जो
मदे	मदे (संति)	मद के होने पर
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र

हृष्या	हर्षेण (सा०भा०)	हर्ष से
अहन्	हतवान्	तूने मारा
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
निः	निः+	-
अपाम्	अपाम्	जलों के
औजः	निः+औजः	नीचे गिराया
	अधः पातितवान् (भा० को०)	
अर्णवम्	आप्लावम् (भा०को०)	बाढ़ को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! यद्बलवान् [त्वम्] आकाशस्य दिक्षु  
[जलानाम्] धारकं दृढमन्तरिक्षं तिरः स्थापितवान्  
यन्मदे [सति] ज्योतिषे कृते संग्रामे हर्षेण वृत्रं हत-  
वान्, जलाप्लावम् [च] अधः पातितवान् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! जो बलवान् (आपने) आकाशकी दिशाओं  
में (जलों-के) धारण करने वाले दृढ़ अन्तरिक्ष-को

आर पार स्थापन किया, जो मद के होने पर, ज्योति के निमित्त किए हुए युद्ध में हर्ष से वृत्र को मारा और जलों की बाढ को नीचे गिराया ॥ ५ ॥

(१) "आर पार" अर्थात् पृथिवी के चौकरे ॥

(२) ज्योति के निमित्त किया हुआ युद्ध जो प्रथम ज युद्ध से करके सूर्य के प्रकाश को पृथिवी तक पहुँचाया था ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

तव॑दि॒वो॒ध॒रु॒णं॑धि॒प्र॒ञ्ज॑सा॒ पृ॒-

थि॒व्या॑इन्द्र॒सद॑नेषु॒मा॒हि॒नः॑ । तव॑-

सु॒तस्य॑मद॑अरि॒णाअ॒पो वि॒ह्व॑चस्य॒स-

मया॑पा॒ठ्या॒रु॒जः॑ । ६ ।

तवम्	त्वम्	तूने
दिवः	द्युलोकात्	आकाश से
धरुणम्	उदकम्	जल को
	(निघ० १।११)	



धिषे	स्थापितवान्	स्थापन किया
ओजसा	बलेन	बल से
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी के
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सदनेषु	प्रदेशेषु	प्रदेशों में
माहिनिः	प्रवृद्धः	बड़ा हुआ
त्वम्	त्वम्	तूने
सुतस्य	निष्पीडितस्य	सोम के
मदे	(सोमस्य) मदे	मद में
अरिणाः	वि+अरिणाः, विमोचितवान्	छुड़ाया
अपः	जलानि	जलों को
वि	वि +	-

वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
समया	सीमारूपाणि (आ को०) (गोलोंप)	सीमारूप
पाप्या	पापाणवेष्टनानि (गोलोंप)	पत्थर के कोटोंको
अरुजः	खण्डितवान् (रुजोमहो)	तोड़ दिया

सस्वतार्यः

हे इन्द्र ! प्रवृद्धस्त्वं बलेन द्युलोकात् पृथिव्याः प्रदेशेषु जलं स्थापितवान् त्वं निष्पीडितस्य [सोमस्य] मदं [वृत्र सकाशात्] जलानि विमोचितवान् वृत्रस्य सीमा [रूपाणि] पापाणवेष्टनानि [च] खण्डितवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थ ।

हे इन्द्र ! बड़े हुए आपने बल द्वारा द्यौ से पृथिवी के स्थानों में जल को स्थापन किया, आपने निचोड़े हुए (सोम) के मद में (वृत्र) से जलोंको छुड़ाया और वृत्र के सीमा रूप पत्थर के कोटों को तोड़ दिया ॥ ६ ॥

इति षट् पञ्चाङ्गं सूक्तम् ।

## ऋ० मं० १ सू० ५७ ।

सव्यप्रह्विः ।

विनियोग—यह सूक्त विपुवत् के निष्केवल्य शस्त्र में पढ़ा जाता है (भा० श्रौ० सू० उ० २।६।१३)

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है। इन्द्र सब से अधिक दानी सब से अधिक धन वाले और सच्चे बल वाले हैं हम उन्हीं को अपनी सखि भेट करें। इन्द्र के ही धन दान से सयु मनुष्यों को बल मिलता है । जब से इन्द्र का वज्र घृज को प्रहार करने में कटिबद्ध है तब से लोग उनके पूजने में प्रवृत्त हुए हैं । इन्द्र का नाम, स्थान, बल और दीप्ति दूसरों के उपकार के लिए है, जिनको सुन कर मनुष्य बल को प्राप्त करें। हम इन्द्र को हैं और उन्हीं के आश्रय पर विचरते हैं उन से दूसरा लौकिक राजाभादि हमारी रक्षति को नहीं प्राप्त हो सकना, हमारी यात्रा उन को प्रिय हो। इन्द्र में बहुत बोर्य है, यह अपने उपासक की कामना को पूर्ण करेंगे, महान् ब्रह्मलोक ने भी इन्द्र के वीर्य को माना है और पृथिवी उन के बल के सामने झुकी है । सचमुच इन्द्र का बल अद्वितीय है ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

प्रमं॑हि॒ष्ठाय॑ब॒हते॑ब॒हद्र॑ये स॒त्य-

शु॑ष्मा॒यत्त॒वसे॑म॒तिंभ॑रे । अ॒पासि॑व-

प्रव॒णी॒य॒स्य॒दु॒र्ध॒रं॒ रा॒धो॒वि॒श॒वा॒यु॒श॒व॒से  
अ॒पा॒व॒त॒म् ।१।

प्र	प्र +	-
मं॒हि॒ष्ठा॒य	अतिशयनदान युक्ताय (महनिर्दानधर्मा निय० ३।२०)	अत्यन्त दानी के ताड़ें
वृ॒ह॒ते	गहते	महान के नाड़ें
वृ॒ह॒त्॒ऽर॒ये	महाधनिने	महाधनी के ताड़ें
{ स॒त्य॒ऽशु॒- ष्मा॒य	सत्यबलाय	सच्चे बली के ताड़ें
त॒व॒से	प्रश्रद्धाय	घहून घड़े हुए के ताड़ें
स॒ति॒म्	युद्धिम्	युद्धि को
भ॒रे	प्र+भरे, निवेद- यामि	भेट करता हूं

अपांसुऽइव	उदकानामिव	जैसे जलों का
प्रवणे	निम्नप्रदेशे	नीचे स्थान में
यस्य	यस्य	जिसका
दुःऽधरम्	धर्तुमशक्यम्	धारण करने को अशक्य
राधः	धनम्	धन
विप्रवऽआयु	सर्वमनुष्यसम्बन्धि (आयुरिति मनुष्यनाम निघं० २।३)	सब मनुष्यों सम्बन्धी
शवसे	चलाय	चल के लिए
अपऽहृतम्	आवरणरहितं कृतम्	प्रकाशित किया गया

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) अतिशयेन दानयुक्ताय महाधनिने सत्य-  
चलाय महते प्रवृद्धाय (चेन्द्राय) बुद्धि निवेदयामियस्य  
(चलम्) निम्नप्रदेशे (गच्छताम्) उदकानाम् (वेगः)  
इव धर्तुमशक्यम् (येनच) सर्वमनुष्य सम्बन्धि धनं  
चलायाऽऽवरणरहितं कृतम् । १।

मापार्यः ।

अत्यन्त दानी महाधनी सच्चे बली महान (और) बढे हुए (इन्द्र को) ताई में बुद्धि को भेट करता हूँ, जिस का (बल) नीचे स्थान में (जाते हुए) जलों के (वेग) की न्याई धारण नहीं किया जा सकता और जिस ने सब मनुष्यों के धन को बल के लिये प्रकाशित किया है ॥१॥

१ जो सब से अधिक धन वाले, सब से अधिक बल वाले और सब से अधिक दानी हूँ । ऐसे इन्द्र को अपनी बुद्धि समर्पण करने में क्या भय है, भय तो दूसरे मनुष्य को अपनी बुद्धि भेट करने में है, चाहे वह कैसा ही विद्वान और महात्मा क्यों न हो, इन्द्र को भद्धा पर्यंक ऐसा कहने से कि 'हे देव मैं अपनी बुद्धि आप को समर्पण करता हूँ मुझे आदेश दें मैं उस पर चलूंगा, भयश्य शनैः शनैः ज्ञान की स्फूर्ति होती है उसी पर चलना मनुष्य के लिए भयस्कर है, चाहे वह ज्ञान लौकिक बुद्धि से विपरीत भी हो ।

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

अध॑ते॒ वि॒श्व॒मनु॑हा॒सदि॒ष्टय॒ आ-

पो॑ नि॒म्ने॒ व॒स॒वना॑ ह॒ विष्म॑तः । यत्प॑र्व-

तेन॑ स॒मशी॑त॒ ह॒र्य्य॑त इन्द्र॑स्य॒ वज्रः॑ प्र॒न-

# थिताहिरण्ययः ।२।

अध	अथ, अनन्तरम् (यस्य धत्वं छान्द०)	पीछे
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
विप्रवम्	जगत्	जगत्
अनु	अनु +	—
ह	खलु	सचमुच
असत्	अनु + असत्, प्रवृत्तोऽभवत्	प्रवृत्त हुआ
दृष्टये	यागाय	यज्ञ के ताई
आपः	आपः	जल
निम्नाऽद्व	अधोदेशंगच्छ- न्त्यद्व (शेर्लोपः) ;	नीचे जाते हुए जैसे
सवना	यज्ञाः (शेर्लोपः)	यज्ञ

हृविष्मन्तः	हविर्युक्तस्य	हवि से युक्त के
यत्	यदा	जब
पर्वते	वृत्रे (निघ० १।१०).	वृत्र पर
न	न	नहीं
सम्प्रशीत	संसुप्तोऽभवत्	सोया
हृदयतः	शोभनः सा०मा०)	सुन्दर
इन्द्रस्य	इन्द्रस्य	इन्द्र का
वज्रः	वज्रः	वज्र
प्रनयिता	हिंसकः	मारने वाला
हिरण्ययः	सुवर्णमयः	सुवर्णमय

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) यदा हिंसकः सुवर्णमयः शोभनस्तव वज्रो  
वृत्रे (प्रहाराय) संसुप्तो नाऽभवत् (तद्-) अनन्तरं जगत्



त्वंदर्थं यागाय प्रवृत्तो बभूव. हविर्युक्तस्य (यजमान समूहस्य) यज्ञाः (च) अधोदेशं गच्छन्त्य आपं इव (त्वां प्राप्नुवन्) ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र! जब आपका मारने वाला सोने का सुन्दर वज्र घुम्र पर (प्रहार के लिये) नहीं सोया. (तिससे) पीछे जगत् आपके लिए यज्ञ में प्रवृत्त हुआ, (और) हवि से युक्त (यजमानों) के यज्ञ नीचे की ओर जाते हुए जलों की न्याईं (आप को प्राप्त हुए) ॥२॥

जब से इन्द्र का वज्र घुम्र पर प्रहार करने के लिये नहीं सोया अर्थात् जागृत रह कर प्रहार करता रहा है तब से अर्थात् सृष्टिके आदि से ही लोग इन्द्र के पूजन में प्रवृत्त हुए हैं । क्योंकि इन्द्र का वज्र मनुष्य सृष्टि से पहले ही घुम्र पर पड़ने लगा है । (देखो पृष्ठा ७४७)

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२। .

अ॒स्मैभी॒माय॒नम॒सासम॑ध्व॒र उ॒-  
षो॒नशु॒भ्रआ॒भरा॒पनी॑यसे । यस्य॒धा॒-  
म॒श्रव॑से॒नामे॑न्द्रि॒यं ज्योति॑रका॒रिहृ॒-  
रि॒तोना॑य॒से । ३।

अ॒स्मै	अस्मै	इसके लिये
भी॒माय॑	भयङ्कराय	भयानक के लिये
नम॑सा	नमस्कारेण	नमस्कारके साथ
सम्	सम्+	-
अ॒ध्व॒रे	यजे	यज्ञमें
१ उ॒षः	हे उपः!	हे उषा
न	सम्प्रति (भक्त्युपमार्थस्य सम्प्र त्यर्थेप्रयोगइतियास्क)	अब
शु॒भ्रे	हे उज्ज्वल रूपे!	हे उज्ज्वल रूप वाली
आ	आ+	-
भ॒र	आ+भर,सम्पादय	सम्पादन करो
प॒नी॒य॒से	अतिशयेन स्तोत व्याय	अतिशय करके स्तुतिके योग्य के लिये

यस्य	यस्य	जिसका
धाम	स्थानम्	स्थान
श्रवसे	श्रवणाय (मा०को०)	सुनने के लिये
नाम	नाम	नाम
इन्द्रियम्	बलम्	बल
ज्योतिः	दीप्तिः	प्रकाश
अकारि	अकारि	किया गया
हरितः	अश्वाः	घोड़े
न	इव	जैसे
अयसे	गमनाय	जाने के लिये

मंस्कृतार्थः ।

हे उज्ज्वलरूपे ! हे उपः ! अतिशयेन स्तोतव्याय  
भयङ्करायाऽस्मै (इन्द्राय) सम्प्रति यज्ञे नमस्कारेण

(हविः) सम्पादय, यस्य नाम, स्थानं बलं दीप्तिः  
(च) श्रवणार्थं मकारि यथाऽश्वा गमनाय (कृताः) ॥३॥

मार्थः ।

हे उज्ज्वल रूप वाली उषा ! अतिशय करके स्तुति के योग्य इस भयानक (इन्द्र के) ताई अव्यक्त में नमस्कार के साथ (हवि को) सम्पादन करो, जिस का नाम स्थान, बल (और) दीप्ति सुनने के लिये बनाए गए हैं जैसे घोड़े चलने के लिये ॥३॥

१ उपकाल में हमारी हवि को उपादेयो इन्द्र के लिए सम्पादन करें, अर्थात् हमें त्रिव हविः सम्पादन करने के लिए प्रेरण करें ।

२ इन्द्र का स्थान, नाम, बल और दीप्ति ये सब दूसरों के उपकार के लिये बनाए गए हैं जिससे मनुष्य इन को सुन कर देवी गुणों से युक्त हों । जैसे घोड़े इसलिये बनाए गए हैं कि मनुष्य उनके द्वारा गमन करें, और जैसे घोड़ों की याथा का फल खटने वालों के लिए है वैसे ही इन्द्र के गुण इस लिए हैं कि उनके श्रवण और कीर्तन से मनुष्य लाभ उठावें ।

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुषदुत येत्वा-

रभ्य च रामसि प्रभूवसो । न हितवद्-

यस्य	यस्य	जिसका
धाम	स्थानम्	स्थान
श्रवसे	श्रवणाय (भा०को०)	सुनने के लिये
नाम	नाम	नाम
इन्द्रियम्	बलम्	बल
ज्योतिः	दीप्तिः	प्रकाश
अकारि	अकारि	किया गया
हरितः	अश्वाः	घोड़े
न	इव	जैसे
अयसे	गमनाय	जाने के लिये

संस्तरार्थः ।

हे उज्ज्वलरूपे ! हे उपः ! अतिशयेन स्तोतव्याय  
भयङ्करायाऽस्मै (इन्द्राय) सम्प्रति यज्ञे नमस्कारेण

प्रभुऽवसो०	हे प्रभूतधन !	हे बहुत धन वाले
नहि	नहि	नहीं
त्वत्	त्वंतः	तुझसे
अन्यः	अन्यः	और
गिर्वणः	हे स्तुतिभिः सं- सेव्य !	हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
सघत्	प्राप्नोति (पधतेलेटिकर्षविकरण- स्थबलक् )	प्राप्त होता है
क्षोणीऽद्वव	पृथिवीव (सुलोपाऽभाव इछान्दसः)	पृथिवी की न्याई
प्रति	प्रति+	—
नः	अस्माकम्	हमारे
हृदयं	प्रति+हृदयं काम यस्व	प्यार करो

न्योगिर्वणोगिरःसघत् क्षीणीरिव-  
प्रतिनोहृदयतवचः । ४ ।

इमे	इमे	ये
ते	तव	तेरे
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	ते	वे
वयम्	वयम्	हम
पुरुऽस्तुत	हे बहुभिः स्तुत ।	हे बहुतों से स्तुति किये गए
ये	ये	जो
त्वा	त्वाम्	तुझ को
आरभ्य	आश्रित्य	आश्रय बनाकर
चरामसि	विचरामः	विचरते हैं
	(इदं लोमनीतिमम्- एकाराऽऽगमः)	

( १४५५ ) म० सं० १२०५७ मं०

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२.

भूरि॑त॒इन्द्र॑वी॒र्यै॑तव॒स्मस्य॑ स्य-

स्तो॒तुम॑घव॒न्काम॑मा॒पृण॑ । अ॒न॒ते-

द्यौर्व॑ह॒तीवी॒र्यै॑मम इ॒यंच॑ते॒पृथि॒वी-

ने॒मओ॑ज॒से । ५।

भू॒रि॑	प्रभू॒तम्	बहु॒त
ते॒	तव	तेरा
इ॒न्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वी॒र्यै॑म्	वी॒र्यम्	वी॒र्य
तव॑	तव	तेरे
स्मसि॑	स्मः	हम हैं
	(मसइकाराऽऽगमः)	



तत्	तत्	उसको
वचः	वचः	वचन को

संस्कृतार्थः ।

हे बहुभिःस्तुत ! प्रभूतधन ! इन्द्र ! ये [वयम्]  
त्वामाश्रित्य विचरामस्तइमं वयं तव(स्मः) हे स्तुतिभिः  
संसेव्य ! त्वत्तोऽन्यः (अस्मत्-) स्तुतीर्नहि प्राप्नोति  
(त्वम्). अस्माकंतत् ( स्तुतिरूपम् ) वचः कामयस्व,  
यथापृथिवी (स्वकीयानि भूतानि कामयते) ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

हे बहुतों से स्तुति किये गये, बहुत धन वाले  
इन्द्र ! जो हम आपको आश्रय बना कर विचरते हैं  
वे ये हम आप के हँ हे स्तुतियों से सेवन करने  
योग्य ! आपसे दूसरा (हमारी) स्तुतियों को नहीं  
प्राप्त होता आप उस (स्तुतिरूप) हमारे वचन को  
प्यार करो जैसे पृथिवी (अपने जीवों को प्यार  
करती है) ॥ ४ ॥

(१) पृथिवी अपने जीवों को प्यार करती है, इसीलिए  
उनको अपने ऊपर धारण करती है और उनके पोषण के लिए  
मग्न आदि को उत्पन्न करती है।

(२) दूसरा अर्थात् लौकिक राजा आदि।

इ॒यम्	इ॒यम्	यह
च	च	और
ते	तव	तेरे
प॒थि॒वी	पृथि॒वी	पृथि॒वी
ने॒मे	प्र॒ह्नी॒षभू॒व	झुकी है
बो॒ज॒से	ब॒लाय	बल के सामने

हे धनवान् ! (वयम्) तव स्मः (स्वम्) अस्य  
स्तोतुरभिलापं पूरय, हे इन्द्र ! तव बलं प्रभूतम्  
(अस्ति, यतः) महान् (अपि) द्युलोकस्तव बलमन्व-  
मंस्त, इयं पृथिवी च तव बलाय प्रह्नीषभूव ॥५॥

भाषार्थः ।

हे धनवाले ! हम आपके हैं, आप इस स्तोता  
की कामना को पूर्ण करो हे इन्द्र ! आपका बल  
बहुत (है क्योंकि) महान् द्युलोक ने (भी) आपके  
बल को माना है, और पृथिवी आपके बलके सामने  
झुकी है ॥ ५ ॥

अस्य	अस्य	इसकी
स्तोतुः	स्तोतुः	स्तोता की
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धनवाले
कामम्	अभिलाषम्	कामना को
आ	आ+	-
पृण	आ+पृण, पूरय	पूर्ण करो
अनु	अनु+	--
ते	तव	तेरे
द्यौः	द्युलोकः	द्युलोक ने
वृहती	महान्	महान
वीर्यम्	पराक्रमम्	पराक्रम को
ममे	अनु+ममे, अन्वमस्त	माना है .

वज्रेण	वज्रेण	वज्र से
वज्रिन्	हे वज्रिन्	हे वज्रधारी
पर्वऽशः	पर्वणि पर्वणि	प्रत्येक जोड़ में
चकतिथ	छेदितवान् (छनीछेदने)	काट डाला
अव	अव +	-
असजः	अव + असृजः, विसृष्टवान्	छोड़ा है
निऽवृताः	निरुद्धाः	रुके हुआँ को
सर्तवै	(अधः) गमनाय (सुगतौ तवै प्रत्ययः)	गिरने के लिए
अपः	अपः	जलों को
सुचा	वस्तुतः	सच मुच
विप्रवम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
दधिषे	धारितवानसि	तूने धारणकिया

इन्द्रो देवता जगती छन्दः १२।१२।१२।१२।

ह्वं॑ तमिन्द्र॑ पर्व॑तं म॒हामु॒रुं वज्रै॑ण-  
वज्रि॑न्पर्व॒शप्र॑च॒कर्ति॑थ । अवा॑सृजो-  
निवृ॑ताः स॒र्तवा॑ अपः स॒त्रावि॑श्वं दधि  
प्रे॒केव॑लं स॒हः । ६।

ह्वम्

त्वम्

तूने

तम्

तम्

उसको

इन्द्र

हे इन्द्र !

हे इन्द्र

पर्वतम्

वृत्रम्  
(निघं० १। १०)

वृत्र को

महाम्

महान्तम्  
(नकारतकारयोर्लोपा-  
श्छान्दसः)

महान को

उरुम्

विस्तीर्णम्

फैले हुए को

# ऋ० मं० १ सू० ५८ ।

नोधा ऋषिः ।

विनियोग—यह सूक्त अभिप्लवपदह के पाँधवें दिन आग्नि मावत शस्त्र में पड़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० उ० १।७।८)

पहले पाँच मंत्र प्रातरनुवाक में आग्नेय क्रतु के आश्विन शस्त्र सम्बन्धी जगतीछन्द में भी पढ़े जाते हैं (आ० श्रौ० सू० ४।१३।७)

इस सूक्त में अग्नि की महिमा और उन की भक्ति के फल का वर्णन है । जब यजमान अग्नि को यथाविधि स्थापन करके उन को होता ओर दूत रूप से वरचुका, तब उसके लिये क्लेश में पड़ना असम्भव है । अग्निही सूर्यरूपमें अन्तरिक्ष को प्रत्यक्ष करते हैं, वही यजमान के लिए देवताओं का पूजन करते हैं । उत्पन्न होतेही अग्नि-देव तृणआदि भोजनसे बल को प्राप्त करके काष्ठोंमें प्रवेश करते हैं, और घी से सींची हुई इस की चिकनी पीठ घोड़े की पीठ की न्याईं घमकती है यह अग्निदेव, वसु रुद्रआदि सब देवताओं के भग-वैया होकर यज्ञ में होता बन कर बैठते हैं, और जैसे प्रजाओं में राजा का रथ दौड़ कर सब से कर इकट्ठा करता है इसी प्रकार अग्निदेव मनुष्यों से उत्तम हवियों को प्राप्त करते हैं । जब अग्निदेव वायु से प्रेरित होकर वन में प्रवेश करते हैं, तो बड़ा शब्द करते हुए दरांती रूपी जिह्वाओं से सारे वन को भक्षण कर जाते हैं और जहाँ पहले वन था वहाँ एक काला रस्ता रह जाता है । गौओं में सांड की न्याईं जय अग्निदेव वन में पैरते हैं तब स्थावर और जंगम सब भयभीत होजाते हैं । देवताओं के इस सुखकारी मित्र और मनुष्यों के पूज्य भतिथि को भृगुओं ने एक सुन्दर धन के कोश की न्याईं मनुष्यों में स्थापन किया है । जिस अग्नि को सात अतिथि यज्ञ में बरते

केवलम्	अद्वितीयम्	अद्वितीय को
सहः	बलम्	बल को

संस्कृतार्थः

हे वज्रिन् ! इन्द्र ! त्वं तं विस्तीर्णं महान्तं वृत्रं पर्वणि पर्वणिच्छेदितवान् (तेन) निरुद्धा अपः (चाऽधो देशे) गमनाय विसृष्टवान्, वस्तुतः (त्वमेव) सर्व-मद्वितीयं बलं धारितवानसि ॥६॥

भाषार्थः ।

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपने फैले हुए उस महान वृत्र को प्रत्येक जोड़ में काट डाला (और उस से) रुके हुए जलों को गिरने के लिए छोड़ा सच मुच (आपने ही) सम्पूर्ण अद्वितीय बल को धारण किया हुआ है ॥ ६ ॥

इति सप्त पञ्चाशं सूक्तम् ।

नि	नि +	-
तुन्दते	नि + तुन्दते, व्यथयति	केश देना है
होता	होता	होता
यत्	यदा	जब
दूतः	दूत.	दूत
अभवत्	अभवत्	हुआ
विवस्वतः	परिचरतः (यजमानस्य)	यजमान का
वि	वि +	-
{ साधिष्ठे	समीचीनै	उत्तमों से
भिः	(निष्ठेतमायदृष्टादस)	
पथिऽभिः	मार्गैः	रस्तों से
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
ममे	वि + ममे, सा- क्षातकृतवान्	प्रत्यक्ष किया
आ	समन्तात्	चारों ओर से



क्र० मं० १ सू० १८ मं० १ ( १४१२ )

हैं इस धनके प्राप्त कराने वाले को पूज कर उस से रमणीय धन मांगने चाहियें । बल के पुत्र मित्रनन्दन भग्नि हमको छिद्र रहित शरण देवे और दृढ़ रक्षा करते हुए हम को पाप से बचावे भग्नि हमारे स्तोताओं और धनियों के आश्रय दाता हों स्तुति करने वाले को पापसे रक्षा करें और प्रातःकालमें शीघ्र नित्य अपने संघकों को प्राप्त हों ।

अग्निदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

नूचितसहोजाअमृतो नितुन्दते  
होतायदूतोअभवद्विवस्वतः । वि-  
साधिष्ठेभिःपृथिभीरजोमम् आदे-  
वताताह्विषाविवासति ॥ १ ॥

१ नु	किम्	क्या
१ चित्	खलु	सचमुच
सहःऽजाः	बलेन जातः	बल से प्रकट
अमृतः	मरणरहितः	हुआ २ मरण से रहित

नि	नि +	-
१ तुन्दते	नि + तुन्दते,	केश देता है
होता	व्यथयति	होता
यत्	यदा	जब
दूतः	दूतः	दूत
अभवत्	अभवत्	हुआ
विवस्वतः	परिचरतः (यजमानस्य)	यजमान का
वि	वि +	-
१ { साधिष्ठे	समीचीनैः	उत्तमों से
भिः	(मिश्रदेसभायदृष्टान्दसः)	
१ प्रधिष्ठिभिः	मार्गैः	रस्तों से
२ रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
ममे	वि + ममे, सा-	प्रत्यक्ष किया
आ	क्षात्कृतवान्	चारों ओर से
	समन्तात्	

देवताता	यजे (निघ० ३।१७) (विमकेडी)	यज्ञ में
हविषा	हविषा	हविसे
विवासति	परिचरति	सेवा करता है

संस्कृतार्थः ।

बलेनजातो मरण रहितः (अग्निः) व्यथयति किं खलु ? यदा (सः) होता (हविर्वहनाय) यजमानस्य दूतोऽभवत्, (स एव) समीचीनैर्मार्गैरन्तरिक्षं साक्षात्कृतवान् (स एव साम्प्रतमस्मद्) यजे (देवान्) समन्ताद् हविषा परिचरात् । १ ।

भाषार्थः ।

बल से प्रकट हुए मरण रहित (अग्नि) क्या सचमुच क्लेशकारी हो सकते हैं? जब (वह) होता (हवि पहुंचाने के लिए) यजमानके दूत बन चुके, उन्होंने ही उत्तम मार्गों से अन्तरिक्ष को प्रत्यक्ष किया, (वह ही अब हमारे) यज्ञ में (देवताओं की) चारों ओर हवि से सेवा करते हैं । १ ।

(१) जब अग्नि देव भरणि द्वारा मध्ये जाकर किसी यजमान के लिये देवताओं के पुराने घाले घन चुके, तो क्या यदि उस को ह्वे दे सके हैं ? अर्थात् सेवा होना असम्भव है ।

(२) अन्तरिक्ष को जो पूर्वकाल में अन्धेरे में था अग्नि ने ही भादि सृष्टि में प्रवेश करके प्रत्यक्ष किया, और वही सूर्य रूप में उस को अब भी प्रत्यक्ष करते हैं ॥

अग्निर्देवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

आस्वमद्भ्युवमानोअजरस्तुष्टव-

विष्यन्नतसेषुतिष्ठति। अत्योनि-

पृष्ठं प्रुषितस्यरोचते दिवीनसा

स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२॥

आ	आ +	-
स्वम्	स्वकीयम्	अपने को
अद्भ्य	अदनीयम्	भक्षण करने योग्य
यवमानः	अर्जयन् (मा०को०)	को इकट्ठाकरता हुआ
अजरः	जरारहितः	बुढ़ापे से रहित

तृषु	क्षिप्रम् (निघं० २।१५)	शीघ्र
अविध्यन्	भक्षयन् (निघं० २।८)	भक्षण करता हुआ
अतसेषु	काष्ठेषु (अत्राऽतसशब्दः का- ष्ठराची, 'अतसंन- शुष्कम्' इति आ० ४।४।४। दर्शनात्)	काष्ठों में
तिष्ठति	आ+तिष्ठति, आरोहति	चढ़ता है
अत्यः	अश्वः (निघं० १।१४)	घोड़ा
न	इव	जैसे
पृष्ठम्	पृष्ठम्	पीठ
पुष्टितस्य	स्निग्धस्य (प्रपस्नेहने)	चिकने की
रोचते	दीप्यते	चमकती है
दिवः	दुलोकस्य	दुलोक के
न	इव	जैसे

सानु	मस्तकम्	मस्तक को
स्तनयन्	शब्दयन्	गर्जाता हुआ
अचिक्रदत्	गम्भीरशब्द- मकरोत्	गम्भीर शब्द को किया है

संस्कृतार्थः ।

जरा रहितः (अयमग्निः) स्वकीयमदनीय-  
मर्जयन् क्षिप्रं भक्षयन् (च) काण्ठेऽवारोहति (घृतसेच-  
नेन) स्निग्धस्य (अस्य) पृष्ठमश्व इव दीप्यते  
(अयम्) द्युलोकस्य मस्तकं शब्दयन्निव गम्भीरशब्द  
मकरोत् । २ ।

भाषार्थः ।

बुढापे से रहित (यह अग्नि) अपने भोजन को  
इकट्ठा करके शीघ्र भक्षण करते हुए काण्ठों पर  
चढ़ते हैं (घी सींचनेसे) चिकनी हुई (इन) की पीठ  
घोड़े की न्याईं चमकती है (इन्होंने) द्युलोक के  
मस्तक को गर्जाते हुए की न्याईं गम्भीर शब्द को  
किया है । २ ।

भरणी द्वारा मथन किए जाने पर शुष्क गोमय या तृण आदि  
भोजन को खा कर अग्निदेव काण्ठों में प्रवेश करते हैं और जध

आ० मं० १ सू० ५८ मं० ३ ( १४६८ )

उन पर घी की आहुति डाली जाती है, तब अग्नि की पीठ घोड़े की पीठ की न्याई चमकती है ।

(२) अग्नि का गम्भीर शब्द को करना यजमान के लिये अथ ऋषि को सूचन करता है ।

अग्निर्देवता जगती छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥

क्रा॒णारु॒द्रेभि॒र्वसु॑भिः पुरो॒हितो॑

होता॒ निष॑त्तो रयि॒षाळ॑म॒र्त्यः । रथो॒-

न वि॒द्वच्च॑ज॒सान॒ आयु॑षु॒ व्यानु॑ष॒ग्वा-

र्या॑ दे॒वज॑टयवति । ३ ।

क्रा॒णारु॒द्रेभिः॑	कु॒र्वाणः॑ (निर्घ० धार)	करता हुआ
वसु॑भिः	रु॒द्रैः	रुद्रों से
पुरो॑ऽहि॒तः	वसु॑भिः	वसुओं से
	पुर॑स्कृतः	आगे किया हुआ

होता	होता	होता
निऽसत्तः	निपण्णः	वैठा हुआ
रयिषाट्	(शत्रु-)धनाना- मभिभविता	(शत्रुओं के) धनों को दबाने वाला
अमर्त्यः	मरण रहितः	मरण रहित
रथः	रथः	रथ
न	इव	की न्याई
विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
कृञ्जसानः	धावन् (भा०को०)	दौड़ता हुआ
आयुष	मनुष्येषु (निघ० २१३)	मनुष्यों में
वि	वि+	-
आनुषक्	सततम्	निरन्तर
वाट्या	वरणीयानि	वरने योग्यों को
देवः	देवः	देवः



च॒ष्ट॒र॒व॒ति॒

वि + ऋणवति  
प्राप्नोति  
निघं२।१४)

प्राप्त करता है

संस्कृतार्थः ।

(शब्दम्) कूर्वाणो रुद्रैर्वसुभिः ( च ) पुरस्कृतः  
( यज्ञशालायाम् ) निषण्णो होता ( शत्रु- ) धनानामभि-  
भविता मरण रहितः ( अग्निः- ) देवः प्रजासु रथ  
इव मनुष्येषु धावन् चरणीयानि ( हवींषि ) सततं  
प्राप्नोति ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

(शब्द को) करते हुए, रुद्र (और) वसुओं से भागे  
किये हुए, (यज्ञ शालामें) बैठे हुए होता ( शत्रुओं के )  
धनों को दवाने वाले (और) मरण रहित ( अग्नि), देव  
प्रजाओं में रथ की न्याईं मनुष्यों में दौड़ते हुए चरने  
योग्य (हवियों) को निरंतर प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

(१) जैसे प्रजाओं में राजा का रथ दौड़ता हुआ कर को लेता  
है इसी प्रकार अग्निदेव मनुष्यों से उत्तम उत्तम हवि को लेते हैं ॥

अग्निदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

वि॒वा॒त॒ज॒तू॒त॒ो॒अ॒त॒से॒षु॒ति॒ष्ठ॒ते॒ व॒था॑

जुहूभिः सृण्या तु विष्वाणि । तृषु यद-  
 ग्नेव निनो वषायसे कृष्णांत एम रुश-  
 दूर्मे अजर । ४१

वि	वि +	—
वातऽजुतः	वायुना प्रेरितः	वायु से प्रेरणा किया हुआ ..
अतसेषु	काण्डेषु	काण्डों में
तिष्ठते	वि + तिष्ठते, व्याप्नोति	फैल जाता है
वथा	अनायासेन	सहज से
जुहूभिः	जिह्वाभिः	जिह्वाओं से
सृण्या	दाग्ररूपाभिः (यवन इत्ययः)	दरांती रूपों से
तुविऽस्वनिः	महास्वनः	बड़े शब्द वाला
तृषु	क्षिप्रम्	शीघ्र

यत्	यदा	जत्र
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वनिनः	वनसम्बन्धिनो- वृक्षान्	वन के वृक्षों को
वृषऽयसे	वृषइवाऽऽचरसि	वैलकी न्याई आ- चरण करते हो
कृष्णम्	कृष्णवर्णः	काले रंगवाला
ते	तव	तेरा
एम	गमनमार्गः (आ०को०)	ज्ञाने का रस्ता
रश्मत्ऽजर्मे	हे दीप्तोर्मे !	हे चमकती हुई लहरों वाले
अजर	हे जरारहित !	हे बुढ़ापेसे रहित

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! वायुना प्रेरितो महास्वनः (भवान्)  
दात्ररूपाभिर्जिह्वाभिः काष्ठेष्वनायासेन व्याप्नोति,  
हे जरा रहित ! हे दीप्तोर्मे ! यदा (त्वम्) शीघ्रतया  
वनसम्बन्धिनो वृक्षान् (प्रति) वृषइवाऽऽचरसि

( तदा ) तत्र गमनमार्गः कृष्णवर्णः ( भवति ) ॥ ४ ॥

मापार्थः

हे अग्नि, वायु से प्रेरित हुए २ बड़े शब्द वाले ( आप ) दरांती रूप जिह्वाओं से सहज ही काष्ठों में फैल जाते हैं, हे बुढ़ापे से रहित ! हे चमकती हुई लहरों वाले ! जब आप शीघ्रता से घन के वृक्षों ( के-प्रति ) बैल की न्याड़ आचरण करते हो ( तब ) आप के चलने का रस्ता काले रंग वाला ( हो जाता है ) । ४।

इस मंत्र में ऋषि अग्नि की घन को जलाने की शोभा को देख रहे हैं । 'बुढ़ापे से' का यह तात्पर्य्य है कि जैसे साढ़ बैल गोमों में पैर जाता है, इसी प्रकार अग्निदेव वृक्षों में पैर जाते हैं । इसी बात को अगले मंत्र में स्पष्ट किया है ॥

अग्निदेवता जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२॥

तपु॑र्ज॒म्भो॒वन॒आवा॑त॒चीदि॑तो यू-

थेन॑सा॒ह्वा॒अव॑वा॒तिर्व॑संगः । अ॒भि॒व्र-

ज॒न्न॒क्षि॑तं॒पा॒ज॒सार॑जः स्था॒तु॒प्र॒च॒रथ॑

भय॑ते॒प॒त॒त्रि॒णः । ५।

तपुःऽजम्भः	तपूँपिज्वालाएव जम्भादन्तायस्य सः	ज्वालारूपी दांतों वाला
वने	वने	वन में
आ	समन्तात्	चारों ओर से
{ वातऽचो- दितः	वायुना प्रेरितः	वायु से प्रेरित हुआ २
यथे	(गो-) समूहे	[गोओं के] समूह में
न	इव	की न्याईं
सज्जान्	जयशाली (निपातनात्साधुः, ह्रस्वश्छान्दसः)	जीतने वाला
अव	अव+	-
वाति	अव+वाति, व्याप्नोति	पैरता है
वंसगः	वृषः	बैल
अभिऽव्रजन्	अभिमुखंगच्छन्	सामने जाता हुआ

अक्षितर्	अक्षीणम्	न छीजने वाले को
पाजसा	बलेन (निघ० २५९)	बल से
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
स्थातुः	स्थावरात्	स्थावर से
चरथम्	जङ्गम (पर्यन्तम्)	जङ्गम (पर्यन्त)
भयते	विभेति (व्यत्ययेनाऽऽमन पदम् इलोरभाष )	डरता है
पतत्रिणः	पतनवत.	उड़ने वाले से

संस्कृतार्थः ।

ज्वालारूपदन्तयुक्तो जयशालो (अग्निः) वायुना प्रेरित (सन् यदा) अक्षीणमन्तरिक्षं प्रति गच्छन् (गो) यूथे वृषड्व वने व्याप्नोति (तदा) पतनवतः (अस्मादग्ने) स्थावरात् (आरभ्य) जङ्गम-पर्यन्त सर्वभूतजातम् विभेति ॥ ५ ॥

मापार्यः ।

ज्वालारूप दातों से युक्त, जीतने वाले (अग्नि-देव) वायुसे प्रेरित(होकर जब) न छीजने वाले अन्त-

रिक्ष के प्रति बल से जाते हुए वन में पैरते हैं, जैसे बैल (गौओं के) समूह में (पैर जाता है) (उस समय) उड़ने वाले (इस अग्नि से) स्थावर से (लेकर) जंगम (तक सब प्राणी) डरते हैं ॥ ५ ॥

अग्नि का मयानक रूप वन को जलाते समय प्रतीत होता है।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

दधुष्ट्वाभृगवोमानुषेष्वा रयि-  
नचारुसुहवजनेभ्यः। हीतारमग्ने  
अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शैवं दिव्याय-  
जन्मने ।६।

दधुः	आ + दधुः, स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
त्वा	त्वाम्	तुझ को
भृगवः	भृगवः	भृगुओं ने
मानुषेषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में

आ	+आ	-
रयिम्	धनम्	धन को
न	इव	जैसे
चारुम्	शोभनम्	सुन्दर को
सुऽह्वम्	सुखेनाऽऽह्वातुं- शक्यम्	सहज से बुलाए जाने वाले को
जनेभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिये
होतारम्	होतारम्	होता को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अतिथिम्	अतिथिम्	अतिथि को
वरेण्यम्	वरणीयम्	वरने योग्य को
मित्रम्	मित्रम्	मित्र
न	इव	की न्याई
श्रेवम्	सुखकरम्	सुखदेने वाले को



दिव्याय	दिव्याय +	-
जन्मने	दिव्याय + जन्मने देवजातये	देवजातिके लिए

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मनुष्येभ्यो सुखेनाऽऽह्वातुं शक्यं होतारं  
वरणीयमतिथिं देवजातये मित्रमिव सुखकरं त्वां  
भृगवो मनुष्येषु शोभनं धनमिव स्थापितवन्तः ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! मनुष्यों के लिए सुख से चुलाए जाने  
वाले, होता, वरने योग्य अतिथि [और] देव जाति के  
लिए मित्रकी न्याईं सुखके देने वाले आपको भृगुओं  
ने मनुष्योंमें सुन्दर धनकी न्याईं स्थापन किया है ॥ ६ ॥

भृगुओं ने आर्यजाति में अग्नि को एक धन के कोश की न्याईं  
स्थापन किया है जिससे उनका ऐदम्य पूर्वकाल में सब जातियोंसे  
बढ कर रहा है ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

होतारं सप्तजुहोश्च यजिष्ठं यं वा घ-  
तो वृणते अष्टवरेषु । अग्निं विप्रवे प्रा-

मरति॑वसू॒नां स॒प॒ठ॒र्यामि॒प्रय॑सा॒यामि॒-

र॒त्न॑म् । ७ ।

हो॒ता॒र॒म्

हो॒ता॒र॒म्

हो॒ता को

स॒प्त

स॒प्त

सा॒त

जु॒ह्वः

आ॒ह्वा॒ता॒रः

बु॒झा॒ने वा॒ले

य॒जि॒ष्ठ॒म्

य॒ष्टृ॒न॒म॒म्

स॒ब से अ॒धि॒क  
पू॒ज॒ने वा॒ले को

य॒म्

य॒म्

जि॒स को

वा॒घ॒तः

ऋ॒त्वि॒जः  
(निघ० ३। १८)

ऋ॒त्वि॒ज

वृ॒ण॒ते

वृ॒ण॒व॒न्ति

व॒र॒ते हैं

अ॒ध॒व॒रेषु॑

य॒ज्ञे॒षु

य॒ज्ञों में

अ॒ग्नि॒म्

अ॒ग्नि॒म्

अ॒ग्नि को

वि॒श्वे॒षाम्

स॒र्व॒षाम्

स॒ब के

दिव्याय	दिव्याय+	-
जन्मने	दिव्याय+जन्मने देवजातये	देवजातिके लिए

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मनुष्येभ्यो सुखेनाऽऽह्वातुं शक्यं होतारं  
वरणीयमतिथिं देवजातये मित्रमिव सुखकरं त्वां  
भृगवो मनुष्येषु शोभनं धनमिव स्थापितवन्तः ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! मनुष्यों के लिए सुख से चुलाए जाने  
वाले, होता, वरने योग्य अतिथि [और] देव जाति के  
लिए मित्र की न्याईं सुख के देने वाले आपको भृगुओं  
ने मनुष्यों में सुन्दर धन की न्याईं स्थापन किया है ॥ ६ ॥

भृगुओं ने आर्यजाति में अग्नि को एक धन के कोश की न्याईं  
स्थापन किया है जिससे उनका पैदर्य पृथक्काल में सब जातियों से  
बढ़ कर रहा है ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

होतारं सप्तजुहोश्च जिष्ठं यं वाघ-  
तो हृणते अघ्वरेषु । अग्निं विप्रवेपा-

अन्न से मैं सेवा करता हूँ (और) रमणीय धनको मांगता हूँ । ७ ।

(१) सात होता सृष्टिज मर्यात् होता, मैत्रावरुण, भच्छावाक, ब्राह्मणाच्छसी, आग्नीध्र, पोता और नेप्ता ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

अ॒च्छि॒द्रा॒सू॒नो॒स॒ह॒सो॒नो॒अ॒द्य॒ स्तो॒-

तृ॒भ्यो॒मि॒त्र॒म॒हः॒श॒र्म॒य॒च्छ॒ । अ॒ग्ने॒

ग॒ण॒न्त॒मं॒ह॒स॒उ॒रु॒ष्यो॒ जौ॒न॒पा॒त्पू॒र्भि-

रा॒य॒सी॒भिः॒ । ८ ।

अ॒च्छि॒द्रा	छिद्ररहितम् (विमकेराद्यम्)	छिद्ररहित को
स॒नो॒	हे पुत्र !	हे पुत्र
स॒ह॒सः	बलस्थ	बलके
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई

अरतिम्	प्रापयितारम् (कप्रापणे-औणादि- कोऽतिप्रत्ययः)	प्राप्त कराने वाले को
वसूनाम्	धनानाम्	धनों के
सपठ्यामि	परिचरामि	में सेवा करता हूँ
प्रयसा	[हवी रूपेण] अन्नेन	[हवि रूप] अन्नसे
यामि	याचामि (घर्णलोपदृष्टाम्दसः)	मांगता हूँ
रत्नम्	रमणीयं धनम्	रमणीय धन को

संस्कृतार्थः ।

आह्वातारः सप्तर्षिजो यज्ञेषु यष्टृतमं होतारं  
यमग्निं वृण्वन्ति सर्वेषां धनानां प्रापयितारम् [तमहं-  
हवीरूपेण] अन्नेन परिचरामि रमणीयं धनम् (च)  
याचामि ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

बुलाने वाले सात ऋषिज यज्ञों में सब से  
अधिक पूजने वाले जिस होता अग्नि को घरते हैं  
सब धनों के प्राप्त कराने वाले (उस की हविरूप)

पूऽभि	रक्षाभिः	रक्षाओं से
आयसीभिः	लोहमयीभिः, दृढाभिरित्यर्थः	दृढ़ों से

संस्कृतार्थः ।

हे बलस्य पुत्र ! हे मित्रनन्दन ! हे अग्ने !  
अद्याऽस्मभ्यं स्तोतृभ्यश्छिद्रराहतं शरणं देहि,  
हे बलस्य पुत्र ! स्तुवन्तम् (माम्) दृढाभीरक्षाभिः  
पापाद्रक्ष ॥८॥

भाषार्थः ।

हे बल के पुत्र ! हे मित्रों को आनन्द देने वाले  
हे अग्नि ! आज हम स्तोताओं के ताई छिद्र रहित  
शरण को दीजिए, हे बल के पुत्र ! स्तुति करते हुए  
मुझ को दृढ़ रक्षाओं के द्वारा पाप से बचाइये ॥ ८ ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

भवावरूयंगुणतेविभावो भवाम-  
घवन्मघवद्भ्यःशर्म । उरुप्याग्ने  
अहसोगुणन्तं प्रातर्मक्षुधियावसु-  
र्जगम्यात् । ९।

अद्य	अद्य	आज
स्तोतृभ्यः <sup>१</sup>	स्तोतृभ्यः	स्तोताओं के ताई
मित्रमहः	हे मित्रनन्दन !	हे मित्रों को आ- नन्द देने वाले
शर्म <sup>१</sup>	शरणम्	शरण को
यच्छ	देहि	दीजिए
अग्ने <sup>१</sup>	हे अग्ने !	हे अग्नि
गृणन्तम् <sup>१</sup>	स्तुवन्तम्	स्तुति करतेहुएको
अंहसः <sup>१</sup>	पापात्	पाप से
उरुष्यं <sup>१</sup>	रक्ष (उरुष्यतीरक्षाकर्मैति- यास्काः, निरु०५।२३)	बचाओ
ऊर्जः <sup>१</sup>	बलस्य	बलको
नपात्	हे पुत्र !	हे पुत्र

पूऽभि	रक्षाभिः	रक्षाओं से
आयसीभिः	लोहमयीभिः, दृढाभिरित्यर्थः	दृढ़ों से

संस्कृतार्थः ।

हे बलस्य पुत्र ! हे मित्रनन्दन ! हे अग्ने !  
अद्याऽस्मभ्यं स्तोतृभ्यश्छिद्रराहितं शरणं देहि,  
हे बलस्य पुत्र ! स्तुवन्तम् (माम्) दृढाभीरक्षाभिः  
पापाद्रक्ष ॥८॥

भाषार्थः ।

हे बल के पुत्र ! हे मित्रों को आनन्द देने वाले  
हे अग्नि ! आज हम स्तोताओं के ताई छिद्र रहित  
शरण को दीजिए, हे बल के पुत्र ! स्तुति करते हुए  
मुझ को दृढ़ रक्षाओं के द्वारा पाप से बचाइये ॥ ८ ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

भवावरू॑यंगुण॑तेविभावो भवाम-  
घवन्म॑घवद्भ्यः॑ शर्म॑ । उरू॑ण्याऽग्ने  
अ॒ह॑सो गुण॑न्तं प्रा॒तर्म॑क्षूधियाव॑ सु-  
र्जग॑म्यात् । ९।



भव	भव	तू हो
वरूथम्	गृहम्, आश्रय इत्यर्थः निघण्(३१४)	आश्रय
गुणते	स्तुक्ते	स्तोताके लिए
विभाऽवः	हे प्रकाश युक्त !	हे प्राकक्ष वाले
भव	भव	तू हो
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धनवाले
{ मघवत् ऽभ्यः	धनवद्भ्यः	धनवानोंके लिये
शर्म	शरणम्	शरण
उरूथ	रक्ष	वचाये
अग्ने	हे अग्ने !	हे आग्न
अंहसः	पापात्	पाप से

गणन्तम्	स्तुवन्तम्	स्तुति करते हुए को
प्रातः	प्रातःकाले	प्रातःकाल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यान द्वारा धन
जगम्यात्	आगच्छतु (शपःइत्युः)	प्राप्त हो वाला

संस्कृतार्थः :

हे प्रकाशयुक्त ! ( त्वम् ) स्तुवत आश्रयोभव हे धनवान् ! धनवद्भ्यः शरणं भव, हे अग्ने ! स्तुवन्तम् ( माम् ) पापाद्रक्ष, ध्यानेन धनवान् ( भवान् ) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ ९ ॥

भाषार्थः । .

हे प्रकाश से युक्त ! आप स्तोताके लिए आश्रय हों हे धनवाले ! आप धनवानों के लिए शरण हों हे अग्नि ! आप ( मुझ ) स्तोता को पापसे बचार्थे ध्यान से धन वाले ( आप ) प्रातःकाल में शीघ्रप्राप्त हों ॥ ९ ॥

(१) अग्नि देवता को मनुष्यों की न्याई धन के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं है वह ध्यान मात्र से धन को प्राप्त करने वाले हैं ॥

## इत्यष्टपञ्चाश सूक्तम्

11

# अ० मं० १ सू० ५६

## नोधा ऋषिः ।

धिनियोग—दूसरा मन्त्र अर्थात् "मूर्धा दिवो" इत्यादि सत्र के विपुलत दिन में अग्नि मास्त शस्त्र में स्तोत्रियानुरूप है—(भा०श्री० सू० उ० १ । ६ । २३) अर्थात् स्तोत्रिय तुल्य के पीछे पड़ा जाता है ॥

इस सूक्त में भी अग्नि की स्तुति है—पाथिव अग्नि से अन्य जो अग्नियाँ हैं वे सब इसी की शाखा हैं, यही अग्नि वैश्वानर रूप में मनुष्यों को सहारे हुए है, पृथ्वी के मस्तक स्थानीय जो सूर्य भगवान् हैं वह भी अग्नि हैं पृथिवी के गर्भ में भी यही अग्नि हैं ऐसे अग्नि देव की देवताओं ने भार्य के लिए ज्योतिरूप बनाया है और देवताओं ने सब धन अग्नि में स्थापन किये ॥ जो धन पर्वतों में, भीपथियों में, जलों में, और मनुष्यों में है उन सब धनों को अग्नि राजा हैं ऐसे सच्चे बली वैश्वानर अग्नि के तार्द महान् स्तुतियाँ उच्चारण करो, अग्नि देव मनुष्य मात्र के राजा हैं और देवताओं की समृद्धि के कारण भी यही हैं इन्होंने धृष्ट को मार कर दिशाओं को कम्पाया और शम्बर को छिन्न भिन्न किया, मनुष्य मात्र के स्वामी भगद्वाजों के पूज्य वैश्वानर अग्नि शतवनि के पुत्र राजा पृथ्वीपते कुल ॥ सत्रों स्तुति से स्तुति किये जाते थे ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः॥११॥११॥११॥११॥

व॒या इ॒द॒ग्ने अ॒ग्नय॑स्ते अ॒न्ये त्वे  
वि॒श्वे अ॒मृता॑मादयन्ते । वै॒श्वान॑रं  
नाभि॑रसिद्धिती॒नां स्थू॒र्णैर्व॒ज्रना॑उ-  
प॒मिद॑यन्थ ॥१॥

व॒याः	शाखाः (वास्क०)	शाखा
इ॒त्	एव	ही
अ॒ग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अ॒ग्नयः॑	अग्नयः	अग्नियां
ते	तव	तेरी
अ॒न्ये	अन्ये	और
त्वे०	त्वयि	तुझ में

विभवे	सर्वे	सब
अमृताः	मरण रहिताः	मरण रहित
मादयन्ते	हृष्यन्ति	हर्षित होते हैं
वैभवानर	विश्वेषु नरेषु भव- स्तत्सम्बुद्धौ (सवार्थभण्)	हे सब मनुष्यों में होने वाले
नाभिः	नाभिः	नाभि
असि	असि	तू है
क्षितीनाम्	मनुष्याणाम् (निर्घ० २३३)	मनुष्यों का
स्थूणा इव	(गृह-) स्तम्भ इव	(घरके) खंभे की न्याई
जनान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
उपमित्	निखातः	गड़े हुए
ययन्थ	आधारयः (यमउपपत्ते)	सहारा है

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! अन्येऽग्नयस्तव शाखा एव (सन्ति)

त्वयि सर्वे मरणरहिताः (देवाः) हृष्यन्ति हे वैश्वानर !  
 (त्वम्) मनुष्याणां नाभिरसि (त्वंमेव) निखातः (गृह-)  
 स्तम्भ इव मनुष्यान्धारयः ॥१॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि, और अग्नियां आपकी शाखा ही हैं  
 आपके कारण मरण रहित सब (देवता) हर्षित हैं,  
 हे सब मनुष्यों में होने वाले ! आप मनुष्यों के नाभि  
 हैं, गड़े हुए (घर के) खंभे की न्याईं आप (ही) मनुष्यों  
 को सहारे हुए हैं ॥१॥

और अग्निया जैसे मनुष्यमादि जीवों में रहने वाली, सूर्य और  
 पृथिवी के गर्भ में रहने वाली, अन्तरिक्ष और तारागण में रहने  
 वाली इत्यादि सब अग्निया पाथिय अग्नि की ही शाखा हैं, सब  
 देवता अग्नि के कारण हर्षित हैं, जैसे चन्द्रमा की छवि का कारण,  
 वायु के वेग का कारण और नदिया के खोंखाट का कारण भी सूर्य  
 की किरणें हैं, जो समुद्र से जल को उठा कर पर्वत पर गिराती हैं  
 इसी प्रकार आकाश में तारागण की प्रभा के और पृथिवी में वृक्ष,  
 पशु, पक्षी, और मनुष्या की सम्पूर्ण चेष्टाओं के कारण अग्नि हैं  
 मनुष्य का जीवन उस क भीतर रहने वाले वैश्वानर अग्नि पर ही  
 निर्भर है, जैसे घर की छत खम्भों पर निर्भर होती है ॥

वैश्वानरोऽग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्द १११ १११ १११ १११

सूर्धादिवोनाभिरग्निः पृथिव्या

अथा॑भवद॒र॒ती॒रोद॑स्योः । तं॒त्वा॑दे॒-  
वा॒सोऽ॑जनयन्तदे॒वं वै॒श॒वा॑न॒र॒ज्योति॑  
रिदा॒ठ्या॑य । २ ।

मूर्धा	मूर्धा	मस्तक
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक का
नाभिः	नाभिः	नाभि
अग्निः	अग्निः	अग्नि
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी का
अथ	अनन्तरम्	पीछे
अभवत्	अभवत्	हुआ
अरतिः	अधिपतिः	स्वामी

रोदस्योः	द्यावापृथिव्योः	घौ और पृथिवी का
तम्	तम्	उसको
त्वा	त्वाम्	तुझ को
देवासः	देवाः (असोऽसुगामः)	देवताओं ने
अजनयन्त	उत्पादितवन्तः	उत्पन्न किया
देवम्	दीप्यमानम्	दीप्तिमान को
वैश्वानर	हे वैश्वानर !	हे सब मनुष्यों में होने वाले
ज्योतिः	ज्योतिः	ज्योति को
इत्	(पूरणः)	-
आठर्याय	आर्घ्याय	आर्घ्य के लिए

संस्कृतार्थः ।

बुलोकस्य मूर्धापृथिव्या नाभिः (चाप्यमग्निः)

अनन्तरं द्यावापृथिव्योरधिपतिरभवत्, हे वैश्वानर ।



तं दीप्यमानं त्वां देवा आर्याय ज्योतीरूपमुत्पा-  
दितवन्तः ॥२॥

भाषार्थः ।

इस के अनन्तर धुलोक के मस्तक (और)  
पृथिवी के नाभि (यह अग्नि) धौ और पृथिवी  
के स्वामी बने, हे सब मनुष्यों में होने वाले, उस  
दीप्तिमान् आपको देवताओं ने आर्य के लिये  
ज्योति रूप उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

अग्नि सूर्यरूप में धुलोक के मस्तक हैं और पृथिवी के गर्भ  
में रहने से पृथिवी के नाभि या केन्द्र हैं, चाया पृथिवी के शासक  
भी अग्निदेव ही हैं क्योंकि पृथिवी पर जो कुछ होता है उस का  
कारण भूगर्भअग्नि या सूर्य की किरणें ह इसी प्रकार आकाश में  
भी जो कुछ घटनाएं होती हैं जैसे आंधी, चर्चा, धंध इत्यादि सब  
का हेतु अग्नि है इस लिये आकाश के शासन कर्ता भी अग्नि हैं ॥

आर्य के लिये देवताओं ने अग्नि को ज्योतिरूप बनाया, अर्थात्  
आर्यों की सारी उन्नति और सभ्यता परमात्माको अग्नि या ज्योति  
रूप में मनन और पूजन करने से हुई है ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

आसू०र्ये०नर०प्रमयो०ध्रु०वासो०वैप्र०वा-

न०रेद०धिरे०ग्नावसू०नि० । यापर्व०ते०ष्वो-

प्रधी॑ष्वप्सु यामा॑नुषे॒ष्वसि॒तस्य॑-

राजा ।३।

आ	आ +	-
सूर्ये	सूर्ये	सूर्य में
न	इव	जैसे
रश्मयः	किरणाः	किरणें
ध्रुवासः	निश्चलाः	निश्चल
वैश्वानरे	वैश्वानरे	वैश्वानर में
दधिरे	आ + दधिरे, स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
अग्ना	अग्नौ	अग्नि में
वसूनि	(सूपामिति विमल्लोड्) धनानि	धनों को
या	यानि (शेर्लोपः)	जो

पर्वतेषु	पर्वतेषु	पर्वतों में
ओषधीषु	ओषधीषु	ओषधियों में
अप्सु	अप्सु	जलोंमें
यानि	यानि	जो
मनुष्येषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
असि	असि	तू है
तस्य	तस्य	उसका
राजा	राजा	राजा

संस्कृतार्थः ।

(देवाः) वैश्वानरेऽग्नौ सूर्ये निश्चलाः किरणा इव  
धनानि स्थापितवन्तः (हे अग्ने ! ) यानि (धनानि)  
पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु यानि(च) मनुष्येषु(विद्यन्ते) तस्य  
(धनसमूहस्य त्वमेव) राजाऽसि ॥३॥

माषार्थः ।

(देवताओं ने) सूर्य में निश्चल किरणों की  
न्याई वैश्वानर अग्नि में धनों को स्थापन किया है

(हे अग्नि) जो (धन) पर्वतों में ओषधियों में जलों में (और) जो मनुष्यों में (विद्यमान हैं) आप(ही) उनके राजा हैं । ३॥

जो सब धनों के राजा हैं उन्हीं से सब धन मांगने चाहियें ।

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

बृ॒ह॒ती॒ऽ॒व॒सू॒न॒वे॒रो॒द॒सी॒ गि॒री॒हो॒-  
ता॒म॒नु॒ष्यो॒ऽ॒न॒द॒क्षः॒ । स्व॒र्व॒ते॒स॒त॒य-  
शु॒ष्मा॒य॒पूर्वो॒ वै॒श्वान॒रा॒य॒नृ॒त॒मा॒य-  
य॒क्षीः॒ । ४॥

बृ॒ह॒ती॒ऽ॒व॒	महत्याविव	बड़ों की न्याई
सू॒न॒वे॒	पुत्राय	पुत्र के लिए
रो॒द॒सी॒	यात्राप्रयियों	दुलोक और
गि॒रः॒	स्तुतयः	पृथिवी
		स्तुतियां

हीता	होता	होता
मनुष्यः	मनुष्यः	मनुष्यः
न	इव	की न्याई
दक्षः	कर्मकुशलः	कार्य में चतुर
स्वऽवते	ज्योतिष्मते	प्रकाश वाले के लिए
{ सत्यऽशु-	सत्यबलाय	सच्चे बली के लिए
{ ष्माय		
पूर्वीः	पुरातनीः	प्राचीनों को
वैश्वानराय	वैश्वानराय	वैश्वानर के लिए
नऽत्तमाय	नरोत्तमाय	सर्वोत्तम नर के लिए
यक्षीः	महतीः	महानों को

(निघ० ३३)

संस्कृतार्थः ।

महर्षौ यावापृथिव्याविव (तयोः) पुत्राय स्तुतयः

(अपि महत्यः सन्ति, सः) होता (अग्निः) मनुष्य इव  
कर्म कुशलः (अस्ति) ज्योतिष्मते सत्यबलाय नरो-  
त्तमाय(तस्मै) वैश्वानराय पुरातनीर्महतीः (स्तुतीः  
कुरुत) ॥ ४ ॥

मापार्थः ।

महान् धावापृथिवी की न्याई (उनके) पुत्र के  
लिये स्तुतियाँ (भी महान हैं वह) होता (अग्नि) मनुष्य  
की न्याई कर्म में चतुर ( हैं ) प्रकाश वाले, सच्चे-  
बली सर्वोत्तम नर (उस) वैश्वानर के लिए प्राचीन  
और महान (स्तुतियों को करो) ॥४॥

जैसे धावापृथिवी महान हैं वैसे ही उनके पुत्र अग्नि के  
लिये स्तुतियाँ भी महान हैं मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त अधिक  
महान होनेपर भी अग्नि देवताओं के लिए होतृकर्म को मनुष्य होता  
की न्याई चतुराई से करते हैं, उन्हीं नरोत्तम सच्चे बली वैश्वा-  
नर अग्नि के लिये प्राचीन अर्थात् वेद विहित और महान स्तुतियाँ  
का उच्चारण करना चाहिये ।

वैश्वानरोऽग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११११

दिव॑भि॒च॒त्ते॒ष्ट॒ह॒तो॒जा॒त॒वे॒दो॒ वै॒श्व॒वा-  
नर॑प्र॒रि॒रि॒चे॒म॒हि॒त्त्व॒म् । राजा॑कृ॒ष्टो-

नामसिमानुषीणां युधादेवेभ्योवरि-  
वप्रचकर्त्त ॥५॥

दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
चित्	अपि	भी
ते	तव	तेरी
बृहत्तः	महतः	महान से
जातऽवेदः	हेजातानां वेदितः!	हे उद्यन्त हुआंके जानने वाले
वैश्वानर	हे वैश्वानर !	हे सब मनुष्यों में होने वाले
प्र	प्र +	-
रिरिचे	प्र+रिरिचे, ववृधे	बढी
महिऽत्वम्	महत्त्वम्	महिमा
राजा	राजा	राजा

कृ॒ष्टी॒नाम्	प्र॒जा॒नाम् (निघं०२।१)	प्र॒जाओं का
अ॒सि॒	अ॒सि	तू है
मा॒नु॒षी॒णाम्	म॒नो॒र्जा॒ता॒नाम्	मनु से उत्पन्न हुई का
२ यु॒धा	यु॒द्धेन	युद्ध से
दे॒वे॒भ्यः	दे॒वे॒भ्यः	देवताओं के लिये
व॒रि॒वः	ध॒नम् (निघं०२।१०)	धन को
च॒क॒र्त्थं	कृ॒त॒वान्	किया

संस्कृतार्थः ।

हे जातानावेदितः ! हे वैश्वानर ! तव महत्त्वं  
महतो द्युलोकादपि ववृधे (त्वम्) मनोर्जातानां प्रजानां  
राजाऽसि (त्वम्) युद्धेन देवभ्यो धनम् (प्रादुः) कृत-  
वान् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे उत्पन्न हुआओं के जानने वाले ! हे सब मनुष्यों  
में होने वाले ! आपकी महिमा महान द्युलोक से भी  
घड़ी हुई है आप मनु से उत्पन्न हुई प्रजाओं के



राजा हैं, आपने युद्ध से देवताओं के लिए धन को उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

(१) अग्निदेव मनुष्य मात्र के राजा है, वह राजाओं के भी राजा हैं इसलिये हमारी राजनिष्ठा अग्नि में ही होनी चाहिये ।

(२) जो वृत्र के साथ इन्द्र के युद्ध हैं, वे अग्नि के भी हैं जैसे अगली ऋचा में स्पष्ट वर्णन किया है, क्योंकि जो कुछ अन्तरिक्ष में प्रियुत शक्ति का प्रभाव है उस का हेतु सूर्य की अग्नि ही है, इसलिए वृत्र से जलों को छुड़ा कर पृथिवी पर गिराना और उस के द्वारा देवताओं के हर्ष के हेतुरूप सोम, और हवि रूप अन्नमादि को उत्पन्न करना अग्नि का ही कर्म है ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुच्छन्दः ।११।११।११।११

प्र॒नू॒म॒हि॒त्त्वं॒वृ॒ष॒भ॒स्य॒वो॒चं॒ यं॒पर॒वो॒-

वृ॒त्र॒हृ॒णं॒स॒च॒न्ते॒ । वै॒श्व॒ान॒रो॒द॒स्यु॒म॒-

ग्नि॒र्ज॒घ्न॒न्ना॒ अधू॒नी॒त्का॒ष्ठा॒अ॒व॒श॒-

स्व॒रं॒भेत् ।६।

प्र	प्र+	-
न	इदानीम् (मा०को०)	अव

महिऽत्वम्	महत्त्वम्	महिमा को
वृषभस्य	नरश्रेष्ठस्य	नर श्रेष्ठ की
वोचम्	प्र+वोचम्, प्रव्रवीम (अड्येक्षुड्, अडभाव)	वर्णन करता हूँ
यम्	यम्	जिसको
पूरवः	मनुष्या. (निघ० २।३)	मनुष्य
वृचऽहनम्	वृत्रस्यहन्तारम्	वृत्र के मारने वाले को
सचन्ते	सेवन्ते	सेवन करते हैं
वैश्वानरः	वैश्वानरः	वैश्वानर
दस्युम्	चौरम्	चोर को
अग्निः	अग्निः	अग्नि ने
जघन्वान्	हतवान्	मारा

अधूनीत्	अकम्पयत्	कंपाया
काण्ठाः	दिशः (निघं० ११६)	दिशाओं को
श्व	अव+	—
शम्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को
मेत्	अव+भेत्, व्यदा- रयत्	चीर डाला

संस्कृतार्थः ।

‘इदानीम् (अहम्) नरश्रेष्ठस्य महत्त्वं प्रब्रवीमि,  
वृत्रस्य हन्तारं यं मनुष्याः सेवन्ते, (सः) वैश्वानरो-  
ऽग्निः (जलानाम्) चौरं हतवान् दिशोऽकम्पयत्, शम्ब-  
रम् (च) व्यदारयत् ॥ ६ ॥

माथार्थः ।

अब मैं नरों में श्रेष्ठ की महिमा का वर्णन करता  
हूँ, वृत्र के मारने वाले जिस को मनुष्य सेवन  
करते हैं, (उस) वैश्वानर अग्नि ने (जलों के) चोर  
को मारा, दिशाओं को कंपाया (ओर) शम्बर को चीर  
डाला ॥ ६ ॥

शम्बर भी वृत्र का ही नामान्तर है (देखो निघं० १११०)  
एही जलों का चोर है, जिस के साथ विघ्न रूप में युद्ध करके  
मग्निदेव जलों को छुड़ा कर नीचे गिराते हैं ।

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

वैश्वानरो महिम्नाविश्वक्कष्टि-

भरद्वाजेषु यजतो विभावा । शातवने-

येशतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सु-

नृतावान् ॥७॥

वैश्वानरः	वैश्वानरः	वैश्वानर
महिम्ना	महिम्ना	महिमा से
{ विश्वऽ	विश्वेसर्वे कृष्टयो	सब मनुष्य जिस
{ कष्टिः	मनुष्याः यस्य सः	के हैं
{ भरत्ऽ	भरद्वाजेषु	भरद्वाजों में
{ वाजेषु		
यजतः	यष्टव्यः	पजनीय

विभाऽवा	विशेषेण प्रकाश- यिता	खूब प्रकाश करने वाला
शातऽवनेये	शतवनेः पुत्रे	शतवनि के पुत्रमें
श्रुतिनीभिः	शतैः (स्तोत्रैः) (यतशब्दादिनिस्ततो- डीप्)	सैंकड़ों (स्तोत्रों) से
अग्निः	अग्निः	अग्नि
पुरुऽनीथे	पुरुणीथे (राजनि)	पुरुणीथ (राजा) में
जरते	स्तूयते (अत्ययेन कर्मणि नृत् प्रत्ययः)	स्तुतिकिया जाता है
नृताऽवान्	प्रियसत्यवाण्या- युक्तः	प्यारी और सच्ची वाणी से युक्त

संस्कृतार्थः ।

(निज-) महिम्ना सर्वेषां मनुष्याणामधिपतिर्वि-  
भरद्वाजेषु यष्टव्यः प्रियसत्यवा  
वैश्वानरोऽग्निः शातवनेध पुरुणीथस्य कुले  
(स्तोत्रैः) स्तूयते ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

(अपनी) महिमा से सब मनुष्यों के स्वामी,

खूब प्रकाश करने वाले, भरद्वाजों में पूजनीय, प्यारी और सच्ची वाणी से युक्त वैश्वानर अग्नि, शनवनि के पुत्र (राजा) पुरुणीध (के कुल) में सैंकड़ों (सन्तानों) से स्तुति किये जाते हैं ॥ ७ ॥

भरद्वाजगोत्र और शनवनि के पुत्र राजा पुरुणीध के कुल में भग्नि की विशेष भक्ति थी ऐसा इस मंत्र से प्रतीत होता है ॥

इत्येकोनपष्टितम सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू०६० ।

नोधऋषिः

विनियोग—यह सूक्त प्रातरनुवाक सम्वन्धी आग्नेयजतु के आदिवन शास्त्र में पढ़ा जाता है (भा०श्री० सू० ४।१।१७)

इस में नी अग्नि की स्तुति है। मातरिद्या अर्थात् धातु में आर्यों के नेता, यज्ञ के पति और भरणियों से उत्पन्न हुए अग्नि को भृगु के तारों में डाल दिया। मेधावी और हवि देने वाले, दोनों प्रकार के मनुष्य भग्नि का सेवन करते हैं। यह देवता पुराण से भी प्राचीन, देवहोता, प्रजा के पालक और अन्वेषण करने के योग्य है। जिस अग्नि को मनुष्य ऋत्विज भरणीद्वारा अन्न से उत्पन्न करते हैं उसका हमारी यह नवीन स्तुति प्राप्त हो। मनुष्यों में प्रेम रखने वाले पवित्रकारक धनवान और करने योग्य वह अग्नि हमारे घरों में स्थापन किए गए हैं। यह घर में आसक्त मन वाले हैं और हमारे धन के पालन करने वाले हैं। धनों के स्वामी इस अग्नि को घोड़े की न्याईं स्वच्छ करते हुए हम गोतमवशी मंत्रों से स्तुति करते हैं वह शीघ्र प्रातः काल में हमारे पास आवें।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

वक्त्रि॑य॒शसं॑वि॒दथ॑स्यके॒तुं सु॑-

प्रा॒व्यं॑दू॒तं॑सं॒द्योअ॑र्थम् । द्वि॒जन्॑भा॒नं॑र-

यि॒मिव॑प्र॒शस्तं॑ रा॒तिंभ॑र॒द्भुग॑वेमा-

त॒रि॒श्व॑वा । १ ।

वक्त्रि॑म्	नेतारम्	नेता को
य॒शस॑म्	यशस्विनम् (विनीक्षुषः)	यशस्वी को
वि॒दथ॑स्य	यज्ञस्य	यज्ञ के
के॒तुम्	अधिपतिम् (चा०को०)	स्वामी को
सुप्र॑ऽअ॒व्यम्	प्रकर्षणरक्षितारम्	खूब रक्षा करने
दू॒तम्	दूतम्	वाले को दूत को

सद्यःऽअर्थम्	तत्क्षणे गन्तारम् (सद्य एव चर्यो गन्ता तम्, येतोऽकत्तरियन् प्रश्ययः)	तत्काल पहुंचने वाले को
{ द्विऽजन्मा नम्	द्वाभ्याम् (अरणि भ्याम्) जायमानम्	दोनों (अरणियों) से उत्पन्न होने वाले को
रयिम्ऽद्वय	धनमिव	धन की न्याई
प्रऽशस्तम्	प्रशस्तम्	प्रशंसनीय को
रातिम्	उपहारम्	भेट को
भरत्	अहरत् (हस्यमत्वमदभावश्च)	ले गया
भृगवे	भृगवे	भृगु के ताई
मातरिष्वा	मातरिष्वा	मातरिष्वा

संस्कृतार्थः।

नेतारं यशस्विनं यज्ञस्याऽधिपतिं प्रकुर्येणरक्षितारं  
श्रीभगामिनं दूतं द्वाभ्याम् (अरणिभ्याम्)



अ० मं० १ सू० ६० मं० २ ( १५०८ )

धनमिव प्रशस्तम् ( चाग्निम् ) मातरिश्वा भृगव-  
उपहारमहरत् ॥१॥

भाषार्थः ।

नेता, यशस्वी, यज्ञ के स्वामी शीघ्रगामी, दूत,  
दोनों (अरणियों) से उत्पन्न होने वाले (और) धन  
की न्याईं प्रशंसनीय (अग्नि) को मातरिश्वा भृगुके  
ताई भेट ले गया । १ ॥

यहां पर आदिमातरिश्वा से तात्पर्य नहीं होसका जिस  
का वर्णन पृ० ६९७ में है, परन्तु अन्तरिक्ष में इवास लेने वाले वायु  
से होसका है; धन में वायु के चलने के कारण यास आदि वृक्षों की  
परस्पर रगड़ से अग्नि की उत्पत्ति को देख कर भृगु ऋषि ने  
अरणियों में से अग्नि को मथन करके निकाला और उसको देव-  
पूजन के लिए स्थापन किया, इसलिये यह कहा गया है कि धन  
की न्याईं प्रशंसनीय इस अग्नि को वायु ने भृगुके ताई भेट किया ।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

अस्य॑शास॒रु॒भया॑सः॒सच॑न्ते ह॒वि-  
ष्म॑न्त॒उ॒ग्नि॒जो॒येच॒मर्ताः॑ । दि॒वश्चि॒त्र-  
त्पूर्वो॑न्यसादि॒होता॑ ऽऽपृ॒च्छयो॑वि-  
प्र॒पति॑र्वि॒क्षुवे॒धाः । १२ ।

अस्य .	एतम् (द्वितीयार्थेपठ्ठी)	इसको
शासुः	शासितारम् (द्वितीयार्थेपठ्ठी)	आज्ञा करने वाले को
उभयासः	उभये (भसुगागमः)	दोनों
सचन्ते	सेवन्ते	सेवन करते हैं
हविष्मन्तः	हविर्भिर्युक्ताः	हवियों से युक्त
उशिजः	मेधाविनः (निघ० १३।१५)	मेधावी
ये	ये	जो
च	च	और
मर्ताः	मनुष्याः	मनुष्य
दिवः	दुलोकात्	दुलोक से
चित्	अपि	भी
पूर्वः	पुरातनः	प्राचीन

नि	नि +	-
असादि	नि + असादि, न्यधायि	स्थापन किया गया
होता	होता	होता
आपृच्छयः	अन्वेष्टव्यः	खोजने योग्य
विप्रपतिः	प्रजानांपालयिता	प्रजाओंका पालन करने वाला
विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
वेधाः	विधाता	रचने वाला

संस्कृतार्थः ।

शासितारमेतं (अग्निम्) मेधाविनो हविर्भिर्यु-  
क्ताश्च ये मनुष्याः (ते) उभये सेवन्ते, द्युलोकादपि  
पुरातनः प्रजानां विधाता पालयिता (च) अन्वेष्टव्यः  
(सः) होता प्रजासु न्यधायि ॥ २ ॥

मापार्थः ।

इस (अग्नि) को मेधावी और जो हवियों से युक्त  
मनुष्य (हैं वे) दोनों सेवन करते हैं, द्युलोकसे प्राचीन  
प्रजाओं की उत्पत्ति (और) उनका पालन करने वाले,

अन्वेपण करने योग्य (वह) होता प्रजाओं में स्थापन  
किये गये हैं ॥ २ ॥

(१) जो मेधावी हैं अर्थात् विद्या में रत हुए २ जो कर्मकाण्ड  
से निवृत्त होचुके हैं । और जो हविसे पूजन करने वाले हैं वे दोनों  
प्रकार के मनुष्य आज्ञा करने वाले इस अग्नि का सेवन करते हैं  
कारण यह है कि उन मेधावियों को धारणाशक्ति भी प्रकाश और  
ऊष्मा को म्य.ई अग्नि से उत्पन्न होती है ।

यह देवताओं का मनुष्यों पर परम उपकार है कि उन के  
बीच में ऐसे महान् देव स्थापन किए गए हैं, जो ध्रुलोक से भी  
प्राचीन हैं, जो देवदेता है, जो प्रजाओं की उत्पत्ति और उनका  
पालन करते हैं और जो सब से खोजने योग्य हैं ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुच्छन्दः । ११११११११११ ।

तं न व्यसीहृद्वाजायमानमरुम-

तसु कीर्त्तिर्मधुजिह्वमश्रयाः । यस्मृतिव-

जो ह्वजनेमानुषासः प्रयस्वन्तथाय-

वोजीजनन्त । ३ ।

तम्                      | तम्                      | उसको

नव्यसी	नवीयसी (ईकारलोपश्छान्दसः)	अतिशय करके नवीन
हृदः	हृदयात्	हृदयसे
आ	आ +	-
जायमानम्	जायमानम्	उत्पन्न होते हुए को
अस्मत्	अस्मदीया	हमारी
सुऽकीर्त्तिः	स्तुति	स्तुति
मधुऽजिह्वम्	मधुरजिह्वोपेतम्	मीठी जिह्वा वाले को
अश्याः	आ+अश्याः, सम्मुखं व्याप्नोत् (विक्रणस्थलक्, ष्यत्य येनपरस्मैपदमध्यमौ)	सम्मुख प्राप्त हो
यम्	यम्	जिसको
ऋत्विजः	ऋत्विजः	ऋत्विजों ने
वृजने	प्राकारे (आ०को०)	घिरे हुए स्थानमें

मानुषासः	मनुवंशीयाः	मनुवंशी
प्रयस्वन्तः	(हवीरूप-अन्न- युक्ताः	(हविरूप) अन्नसे युक्त
आयवः	मनुष्याः (निघं०२।३।)	मनुष्यों ने
जीजनन्त	प्रादुष्कृतवन्तः (अडभाषः)	उत्पन्न किया

संस्तरार्थः ।

हृदयाज्जायमानं मधुरजिह्वोपेतम् (अग्निम्)  
अस्मदीया नवतरा स्तुतिराभिमुख्येन प्राप्नोतु, यम्  
(हवीरूप-) अन्नयुक्ता मनुवंशीया मनुष्या ऋत्विजः  
प्राकारे प्रादुष्कृतवन्तः ॥३॥

भाषार्थः ।

हृदय से उत्पन्न मीठी जिह्वावाले उस (अग्नि)  
को हमारी अतिशय करके नवीन स्तुति सम्मुख प्राप्त  
हो, जिसको (हविरूप) अन्न से युक्त, मनुवंशी  
मनुष्य ऋत्विजों ने घिरे हुए स्थान में उत्पन्न किया  
है ॥ ३ ॥

जिस अग्नि को यज्ञों में चटाई का घेरा बना कर ऋत्विजों  
ने हृदय से अर्थात् यज्ञ से मघन द्वारा उत्पन्न किया है उसको  
हमारी यह भक्ति नवीन सूक्त रूप स्तुति प्राप्त हो ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

उ॒शिक्ष॑पा॒व॒को॒व॒सु॒र्मानु॑षे॒ष॒ वरे॑ण्यो  
होता॑ऽधा॒यि॒वि॒क्षु । द॒मू॒ना॒गृ॒ह॒प॒तिर्द॑-  
म॒त्रा अ॒ग्नि॒र्भु॒व॒द्र॒यि॒प॒ती॒र॒यी॒णाम् ।४।

उ॒शिक्ष॑	कामयमानः	कामना करता हुआ
पा॒व॒कः	पावकः	पवित्र करने वाला
व॒सु	धनवान् (भा०को०)	धनवान
मा॒नु॒षे॒षु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
वरे॑ण्यः	वरणीयः	वरने योग्य
होता॑	होना	होता
अ॒धा॒यि	स्थापितोऽभूत्	स्थापन किया गया

वि॒क्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
१ द॒मूनाः	गृहासक्तमनाः (निघ०४।१)	घरमें आसक्त मन वाला
गृ॒हऽप॒तिः	गृहाणांपालयिता	घरों की रक्षा करने वाला
द॒मे	गृहे	घर में
आ	आ +	-
अ॒ग्निः	अग्निः	अग्नि
भ॒वत्	आ + भुवत्, भवतु (लिट्कृपम्)	हो
र॒यिऽप॒तिः	धनपालकः	धन पालक
र॒यी॒णाम्	धनानाम्	धनों का

संस्कारार्थः ।

मनुष्येषु कामयमानः पावको धनवान् (अग्निः)  
प्रजासुवरणीयो होता स्थापितोऽभूत्, गृहासक्तमना  
गृहाणां पालयिता (सोऽस्मद्-) गृहे धनानां पालको  
भवतु ॥ ४ ॥



भाषार्थः ।

मनुष्यों में कामना करने वाले, पवित्रकारी, (और) धनवान्, (अग्नि) प्रजाओं में घरने योग्य होता स्थापन किये गये हैं, घर में आसक्त मन वाले घरों की रक्षा करने वाले (वह हमारे) घर में धनों के पालक हों ॥४॥

(१) अग्निदेव घर में मोह रखने वाले हैं इसलिए घर में मोह रखना देवगुण होने से प्रशंसनीय है ।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११॥

तं॒ त्वा॒ व॒यं॒ प॒ति॒ म॒ग्ने॒ र॒यी॒णां॒ प्र॒शं॒सा-  
मो॒म॒ति॒भि॒र्गी॒त॒मा॒सः॑ । आ॒शुं॒ न॒वा॒र्ज-  
भ॒रं॒ म॒र्ज॑यन्तः प्रा॒त॒र्म॒क्षू॒ध्रि॒या॒व॒सु॒र्ज-  
ग॒म्या॒त् ॥५॥

तम्	तम्	उसको
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वयम्	वयम्	हम

पतिम्	स्वामिनम्	स्वामी को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
रथीणाम्	धनानाम्	धनों के
प्र	प्र +	—
शंसामः	प्र + शंसामः	प्रशंसा करते हैं
मतिऽभिः	मननीयैः (स्तोत्रैः)	स्तोत्रों से
१ गोतमासः	गोतमवंशीयाः (जसोऽनुगागमः)	गोतमवंशी
आशुम्	अश्वम् (निघ० ११४)	घोड़े को
न	इस	जैसे
वाजम्ऽभरम्	(हवीरूप) अन्न- स्य वोढारम्	(हविरूप) अन्न के ढोनेवाले को
२ मर्जयन्तः	मार्जयन्तः (वृद्धमायः)	मार्जन करते हुए
प्रातः	प्रातः	प्रातः काल में

मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यान द्वारा धन वाला
जगम्यात्	आगच्छतु (गमेलिङि शप-इलु- इजान्दसः)	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! गोतमवंशीया वयं धनानां स्वामिनम्  
(हवीरूप-) अन्नस्य वोढारम् (च) तं त्वामश्वमिव  
मार्जयन्तः स्तोत्रैः प्रशंसामः, ध्यानेन धनवान् (स भ-  
वान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! गोतमवंशी हम धनों के स्वामी (और  
हविरूप-) अन्न के ढोने वाले उस आप को घोड़े की  
न्याईं मार्जन करते हुए स्तोत्रों से प्रशंसा करते हैं  
ध्यान द्वारा धन वाले (वह आप) शीघ्र प्रातःकाल  
में आवें ॥५॥

(१) नोधा ऋषि गोतमवंशी है।

(२) जिस प्रकार घोड़े को मार लादने से पहले- रगड़ फर  
पोंछते हैं इसी प्रकार हवि देने से पहले यज्ञ में अग्नि का सम्मार्जन  
करते हैं ॥

इतिषण्डितमं सूक्तम् ।

# चटः सं० ३१-३२ अङ्कयोः शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ० पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ० पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१३३३ ५	भष्टि	भृष्टि	१३८६ १०	दान	दानु
१३४० १९	पालक	पानकः	" १०	(शिववृद्धौ)	(शिववृद्धौ)
१३४८ ४	वाजभिः	वाजेभिः	१३८२ १३	सुमसः	सुमसाः
१३५१ १४	लि	लिये	१३८३ १६	सेद्य-	सेद्यव
१३५२ ०	ज्जादसः)	दशान्दसः	१३८४ ४	कृष्य	कुरुष्य
" १३	दजादसः)	दशान्दसः)	१३८५ १२	इन्द्र	इन्द्र ने
१३५४ ८	पुरा	पूरा	" १३	(अपः)नद	अपः(नद
१३५७ १४	लुक्)	लुक्)	१३८६ १२	जलाना	जलाना
१३६० ३	रचिताः	रचिता	१३८७ ५	वह	तह
१३७५ ३	गुण्यं	गुण्यं	१३८८ ५	द्युम्नम्	द्युम्नम्
१३७७ २१	इव	इव	१३८९ ६	को०)	(पा०को)
१३७८ १३	(सम्नेष्टि)	(सम्नेष्टि)	१४०२ १५	आस्तपः	आस्तपः
१३८९ १४	अयनिम्	अयनिम्	१४०३ २	मिथीते	मिथीते
" १६	धृतन्यसि	धृतन्यसि	१४०५ १२	सुनात	सुनात
१३८२ १२	(वचनोति)	(वचनाति)	१४१६ २	लाय	लायी
			" १६	यष्ट	यष्टे

# विज्ञापन ।

---

अंक ३५-३६ के साथ तीसरा साल पूरा हो जायगा जिन ग्राहकों का इस सालका चन्दा नहीं आया है उनकी सेवा में अंक ३५, ३६ वी० पी० द्वारा भेजा जायगा, जो पंडित लोग चौथे साल के लिये स्वाध्याय करना अंगीकार करें वे भी कृपा करके सूचना दें जिससे उनका नाम रजिस्टर में लिखा जावे ॥

पुस्तक मिलने का पता—

मुन्शी बयराम, मैनेजर

ऋग्वेद संहिता मुलतान

अक ३५-३६] : [श्रावण भाद्रपद १९६६]

# ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद  
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर  
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी प० शङ्करदत्त  
शास्त्री की सहायता से शिवनाथ  
भादितानि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकादमी के लिये यन्त्रालय में प्रिण्टर खाला,  
खालसन के अधिकार से छपा ।

१२ अंशों का अग्रिम मूल्य २)

पड़ले २४ अंशों का मूल्य ५।)

ऋषि को डूबने से बचाया, शीघ्रकारी इन्द्र के प्राचीन कर्मों को नए स्तोत्रों से खूब कथन करना चाहिये जिससे वह हमारे शत्रुओं को खूब पीड़ित करें, मेधावी इन्द्र के रक्षण सामर्थ्य को बार बार कथन करने से तत्काल बल प्राप्त होता है जैसे नोधा ऋषि को हुआ, आर्य राजा स्वयं के सूर्य नामी पुत्र से स्पर्धा करने वाले एतश ऋषि को इन्द्र ने रक्षा की, गोतमवंशी इस प्रकार आकर्षण करने वाले मन्त्रों से इन्द्र की खूब स्तुति करते थे, उन्हींमें नोधा ऋषि एक थे।

इन्द्रो देवता निचृत्त्रिष्टुच्छन्दः । ११ । ११ । ११ । १०

अस्माद्दुप्रतवसेतुराय प्रयोन-  
हर्मिस्तोममाहिनाय । ऋचीषमा-  
याऽधिगवओह मिन्द्राय ब्रह्माणि-  
राततमा । १ ।

अस्मै	अस्मै	इसके लिये
इत्	(पूरणः)	—
ऊम्०	(पूरणः)	—
प्र	प्र +	—

तवसे	प्रवृद्धाय	बढ़े हुए के लिये
तुराय	त्वरमाणाय तुरत्वरणे)	शीघ्रकारी के लिये
प्रयः	अन्नम् (मा०को०)	अन्न
न	इव	की न्याई
हृर्मि	प्र + हर्मिन्, समर्प याम	अर्पण करता हूँ
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
माहिनाय	पूजनीयाय (महतेरिण् प्रत्ययः)	पूजनीय के लिये
ऋचीषमाय	ऋचासमाय, स- न्त्रोक्तगुणशालिन इत्यर्थः (मिथं०४३)	सन्त्रोक्त गुण वाले के लिए
अध्रिऽगवे	अधूनगमनाय	न रोके जानेवाले के लिये
ओहम्	वहनीयम् (वहतेर्घासिम्प्रसारणं छान्दसम्)	अर्पण करने योग्य को



इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
ब्रह्माणि	हवींषि (ब्रह्मेत्यन्ननाम निघं०२।७)	हवियों को
रातऽतमा	अतिशयेन दत्तानि (जेलोंपः)	अतिशय करके दिये हुआ को

सस्कृतार्थः ।

( अहम् ) प्रवृद्धाय, त्वरमाणाय, पूजनीयाय, मन्त्रोक्तगुणशालिनेऽप्रतिहतगमनायाऽस्माद्यिन्द्रायाऽन्नमिव वहनीयं स्तोत्रमतिशयेन दत्तानि हवींषि(च) समर्पयामि ॥१॥

भाषार्थः ।

मैं बड़े हुए, शीघ्रकारी, पूजनीय, मन्त्रोक्तगुण वाले, किसी से न रोके जाने वाले इस इन्द्रके लिये अन्न की न्याईं अर्पण करने योग्य स्तोत्र को (और) अतिशय करके दी हुई हवियों को अर्पण करता हूँ ॥१॥

(१, नांभाकृति इन्द्र के ताई स्तोत्र अर्पण करते हैं जैसे कोई घर पर भाप हुए मित्र को अन्न अर्पण करता है ॥

इन्द्रोदेवतात्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

अ॒स्माद्दु॒प्रय॑द्दु॒व॒प्रय॑सि॒ भ॒रा॒म्या-  
 झू॒षं॒बाधे॑सुवृ॒त्तिः । इन्द्रा॑य॒हृ॒दाम॑न॒सा-  
 मनी॑षा प्र॒तना॑य॒पत्ये॑धियो॒मर्ज॑यन्त

॥२॥

अ॒स्मै	अस्मै	इसके लिये
दू॒त्	(पूरणः)	-
ऊ॒म्०	(पूरणः)	-
प्रयः॑ऽद्व॒व	अन्नमिव	अन्न का न्याई
प्र	प्र +	-
य॒ंसि	प्र + यंसि, प्रय- च्छामि (पुरुषव्यत्ययः)	मैं देता हूँ
भ॒रामि॑	प्रापयामि	पहुँचाता हूँ

आङ्गुष्म

बाधे

सऽवृत्ति

इन्द्राय

हृदा

मनसा

मनीषा

प्रतनाय

पत्ये

धियः

मर्जयन्त

आघोषम्

(निघं०४।२)

(शत्रूणाम्)

बाधनाय

(भा० केन प्रत्ययः)

सुष्ठ्वाकर्षणम्

इन्द्राय

हृदयेन

मनसा

मनीषया

(सुषामितिवृतीयाया-  
डादेशः)

पुरातनाय

स्वामिने

स्तुतीः

(आ०को०)

सज्जी कृतवन्तः

(आ०को०)

नाद को

(शत्रुओं को)

र्षाडित करने के  
लिये

खूब आकर्षण  
करने वाले को

इन्द्र के लिये

हृदय से

मन से

बुद्धि से

प्राचीन के लिए

स्वामी के लिए

स्तुतियों को

सजाया है

संस्कृतार्थः ।

( अहम् ) अस्मै ( इन्द्राय ) अन्नमिव ( स्तोत्रम् )  
 प्रयच्छामि [ शत्रूगाम् ] बाधनाय सुष्ठ्वाकर्षकं  
 आघोषम् ( च ) प्रापयामि ( ऋषयः ) प्राचीनाय स्वामिन  
 इन्द्राय हृदयेन मनसा मनीषया ( च ) स्तुतीः सज्जी-  
 कृतवन्तः ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

मैं इस ( इन्द्र ) के ताई अन्न की न्याई  
 ( स्तोत्रको ) देता हूँ ( और ) [ शत्रुओं को ] पीड़ित करने  
 के लिए खूब आकर्षण करने वाले नाद को पहुँचाता हूँ  
 ( ऋषयों ने ) प्राचीन स्वामी इन्द्र के लिये हृदय से  
 मनसे ( और ) वृद्धिसे स्तुतियों को सजाया है ॥ २ ॥

इन्द्रको हमारा स्तोत्र ऐसा प्रिय हो जैसे मित्र को मित्र का भक्षण,  
 इन्द्र के समीप खूब आकर्षण करने वाले स्तोत्र का उद्भव हमें  
 पहुँचानो चाहिये ।

इन्द्रो देवता विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । ११ । १० । १० । ११ ।

अस्माद्दुत्यम्पमंस्वर्षा भराभ्या-  
 ङ्गमास्येन । मंहिष्ठमच्छोक्ति-

भिर्मतीनां सुवृत्तिभिः सूरिं वा वध-

धै । ३ ।

अस्मै	अस्मै	इस के लिए
इत्	(पूरणः)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-
त्यम्	तम्	उस को
उपऽसम्	उपमेयम्	उपमा के योग्य को
स्वऽसाम्	स्वर्गस्य दातारम् (पण्डाने, अनुनासिक- स्याऽऽत्वम्)	स्वर्ग के देने वाले को
भरामि	प्रापयामि	में पहुंचाता हूँ
आङ्गूष्म	आघोषम्	नाद को
आस्येन	मुखेन	मुख से
मंहिष्ठम्	अनिशयेन प्रवृद्धम्	बहुत बढ़े हुए को

{ अचक्षोक्तिः	स्वच्छैर्वचोभिः	पवित्र वचनों से
{ ऽभिः		
मतीनाम्	स्तुतीनाम् (मा०को०)	स्तुतियों के
सहस्रिः	सुष्ट्वाकर्षकैः	खूब आकर्षण करने वालोंसे
सूरिम्	विपश्चितम्	विद्वान को
बहुधै	पुनःपुनर्वर्ध- यितुम्	बारंबार बढ़ाने के लिये

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) अतिशयेन प्रवृद्धं विपश्चितम् ( इन्द्रम् )  
सुष्ट्वाकर्षकैः स्तुतिनां स्वच्छैर्वचोभिः पुनः पुनर्वर्धयि-  
तुमस्मा उपमेयं स्वर्गस्य दानारं तमाघोषं मुखेन  
प्रापयामि । ३ ।

भाषार्थः ।

मैं बहुत बड़े हुए वृद्धिमान (इन्द्र) को खूब  
आकर्षण करने वाले स्तुतियों के पवित्र वचनों से  
बारंबार बढ़ाने के लिये उनके ताई उपमा के योग्य (और)  
स्वर्ग के देने वाले उस नाद को मुख से पहुंचाता हूं । ३ ।

“उस नाद को” जिसका पिछले मंत्र में कथन है ।

इन्द्रोदेवता विराट् त्रिष्टुप्छन्दः॥१०॥११॥१०॥११॥

अ॒स्माद्भू॒तु॒स्तो॒मं॒सं॒हि॒नो॒मि॒ रथं॒-  
न॒त॒ष्टे॒व॒त॒ति॒स॒नाय॑ । गि॒र॒प्र॒च॒गि॒र्वा॒ह-  
से॒सु॒वृ॒क्ती॒ न्द्रा॒य॒वि॒प्र॒व॒मि॒न्वं॒मे॒धि॒रा॒य॒  
॥४॥

अ॒स्मै	अस्मै	इस के ताई-
भू॒त्	(पूरणः)	-
ऊ॒म्०	(पूरणः)	-
स्तो॒मम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
सम्	सम् +	-
हि॒नो॒मि॒	सम् + हिनोमि.	प्रेरण करता हूँ
रथं॒	प्रेरयामि रथम्	रथ को

न-	इव	जैसे
१ तष्टाऽइव	(रथ) निर्मातेव	रथ बनाने वाले की न्याई
तत्सिनाय	तेन(रथेन)सिनम् अन्नंयस्य तस्मै रथिने (सिनमित्यन्तनाम निघं०२।७)	रथवान के ताई
गिरः	स्तुनीः	स्तुतियों को
च	च	और
गिर्वाहसे	स्तुतिभिरुहमा- नाय	स्तुतियों से प्राप्त होन वाले के ताई
सुऽवृत्ति	सुष्ठ्वाकर्षकम्	खूब आकर्षण करने वाले को
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के ताई
{ विप्रवम्	सर्वस्य चालकम् (लुगमाचदछान्दसः)	सब के हिलाने
{ ऽइन्वम्		वाले को



मेधिराय | मेधाविने | मेधावी के ताई  
(मत्वर्थीयइरन् प्रत्ययः)

संस्कृतार्थ ।

(अहम्)मेधाविन अस्मायिन्द्राय सुष्ठ्वाकर्पकं  
सर्वस्यचोलकं स्ते त्रं रथनिर्मातेव रथिनेरथमिव प्रेर-  
यामि स्तुतिभिरुह्यमानाय स्तुतीः (च प्रापयामि)॥४॥

भाषार्थः ।

मैं इस मेधावी इन्द्र के ताई खूब आर्कषण करने  
वाले सबको हिलानेवाले स्तेत्रको प्रेरण करता हूँ जैसे  
रथकार रथवान के लिये रथ को (बनाता है और)  
स्तुतियों से प्राप्त होने वाले के ताई में स्तुतियों को  
(पहुँचाना हूँ) ॥ ४ ॥

(१) जैसे रथ बनाने वाला रथवान के लिये रथ बना कर  
देता है वैसे मेधा अपि इन्द्र के लिये स्तोत्र को देते हैं ।

(२) स्तुति सब को हिलाने वाली है देवता मनुष्य पशु वृक्ष  
सब को ।

इन्द्रो देवता निचृत्रिष्टुष्टुन्दः । ११ । ११ । ११ । १० ।

अस्माद्दुसप्तिमिवश्रवस्येन्द्रा-

या॒र्कै॒जु॒ह्वा॒रे॒सम॑ञ्जे । वी॒रं॒दा॒नौ॒क-  
सं॒व॒न्द॒ध॒यै॑ पु॒रां॒गू॒र्त॒श्र॒व॒सं॒द॒र्मा॑ण॒म् । ५ ।

अ॒स्मै	अस्मै	इसके ताई
इ॒त्	(पूरणः)	—
ऊ॒म्०	(पूरणः)	—
{ स॒प्ति॑म् ऽइ॒व	अश्वमिव (निघ० १।१४)	घोड़े की न्याई
श्र॒व॒स्या	यशइच्छया (तृतीयायाश्चादेशः)	यश की इच्छा से
इ॒न्द्रा॒य	इन्द्राय	इन्द्र के ताई
अ॒र्क॑म्	श्रूच्यतेस्तूयते येन तम् (स्तोत्रम्)	स्तोत्र को
जु॒ह्वा॑	आह्वानसाधन रूपया (जिह्वा)	जिह्वा से

सम्	सम्	सम्
अञ्जे	सम् + अञ्जे प्रसाधयामि (अपत्ययेनाऽऽन्ते परम्)	में सजाता हूँ
वीरम्	वीरम्	वीर को
{ दानऽथो- कसम्	दानस्य गृहम्, मूलम्	दान के मूल को
वन्दध्वै	वन्दितुम्	पूजने के लिए
पुरासं	पुराणाम्	गद्दों के
गूर्तऽश्रवसेम्	गूर्तगेयं श्रवोय- शोयस्य तम्	गान करने योग्य यश वाले को
दुर्मार्गम्	विदारयितारम्	तोड़ने वाले को

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) पुराणां विदारयितारं दानस्य मूलं गेय-

यशसं, वीरं वन्दितुं यश इच्छयाऽस्मायिन्द्रायाऽश्व-  
मिव स्तोत्र जिह्वया प्रसाधयामि ॥५॥

भाषार्थ ।

मैं गहों के तोड़ने वाले, दान के मूल, गान करने योग्य यशवाले वीर को पूजने के लिये यश की इच्छा से इन्द्र के निमित्त घोड़े की न्याईं स्तोत्र को जिह्वा द्वारा सजाता हूँ ॥५॥

जिस प्रकार मनुष्य यश की इच्छा से घोड़े को सजाते हैं  
वैसे मोधा ऋषि इन्द्र के लिये स्तोत्र को सजाते हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

अस्माद्दुत्त्वष्टातक्षद्वजं स्वप-  
स्तमं स्वयं शरणाय । ह्यस्य चिद्विद-  
द्ये नमस्मै तुजन्नीशानस्तुजताकि-  
ये धाः ॥६॥

अस्मै ।      अस्मै      इसके लिये

इत्	(पूरणः)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
तच्चत्	रचितवान् (भडमायः)	रचा
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
स्वपः५तमम्	अतिशयेनकर्म- क्षमम् (अपराधिकर्मनाम निघं० २११)	अत्यन्त कार्य साधक को
स्वर्थम्	शब्दनीयम् (स्वशब्दे)	शब्द करने योग्य को
रणाय	युद्धाय	युद्ध के लिये
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
चित्	अपि	भी
विदत्	लब्धवान् (भडमायः)	प्राप्त किया

येन	येन	जिस से
मर्म	मर्मस्थानम्	जीवनके स्थानको
तुजन्	प्रहरन्	मारता हुआ
ईशानः	ऐश्वर्यवान्	ऐश्वर्य से युक्त
तुज्जा	हनन साधनेन	मारने के साधनसे
कियेधाः	कियतः, अनव- धृतपरिमाणस्य [बलस्य] धाः, धारकः	अमित (बल) के धारण करने वाले ने

संस्कृतार्थः ।

त्वष्टा ऽस्मै (इन्द्राय) अनिशयेन कर्मक्षमं शब्दे-  
नीयं वज्रं युद्धार्थं रचितवान् हनन साधनेन येन प्रहर-  
न् ऐश्वर्यवानमित्तबलः (इन्द्रः) वृत्रस्य मर्मस्थानं  
लब्धवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

त्वष्टाने इस (इन्द्र के) लिये अत्यन्त कार्य साधक  
शब्द करने योग्य वज्र को युद्ध के निमित्त घड़ा, मारने  
के साधन रूप जिससे मारते हुए, ऐश्वर्य से युक्त,

अ० प्र० १ सू० ६१ मं० ७ ( १५३६ )

अमित बल वाले (इन्द्र ने) वृत्र के मर्म स्थान को प्राप्त किया ॥ ६ ॥

“मर्म स्थान को प्राप्त किया” अर्थात् मर्म स्थान में मारा ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ॥

अस्येदुमातुःसवनेषुसद्यो मृहः-  
पितुंपपिवाञ्चार्वन्ना । मुषायद्वि-  
ष्णुःपचतंसहीयान् विध्यद्वराहं-  
तिरोअद्रिमस्ता । ७ ।

अस्य

अस्य

इसके

द्वत्

(पूरणः)

-

ऊम्

(पूरणः)

-

मातुः

मातुः

माता के

सवनेषु

सोमोत्सवेषु

सोमके उत्सवों में

सद्यः	सद्यः	तत्काल
महः	यज्ञस्य (मा०को०) (क्विप्प्रत्ययः)	यज्ञ के
पितुम्	अन्नम् (निघ० २।७)	अन्न को
पपिऽवान्	पीतवान्	पीया
चारु	रुच्यानि (शेर्लोपः)	रुचि करने वालों
अन्ना	अन्नानि (शेर्लोपः)	को अन्नों को
मुषायत्	अपहरन्	लूटता हुआ
विष्णुः	सर्वव्यापकः (वेवेष्टिद्व्याप्नोतीति, विष्लृष्ट्याप्तौ)	सर्व व्यापक
पचतम्	पक्वम् (चरुम्)	पके हुए (चरु) को
सहीयान्	महाबलः	महाबली
विध्यत्	वेधितवान् (व्यधताडने, अडमायः)	बीधदिया



वराहम्	वृत्रम् (निघं० १।१०)	वृत्र को
तिरः	तिरः+	-
अद्रिम्	तिरः + अद्रिम्	पर्वत के बीच में से
अस्ता	पर्वतान्तरितम् अस्त्रक्षेपकः (असु क्षेपणे)	अस्त्र चलाने वाला

संस्कृतार्थः ।

सर्वव्यापको महाबलः (इन्द्रः) स्वमातुः सवनेषु रुच्यान्यन्नानि पक्वम् (चरुम्) (च) अपहरन् (सोम-रूपम्) यज्ञस्यान्नं सद्यः पीतवान् (पुनः) अस्त्र क्षेपकः (सः) पर्वतान्तरितं वृत्रं वेधितवान् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

सर्वव्यापी महाबली (इन्द्र) अपनी माता के सवनांमें रुचिकारी अन्नों (और) पके हुए (चरु) को लूटते हुए (सोम रूपी) यज्ञ के अन्न को तत्काल पी गए, (फिर उस) अस्त्र चलाने वाले ने पर्वत के बीच में से वृत्र को बाँध दिया ॥ ७ ॥

इन्द्र की माता अदिति (Infinite nature) हैं, जब अदिति ने यह यज्ञ रचा कि जिस से इस पृथिवी पर जल बरस कर समुद्र बने तो इन्द्र अपना बल बढ़ाने के लिये वर्षा की सामग्री रूप हवियों को लूट खसोट कर खा गए और तत्काल अर्थात् सवन से पहले ही सोम को पोगए, फिर प्राप्त बल इन्द्र ने काली घटा रूपी पर्यंत के बीच में से धूलि वण रूपी वृत्र को बाँध दिया, और पृथिवी पर बरसने के लिए जलों को छुड़ाया।

इन्द्रोदेवता त्रिचूत्त्रिष्टुप्लन्दः । १०।११।११।११

अस्माद्दुग्नाग्निचह्वेवपत्नी रि-  
न्द्रायाऽर्कमहिहृत्यऊवुः । परिद्या-  
वापृथिवीजभ्रउर्वी नाऽस्यतेमहि-  
मानंपरिष्टः । ८।

अस्मै	अस्मै	इस के लिये
इत्	(पूरण)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-

गनाः	वाणीरूपाः	वाणी रूप
चित्	(निघं० १।११) अपि	भी
देवऽपत्नीः	देवपत्न्यः (प्रथम, ये द्वितीया)	देव पत्नियों ने
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
अर्कम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
अहिऽहत्ये	वृत्रहनन(काले) (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	वृत्रके मारने के (समय)
ऊवुः०	ऊवुः (धेभ्रतन्तुसन्ताने)	बुना
परि	परि +	-
{ द्यावा { पृथिवी०	द्यावापृथिव्यौ	दुलोक (और) पृथिवी को
२ जम्भे	परि+जम्भे, परि- जहार, अति- चक्रामेत्यर्थः (हृष्णहरणे लिटिरूपम्)	आगे निकल गया

उर्वी०	विस्तृते	विस्तार वालियों को
न	न	नहीं
अस्य	अस्य	इसकी
ते०	ते	वे दोनों
महिमानम्	महिमानम्	महिमा को
परि	परि+	-
स्तुः०	परि+स्तुः, परिभवतः	उल्लंघन करतीहैं

संस्कृतार्थः ।

वाणीरूपा अपि देवपत्न्यो वृत्रस्य हनन(काले)  
अस्मायिन्द्राय स्तोत्रमूवुः (सच स्तुनइन्द्रः) द्यावा-  
पृथिव्यावतिचक्राम ते (च) अस्य महिमानं न परि-  
भवतः ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

वाणी रूप देवपत्नियों ने भी वृत्र के बध के  
(समय) इस इन्द्र के लिए स्तोत्र का गुना, (स्तुति  
किये गए वह इन्द्र) विस्तार वाले द्युलोक (और) पृथिवी

क. सं० १, सू० ११ सं० ९ ( १५४२ )

से भी आगे निकल गए (और) वे दोनों इसकी महिमा को उल्लंघन नहीं करते ॥ ८ ॥

(१) गायत्री आदि छन्द वाणी रूपी देव पत्नियाँ हैं, जिन्होंने वृत्र के वध के समय इन्द्र के लिये स्तोत्र को बुना जैसे स्त्रियाँ सूरमा के लिये फूलों का हार बुनती हैं । १ ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

अस्येदेवप्ररिरिचेमहित्वं दिव-  
स्पृथिव्याः पठ्यन्तरिक्षात् । स्व-  
रालिन्द्रोदमआविष्कवर्तः स्वरिर-  
मत्रोववक्षेरणाय । ९ ।

अस्य	अस्य	इस की
इत्	(पूरणः)	-
एव	खलु	सचमुच
प्र	प्र +	-

रि॒रि॒चे

प्र + रि॒रि॒चे, वृ॒धे बढी

म॒हि॒ऽत्त्वम्

महत्त्वम्

माहिमा

दि॒वः

द्यु॒लो॒कात्

द्युलोक से

पृ॒थि॒व्याः

पृथि॒व्याः

पृथिवी से

परि॑

अ॒ति॒शये॑न

अ॒ति॒शय कर के

अ॒न्त॒रि॒क्षात्

अ॒न्त॒रि॒क्षात्

अ॒न्त॒रि॒क्ष से

स्व॒ऽरा॒ट्

स्वतो॒राज॑मानः

स्वयं प्रकाशमान

इ॒न्द्रः

इ॒न्द्रः

इ॒न्द्र

द॒मे

र॒हे

घर में

आ

अ +

वि॒प्र॒व॒ऽगू॒र्तः

सर्व प्रियः

सब को प्रिय

सु॒ऽअ॒रिः

शोभन शत्रुकः

बलवान शत्रु  
रखने वाला

असन्नः ववक्षे	मात्रया-इयत्तया रहितः आ+ववक्षे, महत्त्वं प्राप्तवान् (यवक्षियेति महन्नाम निघ० ३।४)	असीम महत्त्व को प्राप्त हुआ
रणाय	युद्धाय	युद्ध के लिए

सदृशार्थः ।

अस्य खलु (इन्द्रस्य) महत्त्वं द्युलोकात्पृथिव्या  
अन्तरिक्षात् (च) अतिशयेन ववृधे, स्वतो राजमानः  
सर्वं प्रियः शोभनशत्रुक इयत्तारहित इन्द्रो युद्धार्थं एहे  
महत्त्वं प्राप्तवान् ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच इस (इन्द्र) की महिमा द्युलोक, पृथिवी,  
(और) अन्तरिक्ष से अत्यन्त बढ़ गई स्वयं प्रकाश-  
मान, सब को प्रिय, बलवानशत्रु रखने वाले असीम  
इन्द्र युद्ध के लिये घर में वृद्धि को प्राप्त हुए ॥ ९ ॥

बलवान शत्रु को जीतने के लिए युद्धसे पहिले अपने घर में  
वृद्धि को प्राप्त होना चाहिये ॥

इन्द्रोदेवता विराट्स्थाना छन्द १०।१०।१०।१०।

अस्येदेवशवसाशुषन्तं विवृष्टचद्

वज्रेणावृष्टमिन्द्रः । गानवाणाअवनीर-

मुञ्च दभिश्रवोदावनेसचेताः ॥१०॥

अस्य	अस्य (इन्द्रस्य)	इस (इन्द्र) के
इत्	(पूरणः)	-
एव	खलु	सचमुच
शवसा	बलेन	बलसे
शुषन्तम्	शुष्यन्तम्	क्षीण होते हुए को
वि	वि +	-
वृष्टचत्	वि + वृष्टचत्, संछेदितवान्	खूब छिन्न भिन्न किया
वज्रेणा	वज्रेण	वज्र से



वृचम्	वृत्रम्	वृत्रको
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने
गाः	गाः	गौओंको
न	इव	जैसे
व्राणाः	आवृताः	रोकी हुईओं को
अवनीः	नदीः (निघ० १।१३)	नदियों को
अमुञ्चत्	मोचितवान्	छोड़ा
अभि	प्रति	की ओर
यवः	यशः	यश को
दावने	प्रदानाय (निघ ४।२)	दान के लिये
सऽचेताः	दत्तचित्तः	दत्तचित्त

ससृत्तार्थः ।

अस्य (इन्द्रस्य) बलु पलेन शुष्यन्तं वृत्रं इन्द्रो वज्रेण सऽपेदितवान्, (सपत्र) यशः प्रति दानाय (च) दत्तचित्तः

(सन्) (वृत्रेण) आवृता नदीः (चोरैरपहृताः) गाड्व  
मोचितवान् ॥१०॥

भाषार्थः ।

इन्द्र ने सचमुच अपने (अर्थात् इन्द्र के) बल से  
क्षीण होते हुए वृत्र को वज्र द्वारा खूब छिन्न निन्न  
किया, यश के प्रति (और) दान के लिये दत्तचित्त  
हुए २ (उन्होंने वृत्र से रोकी हुई नदियों को (चोर  
से हरण की हुई) गोओं की न्याईं छुड़ा दिया ॥१०॥

(१) नदियों को अर्थात् जलों को जो वृत्र से छूट कर पृथिवी  
पर नदी रूप से बहते हैं ।

इन्द्रोदेवता विराट्त्रिष्टुप् छन्दः ॥११॥१०॥११॥१०॥

अस्येदुत्वेषसारन्तसिन्धवः परि-  
यवज्जणसोमयच्छत् । ईशानकृद्वाशु-  
षेदशस्यं तुर्वीतयेगाधंतुर्वणिःकः ॥११॥

अस्य	अस्य	इसके
इत्	(पूरणः)	-

ऊम्	(पूरणः)	-
त्वेषसा	दीप्त्या	दीप्ति से
रन्त	अरमन्त (रमुक्तीडायां, भडभावः, धातोर्नस्यलोपश्च छान्दसः)	रमण किया है
सिन्धवः	नद्यः (निय० १।१३)	नदियों ने
परि	परि+	-
यत्	यतः	क्योंकि
वज्रैण	वज्रेण	वज्र द्वारा
सीम्	(पूरणः)	-
अयच्छत्	परि+अयच्छत् परिगतवान्	घेर लिपा
ईशानऽकृत्	यः (शत्रुवधेनाऽऽ त्मानम्) ऐश्वर्यं वन्तं करोति	ऐश्वर्य वाला
दाशुषे	(हविः) दत्तवते	(हवि) देने वाले के ताई

द॒श॒स्यन्	प्रयच्छन्	देता हुआ
तुर्वी॑तये	तुर्वी॑तये	तुर्वीति के लिये
गा॒धम्	तरणयोग्यं स्थानम्	पार उतरने के स्थान को
तुर्व॑णिः	शीघ्र॑कारी (निघं० धा३)	शीघ्र॑कारी
कः०	अकार्षीत् (करोरेर्लुङि क्लेर्लुक्, ॥ लोपः, मडभायश्च)	बनाया

संस्कृतार्थः ।

अस्य (इन्द्रस्य) दीप्ति॑या नद्योऽरमन्त, यतः (अय-  
मेताः) वज्र॑ण परिगतवान्, सः) शीघ्र॑कार्यैश्वर्यवान्  
(इन्द्रः, हविः) दत्तवते (धनम्) प्रयच्छन् तुर्वी॑तये तरण  
स्थानमकार्षीत् ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

इस (इन्द्र) की दीप्ति से नदियों ने रमण  
किया है क्योंकि (इसने इनको) वज्र से घेर लिया,  
(हवि) देने वाले के ताई (धन को) देते हुए शीघ्रकारी  
ऐश्वर्यवान (इन्द्र ने) तुर्वीति के लिए पार उतरने के  
योग्य स्थान को बनाया ॥ ११ ॥

म.मं०१ सू०६१ मं०१२ ( १५५० )

तुर्धाति अपि किसी नदी में डूबने लगे थे, उस समय इन्होंने इन्द्र का स्मरण किया तो इन्द्र ने पार उतरने को योग्य धोड़े, जल के स्थान में पहुँचा कर इनकी रक्षा की ॥

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्लन्दः ।११।११।१०।११

अस्माद्दुप्रभरातूतुजानी हवाय-  
वज्रमोशानः कियेधाः । गोर्नपर्वत्रिर-  
दातिरप्रचे प्यन्नर्णास्यपांचरध्वै ।१२।

अस्मै	अस्मै	इसके ताई
इत्	(पूरणः)	-
ऊम्	(पूरणः)	-
प्र	प्र+	-
भर	प्र+भर, प्रक्षिप	फैंको
तूतुजानः	त्वरमाणः (निघं० २।१५)	शीघ्रताकरता हुआ

वृत्राय	वृत्राय	वृत्र के ताई
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
ईशानः	ईश्वरः	ईश्वर
कियेधाः	कियतः, अनवधृत गरिमाणस्य (बल- स्य) धारकः	अपित (बल) के धारण करने वाला
गोः	पशोः (ममटः)	पशु के
न	इव	कीन्याई
पर्व	पर्वाणि (शैलोंपः)	जोड़ों को
वि	वि +	-
रद	वि + रद, छिन्धि	काटो
तिरश्चा	तिरश्चा	तिरछे से
इष्यन्	प्राप्नुवन्	प्राप्त होता हुआ
अर्णोसि	नदीः (नि०१११३)	नदियों को

अपाम्	अपाम्	जलों के
चरधै	गमनाय	प्राप्त होनेके लिए

संस्कृतार्थः

( हे इन्द्र ! ) स्वरमाणोऽपरिमितबल ईश्वरः  
(त्वम्) अस्मै वृत्राय वच्चं प्रक्षिप (अन्तरिक्षस्थाः) नदीः  
(च) प्राप्नुवन् जलानां गमनाय (वृत्रस्य) पर्वाणि  
तिरश्चा (वज्रेण) छिन्धि यथा (मांसस्य विकर्तारः)  
पशोः (अवयवान् छिन्दन्ति) ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र ! ) शीघ्रता करते हुए, अमित बलवाले  
ईश्वर आप इस वृत्रके ताई वच्च को फेंकें (और अन्त  
रिक्ष की) नदियों को प्राप्त होकर जलों के गमन के  
लिये (वृत्र के) जोड़ों को तिरछे (वज्र) से काटें जैसे  
(कसाई) पशु के (जोड़ों को काटते हैं) ॥ १२ ॥

(१) उपमा का प्रयोजनशत्रु यथरूप मनोगत भाव को दृढ  
करने का है ।

इन्द्रोदेवता निचृच्छिप्तुच्छन्दः ॥११॥११॥१०॥११॥

अस्येदुप्रब्रूहिपूर्वाणि तरस्य-

कर्म॑णा॒न॒व्य॑उ॒क्तैः। यु॒धेय॑दि॒ष्टा-  
 न॒आयु॑धा न्य॒घाय॑मा॒णोनि॑रि॒णाति॑-  
 श॒च॒न्। १३।

अ॒स्य	अस्य	इसके
इ॒त्	(पूरणः)	-
ऊ॒म्०	(पूरणः)	-
प्र	प्र +	-
ब्रू॒हि	प्र + ब्रूहि, प्रकर्षेण कथय	खूब कथन करो
पू॒र्व्या॑णि	पुरातनानि	प्राचीनोंको
तु॒रस्य॑	त्वरमाणस्य	शीघ्रकारी के
कर्म॑णा॒णि	कर्मणि	कर्मों को



नव्यः	नवीनैः सुपामितिवृत्तीयायाः सु०)	नयों से
उक्थैः	शस्त्रैः	स्तोत्रों से
युधे	युद्धाय	युद्ध के लिये
यत्	यतः	क्योंकि
दूष्णानः	पुनः पुनः प्रक्षिपन् इषमाभीष्टे, व्यवस्थेना (ऽऽत्मने पदम्)	बारबार फेंकता हुआ
आयुधानि	आयुधानि	अस्त्रों को
कृघायमाणः	क्रोधं कुर्वाणः (पा० शो०)	क्रोध करता हुआ
निऽरिणाति	अतिशयेन व्यथ- यति (पा० शो०)	अत्यन्त पीड़ित करता है
शत्रून्	शत्रून्	शत्रुओं को

संस्तुतायः ।

(हे आर्य्यगण!) त्वरमाणस्याऽस्य (इन्द्रस्य) पुरा-  
तनानि कर्माणि नवीनैः शस्त्रैः प्रकथय यतः

क्रोधं कुर्वाणः (अयमिन्द्रः) युद्धाय पुनः पुनरायुधानि  
प्राक्षपन् शत्रून् तिशयेन व्यथयति ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्य्यगण ) इस शीघ्रकारी (इन्द्र) के प्राचीन  
कर्मों को नए स्तोत्रों से खूब कथन करो क्योंकि  
क्रोध करते हुए (यह इन्द्र) युद्ध के निमित्त अस्त्रों को  
बारंबार चलाते हुए, शत्रुओं को अत्यन्त पीड़ित  
करते हैं ॥ १३ ॥

इस से यह उपदेश मिलता है कि हम भी इन्द्र के प्राचीन  
कर्मों को जो ऋषियों ने मंत्रों में गाए हैं, अपनी भाषा में नए २  
भजनों द्वारा खूब कथन करें, वैदिक धर्म तभी जीवित हो सकता  
है जब हम ऐसा करें ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप् छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

अस्येदुभियागिरयप्रचहृह्ला

द्यावाचभूमाजनुषस्तुजेते । उपोयेन-

स्यजोगुवानओणिं सदोभवहोठर्याय-

नोधाः । १४ ।

अस्य	अस्य	इसके
इत्	खलु	सच मुच
ऊम्०	(पूरणः)	-
भिया	भयेन	भय से
गिरयः	पर्वताः	पर्वत
च	अपि	भी
हृद्ळाः	हृढाः	निश्चल
द्यावा	द्यावा+	-
च	च	और
भूम	द्यावा+भूम, द्यावा पृथिव्यो (अत्यन्तान्दमम्)	द्यौ (और) पृथिवी
१ जनुपः	प्रादुर्भूतम्य	प्रकट हुए के

तुजेते०	कम्पेते (सा०भा०)	दोनों कांपती हैं
उपो०	उपो+	—
वेनस्य	मेधाविनः (निघं० ६।१४)	मेधावी के
जोगुवानः	उपो + जोगुवानः पुनःपुनरुप- शब्दयन्	बार बार वर्णन करता हुआ
ओणिम्	ओणति अपनयति (दुःखम्) तं रक्षण- सामर्थ्यम्	रक्षणसामर्थ्य को
सद्यः	तत्क्षणे	तत्काल
भुवत्	अभवत् (भवतेलङ्घ्यवडादेशो ऽहमावद्वच्छान्वसः)	हुआ
वीट्याः	वीट्याय	बल के ताई
२ नोधाः	नोधाः	नोधा

संस्कृतार्थः ।

प्रादुर्भूतस्याऽस्य ( इन्द्रस्य ) खलु भयेन दृढाः

अ० मं० १ सू० ६१ मं० १५ ( १५५८ )

पर्वता अपि (कम्पन्ते) द्यावा पृथिव्यौ च कम्पन्ते, नोधाः  
(अस्य) मेधाविनो रक्षणसामर्थ्यं पुनः पुनर्वर्णयं-  
स्तत्क्षणे वीर्यवानभवत् ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच प्रफट हुआ इस (इन्द्र) के भय से दृढ़  
पर्वत भी (कांपते हैं) और द्यौ और पृथिवी कांपती हैं  
(इस) मेधावी के रक्षण सामर्थ्य का बार बार वर्णन  
करता हुआ नोधा तत्काल बल युक्त हुआ ॥ १४ ॥

(१) जब से इस द्यौ और पृथिवी को भलग करके बीच में  
इन्द्रदेव प्रफट हुआ है, तब से इनके भय से पर्वत और द्यावा पृथिवी  
सब कांपते हैं ।

(२) नोधा कपि इस सूक्त के द्रष्टा हैं जैसे यह इन्द्र के  
रक्षण सामर्थ्य को बारबार वर्णन करने से तत्काल वीर्यवान हुआ  
वैसे हम सब हो सकते हैं ।

इन्द्रो देवता निचृत्त्रिष्टुपछन्दः १११०।११११

अस्माद्दुत्यदनुदाय्येपा मेको-

यद्वन्नेभूरीशानः । प्रैतशंसूर्येपस्पृ-

धानं सौवश्व्येसुष्ट्विमावदिन्द्रः । १५।

अस्मै	अस्मै	इसके ताई
इत्	खलु	सच मुच
ऊम्०	(पूरणः)	-
त्यत्	तत्	वह
अनु	अनु+	-
दायि	अनु+दायि अन्वदायि (अडमायः)	अर्पण किया गया
एषाम्	एषाम्	इन के
एकः	अद्वितीयः	अद्वितीयने
यत्	यत्	जो
वन्ने	ययाचे	मांगा
भूरेः	प्रभूतस्य	बहुतों का
ईशानः	स्वामी	स्वामी

प्र	प्र+	-
एतशम्	एतशम्(ऋषिम्)	एतश (ऋषि) को
सूर्ये	सूर्ये	सूर्य में
प्रस्पधानम्	स्पर्धमानम् (लिटःकानच्)	स्पर्धा करते हुए को
सौवप्रव्ये	स्वश्व-(राज्ञः)पुत्रे	(राजा) स्वश्व के पुत्रमें
सुस्विम्	(सोमस्य) अभि- योतारम् (पुत्रमभियवे)	(सोमके) निचोड़ने वाले को
भावत्	प्र+भावत्, प्रकर्षेण	खूब रक्षित किया
इन्द्रः	रक्षितवान् इन्द्रः	इन्द्र ने
	संस्कृतार्थः ।	

प्रभूतसंघे (धनस्य) स्वामी, अद्वितीयः (इन्द्रः)  
 एषाम्(पदार्थानां मध्ये) यद्यथाचे तदस्माज्ज्वदायि,  
 इन्द्रः सूर्यनाम्नि स्वश्व-(राज्ञः) पुत्रे स्पर्धमानम्  
 (सोमस्य) अभियोतारमेतशम् (ऋषिम्) प्रकर्षेण  
 रक्षितवान् ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

बहुत (धन) के स्वामी अद्वितीय (इन्द्र) ने इन  
(पदार्थों में से) जो मांगा वही इनके ताड़ने अर्पण  
किया गया, इन्द्र ने (राजा) स्वयं के सूर्य नामी  
पुत्र में स्पर्धा करनेवाले (सोम के) निचोड़ने वाले  
एतश (ऋषि की) खूब रक्षा की ॥ १५ ॥

(१) सब पदार्थ इन्द्र के हैं इन में से जो कुछ इन्द्र ने मांगा  
वह हवि रूप में उनको दिया गया ।

(२) भाव्यं राजा स्वयं के सूर्य नामी पुत्र से किसी विषय में  
स्पर्धा होते पर इन्द्र ने सोम निचोड़ने वाले एतश ऋषि की रक्षा की ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११।

एवातेहारियोजनासुवृत्ती न्द्र-

ब्रह्माणि गोतमा सो अक्रन् । एषु वि-

प्रवपेश संधिर्यधाः प्रातर्मच्छधियाव-

सुर्जगम्यात् । १६ ।

एव खलु

ते तुभ्यम्

सच मुच

तरे लिप्



हारिऽयोजन	हे अश्वयोर्योज- यितः !	हे दो घोड़ों के जोड़ने वाले
सुऽवृत्ति	सुष्ठ्वाकर्षिणीः (शेर्लोपः)	खूब आकर्षण करनेवालियांको
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ब्रह्माणि	मन्त्ररूपाः स्ततीः	मन्त्ररूप स्तुतियों को
गोतमासः	गोतमवंशोयाः	गोतम वंशियों ने
अक्रन	आ + अक्रन्, कृतवन्तः	कियां
आ	आ +	—
एषु	एषु	इन में
विप्रवऽ	विप्रवरूपाम् (लिङ्गव्यापयः)	सचरूप वाली को
पेशसम्		
धियम्	शुद्धिम्	शुद्धि को
धाः	स्थापय (छोड़येहूँ) (मदमाव)	स्थापन कर

प्रातः	प्रातः	प्रातः काल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यान द्वारा धन वाला
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे अश्वघोषो जयितः ! हे इन्द्र ! गोतमवंशीयास्त्वदर्थं सुष्ठ्वः कर्षिणोर्मन्त्ररूपाः स्तुती कृतवन्तः ( त्वम् ) एषु विद्वरूपां बुद्धिं स्थापय ध्यानमात्रेण धनवान् ( भवान् ) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

हे दो घोड़ों के जोड़ने वाले हे इन्द्र ! गोतम वंशियों ने आप के लिये खूब आकर्षण करने वाली मंत्र रूप स्तुतियों को किया है आग इन में सव रूप वाली बुद्धि को स्थापन करें, ध्यान मात्र से धनवान् (आप) प्रातःकाल में शीघ्र आवें ॥ १६ ॥

(१) नोधा कषि गोतम वंशी हैं ।

(२) सव रूपवाली बुद्धि गद्यांत ऐसी बुद्धिजो सम्पूर्ण विषयों के साथ तादात्म्य रूप हो कर प्रत्येक रूपवाली हो सके ।

इत्येकपण्डितमं सूक्तम् ।

## अ० सं० १ सू० ६२

### नोधा ऋषिः

विनियोग—“तदुप्रयक्षतमं” इस छठे मंत्र से प्रवर्ण्य इष्टि में स्तुति की जाती है (आ० औ० सू० ४७४)

शेष मंत्रों का लैङ्गिक विनियोग है

इस सूक्त में नोधा ऋषि जो पिउले ऋषियों में से हैं प्राचीन ऋषियों की भावनाओं को नये स्तोत्र में वर्णन करते हैं अङ्गिरा, नव-ग्वा, दशग्वा ये उस समय के ऋषि हैं जब मनुष्यों में प्रथम और अग्रगण्य यह अर्थ्यज्ञाति बुद्धि की इस कोटि को प्राप्त होगई थी कि सृष्टि की अद्भुत घटनाओं का कारण को विचार सके। सब से पहिली दुःख वार्द घटना मेरुदेश की लम्बी रात्रि थी, अन्धकार रूपी असुर जिनको बल पनि इत्यादि नामों से वर्णन किया है सूर्य की किरण रूपी गोमों को हरण करके छिपा लेने थे इसो लिये रात्रि का भयसान नहीं होता था इस अवस्था में अङ्गिरा आदि ऋषियों ने इन्द्र की स्तुति करके उन का बल बढ़ाया जिस से वह असुरों से युद्ध करके गोमों को छुड़ाये, इन्द्र उपा रूपी देवताओं का कृतिया को जिस को सरमा नाम से वर्णन किया है गोमों के छिपने के स्थान को ढूँढने के लिये भजने हैं—उह जब उनका पना लगाकर लौटनी है तब इन्द्र बल को मार कर वज्रों से गोमा को छुड़ाते हैं। सरमा अर्थात् उपा ॥ गेर चलती है और कुछ काल पड़े सूर्य रूपी इन्द्र किरण रूपी गोमों को साथ लिये हुए आते ह और रात्रि का भयसान होता है।

[ऋषि की यह कल्पना “कि जिस प्रकार हमारी अभीष्ट सिद्धि के लिये स्तुति द्वारा इन्द्र के बल को बढ़ाने की आवश्यकता है इसो प्रकार सूर्य उदय होने के लिये हमारे प्राचीन पितर अङ्गिरा आदि

ऋषियों की स्तुति की आवश्यकता थी” हमें मनोखी प्रतीत होती है परन्तु उपासकको किसी कामना का पूर्ण होना ऐसाही नियमसे बद्ध है कि जैसा सूर्य का उदय होना । वेदका आशय यह है कि स्तुति से आत्मा (और आत्मा ही इन्द्रादि देवता है) का बल बढ़ता है चाहे वह स्तुति किसी मित्र से की जाय (१) अपनी कामना पूर्तिके लिये वा (२) जाति को उन्नतिके लिये वा (३) मनुष्यमात्र के उपकार के लिये (४) वा देवताओं को सृष्टि काम के चलाने में सहायता देने के लिये — ये कामनाएँ उत्तरोत्तर कम से श्रेष्ठ हैं और अन्तिम (४) कामना करने की योग्यता रखनेके कारण अगित भयर्वा इत्यादि ऋषि देवताओं की तुलना में गिने जाते हैं, यह याद रखना चाहिये कि योग्यता कम पूर्वक उन्नति करने से होता है—हमारे लिये अन्तिम कामना करना निरर्थक है वर्तमान अवस्था में तो साधारण मनुष्यों के लिये पहिली, और उत्तम पुरुषों के लिये पहिली और दूसरी कामनाएँ ही उन्नति के मार्ग पर डालने वाली हैं—जो स्वयं उन्नत और उनकी जाति उन्नत है उनको तीसरी कामना के लिये स्तुति करना योग्य है और जब इस पृथिवी की सब जातियाँ उन्नति के शिखर को पहुँच जायें तब थोड़ी कामना के लिये स्तुति करना असंगत नहीं होगा]

इन्द्रो देवता त्रिष्टुब्धन्दः १११११११११

प्रमन्महेशवसानाय शूष म-ङ्गूषं

गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् । सुवृत्तिभिः

स्तुवतः ऋग्मियाया ऽर्वा मा ऽर्कं न रे-  
विश्रुताय । १ ।

प्र	प्र +	-
मन्महे	प्र + मन्महे प्रकर्षेण चिन्तयामः	हम खूब चिन्तन करते हैं
शवसानाय	(शवो बलं तदिवा- ऽऽचरते) बलवते	बलवान के लिए
शुषम्	बलम् (निघ० ११९)	बल को
आपङ्गम्	स्तोत्रम् (निघ० ४१२)	स्तोत्र को
गिर्वणसे	गीभिः स्तुतिभिः सम्भजनीयाय (यनसम्भजनी)	स्तुतियों से सेवन करने योग्य के लिये
अङ्गिरस्वत्	अङ्गिरस इव	अङ्गिराओं की न्याई
सहस्रिभिः	सुष्ट्वाकर्षकैः (वचोभिः)	सूत्र आकर्षण करने वाले (वचनों) से

२ स्तवते	स्तुतिकुर्वता (सुषामितिविमर्शः शे नादेशः)	स्तुति करने वाले से
२ ऋग्मियाय	अर्चनीयाय (अगममहंतोति, अर्हाय घच्)	पूजनीय के लिए
अर्चाम	नमस्कारेणोच्चारयाम	हम नमस्कार के साथ उच्चारण करें
अकम्	मन्त्रम् (अच्यतेऽनेनेनियाम्कः)	मन्त्र को
नरे	नराय (गुणरत्नान्दस)	नर के लिए
विश्रुताय	विख्याताय	प्रसिद्ध के लिए

संस्कृतार्थः ।

अङ्गिरस इव (वयम्) बलवते बलं स्तुतिभिः  
सम्भजनीयाय (च) स्तोत्रं प्रकर्षेण चिन्तयामः, स्तुतिं  
कुर्वता सुष्ठ्वाकर्षकैः (वचोभिः) ऽर्चनीयाय विख्या-  
ताय नराय नमस्कारेण मन्त्रमुच्चारयाम ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

अङ्गिराओं की न्याई हम बलवान के लिये बल  
को (और) स्तुतियों से सेवन करने योग्य के लिये

अ० मं० १ सू० ६२ मं० २ ( ११६८ )

स्तोत्र को चिन्तन करते हैं, स्तुति करने वाले से खुद  
आकर्षण करनेवाले (वचनों द्वारा पूजने योग्य प्रसिद्ध  
नर के लिए हम नमस्कार के साथ मन्त्र को  
उच्चारण करें ॥ १ ॥

(१) अक्षित, अदिग्नपियों में से हैं जब आर्ध्यजाति उत्तर  
में दूधे समीप रहती थी, और नोधा पिछले क्रयों में से हैं। मन्त्र का  
तात्पर्य यह है कि जैसे अक्षितों ने इन्द्र के लिये धल और स्तोत्र  
को चिन्तन किया वैसे ही हम पिछले स्तोत्रा लोग भी करते हैं ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

प्र॒वो॑म॒हेम॒हि॒न॒मो॑भ॒र॒ध्व॒ माङ्गू॒ष्यं॑

श॒व॒सा॒ना॒य॒साम् । ये॒ना॒नः॒पूर्वे॑पि॒तरः॑

प॒द॒ज्ञा अ॒र्च॒न्तो॒अ॒ङ्गि॒र॒सो॒गा अ॒वि॒  
न्दन् । २ ।

प्र

| प्र +

| -

वः	यूयम् (प्रथमार्थे द्वितीया)	तुम सब
महे	महते	महान के लिए
महि	महत्	परम को
नमः	नमस्कारम्	नमस्कार को ३२
भरध्वम्	प्र + भरध्वम्, प्रापयत	पहुँचाओ
आङ्गूष्यम्	आघोपयोग्यम्	उच्चस्वर से गाने योग्य को
श्वसानाय	बलवते	बलवान के लिए
साम	सामगानम्	साम गान को
येन	येन	जिसके द्वारा
नः	अस्माकम्	हमारे
पूर्वे	पुरातनाः	प्राचीन
पितरः	पितरः	पितरों ने



१ पदऽज्ञाः	मार्गस्य ज्ञातारः	रस्ते के जानने वालों ने
अर्चन्तः	पूजयन्तः	पूजन करते हुए
अङ्गिरसः	अङ्गिरसः	अङ्गिराओं ने
गाः	गाः	गौओं को
अविन्दन्	अलभन्त (पिदललाने)	प्राप्त किया

ससृत्तार्यः ।

(हे आर्य्यगण!) महते (इन्द्राय) महन्नमः प्राप-  
यत, बलयुक्तायाऽऽघोषयोग्यं साम-(गानं कुरुत)  
येन मार्गस्यज्ञातारः पूजयन्तोऽस्माकं पुरातनाः  
पितरोऽङ्गिरसः (किरण रूपाः) गा अलभन्त ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

( हे आर्य्यगण! ) महान ( इन्द्र ) के लिये परम  
नमस्कार को पहुंचाओ, बलवान के लिए  
उच्च स्वर से गाने योग्य साम (गान को करो) जिस  
के द्वारा रस्ते के जानने वाले पूजन करते हुए हमारे

प्राचीन पितर अङ्गिराओं ने (किरण रूपी) गौओं को प्राप्त किया था ॥ २ ॥

(१) रस्ते के जानने वाले अर्थात् गोओं को खोजने के लिये इन्द्र की स्तुति रूप उपाय को जानने वाले ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

इन्द्रस्याऽङ्गिरसांचिष्टौ विदत्स-

रमातनयायधासिम् । बृहस्पतिभि-

नदद्रिर्विदग्नाः समुस्त्रियाभिर्वावश-

न्तनरः । ३ ।

इन्द्रस्य	इन्द्रस्य	इन्द्र की
अङ्गिरसाम्	अङ्गिरसाम्	अङ्गिराओं की,
च	च	और
चिष्टौ	इच्छायाम् (सत्याम्)	इच्छाके होने पर

विदत्	अलभत (अडमायः)	प्राप्त किया
१ सरमा	सरमा	सरमा ने
२ तनयाय	सन्तानाय	सन्तान के लिये
२ धासिम्	अन्नम् (निघं० १२।७)	अन्न को
वृहस्पतिः	वृहतां देवानां पतिः(इन्द्रः)	इन्द्र ने
भिनत्	व्यदारयत् (अडमायः)	चीर डाला
अद्रिम्	पर्वतम्	पर्वत को
विदत्	अलभत (अडमायः)	प्राप्त किया
गाः	गाः	गौओं को
सम्	सम्+	—
उस्त्रियाभिः	गोभिः	गौओं के साथ

३ वावश्चन्त	पुनः पुनर्हर्ष- शब्दमकुर्वन् (चाष्टशब्दे, यद्)	चारचारहर्षयुक्त शब्दको किया
नरः	नेताराः (देवाः)	देवताओं ने

संस्कृतार्थः ।

इन्द्रस्याऽङ्गिरसाञ्चेच्छायाम् (सत्याम्) सरमा  
( निजः ) सन्तानायाऽन्नमलभत, इन्द्रः ( तमोरूपम् )  
पर्वतं व्यदारयत् ( किरणरूपाः ) गाः ( च ) लब्धवान्  
( ताभिः ) गोभिः ( सह ) देवाः पुनः पुनर्हर्षशब्द-  
मकुर्वन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

इन्द्र और अङ्गिराओं की इच्छा के होने पर  
सरमा ने ( अपनी ) सन्तान के लिए अन्न को  
प्राप्त किया, इन्द्र ने ( अन्धकाररूपी ) पर्वत को  
चीर डाला (और किरण रूपी) गौओं को पाया  
( उन ) गौओं के साथ देवताओं ने आनंद का  
शब्द किया ॥ ३ ॥

(१) सरमा, देवशुनी का नाम है, जिस प्रकार छिपे शिकार  
को अपनी घ्राणशक्ति से ढूँढ़ कर कुतिया अपने स्वामी को घड़ां  
लेजाती है इसी प्रकार देवशुनी उपा छिपे हुए किरण समूह को  
ढूँढ़ कर इन्द्र को निवेदन करती है - इस अलंकार का मूल यह है

कि रात्रि होने से पहिले सायंकाल की उषा अंधेरे के पीछे २ जाती है, और प्रातः काल में सूर्य के आगे २ अर्थात् पहिले आती है।

(२) सरमा की सन्तान उषा के जोड़ले पुत्र हैं जो दिन रात्रि के रूपमें उत्पन्न होने रहते हैं मेरु देशों की महीना लम्बी रात्रि के पीछे कुछ काल तरुसाधारण ६० घड़ी के दिन रात्रि होते हैं यह सरमा के युगल पुत्र हैं फिर लंबा दिन आरम्भ हो जाता है, जय सरमा ने किरण रूपी गौओं को दूध लिया तो उस की सन्तान के पालन के लिये गौओं का दूध रूपी अन्न मिल गया क्योंकि गौओं की खोज को आरम्भ करने से पहिले सरमा ने इन्द्रसे यज्ञ नियम कर लिया था कि यदि मैं गौओं का खोज लगा दूँ तो मेरी अहोरात्र रूपी सन्तान के लिये द्यौत किरण रूपी दूध मिले जिस से उन का पालन हो ॥

(३) जय इन्द्र ने सूर्य रूप में किरणों को प्राप्त किया तो सय देवताओं ने किरणों के साथ मिल कर हव्य धरति को किया जैसे प्रमात के समय अय भी देखा जाता है ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

ससुष्टुभासस्तुभासप्तविप्रैः स्व-

रेणाऽद्रिस्वयोर्योश्नवग्वैः । सरण्युभिः-

फालिगमिन्द्रशक्र वलं रवेण दरयो-

दशग्वैः । ४ ।

सः	सः	वह
सुऽस्तुभा <sup>१</sup>	शोभनस्तोभ युक्तेन (पूरणः)	सुन्दर स्तोभ वाले से
सः		-
स्तुभा	स्तोत्रेण (स्तोमतिःस्तुतिकर्मा)	स्तोत्र से
सुप्त	सप्तभिः (सुपामिति विमलोलुक्)	सातों से
* विप्रैः	ऋषिभिः	ऋषियों से
स्वरेण <sup>१</sup>	नादेन	नाद से
अद्रिम् <sup>१</sup>	पर्वतम्	पर्वत को
स्वर्ग्यैः <sup>१</sup>	कीर्त्तनीयः (स्वृशब्दे)	कीर्त्तनकरने योग्य
* नवऽग्वैः <sup>१</sup>	नवभिः (मासैर्यज्ञ- समाप्य) गते नव- गवाख्यैर्ऋषिभिः	नौमहीनेमें सत्रको समाप्त करनेवाले नवग्व नामी ऋषियों के साथ

१ सरण्युभिः	त्वरमाणैः (क० १०।६१।२४)	शीघ्रता करने वालों से
१ प्रालिङ्गम्	मेघम् (मि० १।१।१०)	मेघ को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
शक्र	हे शक्तिमन् !	हे शक्ति वाले
१ बलम्	बलम्	बल को
रवेण	गर्जनेन	गर्ज के साथ
दरयः	विदारितवान् (भडमाय.)	चीरडाला
२ दशङ्गैः	दशभिः (मासैर्यजं समाप्य) गतेर्दश- भ्वार्यैर्ऋषिभिः	दसमहीने में सत्र को समाप्त करने वाले दशग्वऋषि- पियों के साथ

सस्यतार्थः ।

हे शक्तिमन्निन्द्र ! शोभन स्तोभ युक्तेन स्तोत्रेण  
नादेन (च) कीर्तनीयः सः (त्वम्) त्वरमाणैर्नवग्वैर्दशग्वैः  
सप्तरिभिः (च सह) पर्वत (सदृशम्) मेघ (सदृशं च)  
बल गर्जनेन विदारितवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे शक्तिवाले इन्द्र ! सुन्दर स्तोम वाले स्तोत्रसे (और) नाद से कीर्तन करने योग्य उस आपने शीघ्रता करते हुए नवग्व दशग्व (और) सात ऋषियों के साथ पर्वत (सदृश और) मेघ (सदृश) बल को गर्ज के साथ चीर डाला ॥ ४ ॥

(१) अद्रि, फलिन, बल ये सब मेघ के नाम हैं परन्तु यहाँ जलका मेघ नहीं किन्तु अंधकार के मेघ से तात्पर्य है ।

(२) नवग्व के लिये देखो पृष्ठ ८०२, और जहाँ दो महीने की रात्रि होती थी वहाँ दस महीने में सत्र को समाप्त करने वाले दशग्व ऋषि कहलाते थे ।

(३) "शीघ्रता करते हुए" अर्थात् स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को बल के साथ युद्ध करने में सहायता देने के लिये शीघ्रता करते हुए ।

(४) नवग्व दशग्व और सात ऋषियों के साथ अर्थात् इन की सहायता से जो वे स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को देते थे ।

(५) "स्तोम" गीत आदि स्वर को पूरा करने के लिये शब्द विशेष (जिस का अर्थ कुछ नहीं) का नाम है जैसे सामवेद में 'हुम्मा' 'होई' इत्यादि शब्द ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः । १११११११११॥

गुणानो अङ्गिरोभिर्दस्मविवरुषसा,  
सूट्येण गोभिरन्धः । विभूत्या अप्रथ-



यद्गन्द्सानु दिवोरजउपरमस्त-  
भायः ।५।

गणानः	स्तूयमानः	स्तुति किया हुआ
अङ्गिरःऽभिः	अङ्गिरोभिः	अङ्गिराओं से
दस्म	हे अद्भुत (भा०को०)	हे अद्भुत
वि	वि +	-
वः	वि+वः, अपावृत- वान् (भट्टभाष्यदृष्टान्तः)	हटा दिया
उपसा	उपसा	उपा से
सूर्येण	सूर्येण	सूर्य से
गोभिः	किरणेः (निघ०१।५)	किरणों से
अन्धः	अन्धकारम् निघ०५।१)	अन्धकार को
वि	वि +	-

भू॒म्याः	पृथि॒व्याः	पृथिवी के
अ॒प्र॒थ॒यः	वि+अप्रथयः, विस्तारितवान्	फैला दिया
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सानु	शिखरम्	शिखर को
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
उपरम्	तलेभवम् (मा०को०)	नीचे होने वाले को
अस्त॒भा॒यः	अस्त॒भ्नाः, दृढी- कृतवान् (अपरपयेन दनाप्रत्ययस्य शायजादेशः)	दृढ़ किया
संस्मृतार्थः ।		

हे अद्भुतेन्द्र ! अङ्गिरोभिः स्तूयमानः (त्वम्)  
उपसा, सूर्येण, किरणैः (च) अन्धकारमपावृतवान्,  
पृथिव्याः शिखरं विस्तारितवान्, द्युलोकस्य तले-  
भवमन्तरिक्षम् (च) दृढी कृतवान् ॥ ५ ॥

क्र० मं० १ सू० १२ मं० ६ ( ( १५८० ) )

भाषार्थः ।

हे अद्भुत इन्द्र ! अङ्गिराओं से स्तुति किए गए  
आपने उषा सूर्य (और) किरणों द्वारा अन्धकार को  
हटा दिया आपने पृथिवी के शिखर को फैलाया  
(और) द्युलोक के नीचे होने वाले अन्तरिक्ष को  
हटा दिया ॥ ५ ॥

जब रात्रि थी, तो अन्धकार से ढके हुए होने से पृथिवी के  
शिखर अर्थात् हिमालय आदि पर्वत और अन्तरिक्ष में कुछ भेद  
नहीं प्रतीत होता था, अन्धकार के दूर होने से पर्वतों को भेजियां  
अन्तरिक्ष में फैली हुई दीखने लगीं और धी धी पृथिवी के बीच  
में अन्तरिक्ष को स्थिरता प्राप्त हुई ॥

... इन्द्रो देवतां त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

तदुप्रयच्छतममस्य कर्म दस्मस्य-

चारुतममस्ति दंसः । उपह्वरेयदुपरा-

अपिन्वन् मध्वर्णं सोनद्यश्चतस्रः । ६ ।

तत् । तत् । वह

ऊम्	(पूरणः)	-
प्रयच्छतमम्	अतिशयेन पूज्यम् (यक्षपूजायाम्)	अत्यन्त पूजनीय
अस्य	अस्य	इसका
कर्म	कर्म	कर्म
दस्मस्य	अद्भुतस्य (भा०को०)	अद्भुत का
चाकृतमम्	अतिशोभनम्	अत्यन्त सुन्दर
अस्ति	अस्ति	है
दंसः	कर्म (निघं०२।१)	कर्म
उपह्वरे	रहः स्थाने	गुप्त स्थानमें
यत्	यत्	जो
उपराः	तलेभवाः	नीचेहोने वालियों को
अपिन्वत्	आपूरितवान् (भा०को०)	खूब पूर्ण करदिया

मधुऽअर्णसः	मधुरोदकाः (अर्ण इति जलनाम, निघ० १११२)	मीठे जल वालियों को
नद्यः	नदीः (द्वितीयायै प्रथमा)	नदियों को
चतस्रः	चतस्रः	चार को

संस्कृतार्थः ।

अद्भुतस्याऽस्य (इन्द्रस्य) तत्कर्मणाऽतिशयेन पूज्य-  
मतिशोभनम् (च) अस्ति, यत्तलेभवा मधुरोदकाश्च-  
तस्रो नद्यो रहः स्थान आपूरितवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

अद्भुत इस (इन्द्र) का वह कर्म अत्यन्त पूज-  
नीय (और) अति सुन्दर है जो नीचे होनेवाली मीठे  
जल की चार नदियों को गुप्त स्थान में खूब पूर्ण  
कर दिया ॥ ६ ॥

मीठे जलकी चार नदियां गौ के स्तन हैं, यह इन्द्रका अत्यन्त  
भाश्चर्य जनक कर्म है, कि इन नदियों को गुप्त स्थान में दुग्ध से  
पूर्ण कर देते हैं, ये नदियां वत्स के समीप आने से बहती हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

द्वि॒ता॒वि॒व॒स्व॒न॒जा॒सनी॒ळे अ॒बा॒स्यः

स्तवमानेभिरर्केः । भगोनमेनेपरमे-  
व्योमन्नधारयद्रोदसीसुदंसाः । ७ ।

द्विता	द्विधा (धकारस्वतकारश्छा- न्दसः)	दो भागों में
वि	वि+	—
वव्रे	वि+वव्रे, विवृतवान् भेदेनस्थापितवान्	अलग किया
सुनऽजा	पुराणोद्भवे (पूर्वपदस्यञ्चस्वः, विमके- राकारश्च)	पुराने जन्मवाली दोनों को
सऽनीळे	समाननीडनिवा- सस्थानं ययोस्त परस्परं संलग्ने इत्यर्थः	मिली हुईओं को
अथास्यः	अनायासेन भवः (यस् प्रयत्ने, मावे यत्)	बिना प्रयत्न के होने वाला
स्तवमानेभिः	स्तुतिं कुर्वद्भिः	स्तुति करनेवालोंसे

अर्कैः	मन्त्रैः	मन्त्रों के द्वारा
भगः	सूर्यः	सूर्य
न	इव	की न्याई
सेने०	स्त्रियो (निह० ३। २१)	दो स्त्रियों को
परमे	उत्कृष्टे	ऊँचे में
विऽओमन्	आकाशे (सप्तम्यालुक्)	आकाश में
अधारयत्	अधारयत्	धारण किया
२ रोदसी०	द्यावापृथिव्यो	दो (ओर) पृथिवी को
सुऽदंसाः	शोभनकर्मा	सुकर्मा ने

कस्त्वर्थः ।

मन्त्रैः स्तुतिं कुर्वद्भिरनायासेन भवः (इन्द्रः)  
पुराणोद्भवे, परस्परसंलग्ने द्यावापृथिव्यौ द्विधा

विवृतवान्(पुनः सः) शोभनकर्मा (ते) स्त्रियावृत्कृष्ट  
 आकाशे सूर्य्य इवाऽधारयत् ॥ ७ ॥

मापार्यः ।

मन्त्रोंसे स्तुति करते हुए ऋषियोंके द्वारा विना  
 प्रयत्न के होने वाले (इन्द्र) ने परस्पर मिली हुई  
 पुराने जन्मवालो द्यौ(और) पृथिवी को अलग अलग  
 किया, (फिर उस) सुकर्मा ने (उन) दोनों स्त्रियों को  
 ऊँचे आकाशमें सूर्य्य की न्याईं धारण किया ॥ ७ ॥

(१) जब स्तोता, मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति करते हैं, तब वह विना  
 परिश्रम के ही अपने सृष्टि व्यवस्थापक कर्मों को करते हैं ॥

(२) द्यौ और पृथिवी दोनों शब्द स्त्रीलिंग होने से स्त्री कही  
 गई हैं इन दोनोंको सुकर्मा इन्द्र ने महात आकाश में सूर्य्य की न्याईं  
 धारण किया हुआ है जैसे एकवति दो स्त्रियों को धारण करता है ।

राज्युपतोदेवते निचृत्रिष्टुपुच्छन्दः ॥११॥ १११०॥ ११॥

सनाद्दिवपरिभूमाविरूपे पुनर्भुवा-

युवतीस्वेभिरैवैः । कृष्णेभिरक्तोषा-

रुशद्भिर्वपुर्भिराचरतोऽन्यान्या । ८ ॥



स॒नात्	प्राचीनकालात्	प्राचीनकाल से
दि॒वम्	द्युलोकम्	द्युलाक को
प॒रि	परि+	-
भूम॑	भूमिम् (द्वितीयायाडादेशः, ऊस्वदञाद्सः)	पृथिवी को
विऽरूपे॑	भिन्नवर्णे	भिन्नरूप वाली
पुनः॒ऽभुवा॑	पुनःपुनर्जायमाने	बारंबार उत्पन्न होनेवाली
यु॒व॒ती०	तरुण्यो	दो स्त्रियें
स्वेभिः॑	स्वकीयेः	अपनी
ए॒वैः	गमनैः (गण्गती घन प्रत्ययः)	गतियों से
कृ॒ष्ण॑भिः	कृष्णवर्णैः	काले वर्णों से

अर्त्ताः	रात्रिः (ननेतिरात्रिनाम निघं. १। नलोपदडान्दसः)	रात्रि
उषाः	उषाः	उषा
रुशत्ऽभिः	दीप्यमानैः	दीप्तिवालों से
वपुःऽभिः	शरीरैः	शरीरों से
आ	आ+	--
चरतः	आ+चरतः, पर्य्या वर्त्तते	दोनों घूमती हैं
अन्याऽअन्या	परस्परंव्यतिहारेण (व्यतिहारे सर्वनाम्नो- ष्ठे भवतः)	अलग-अलग क्रम से

संस्कृतार्थः ।

कृष्णवर्णैरात्रिः, दीप्यमानैःशरीरैरुषाः भिन्नवर्णै  
(उभे)युवती स्वकीयैर्गमनैःपुनःपुनर्जायमाने (सत्यो)  
प्राचीन कालात् अलोकं पृथिवीम् (च) परस्परं व्यति-  
हारेण पर्य्यावर्त्तते ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

ले वर्णों से रात्रि, (और) दीप्तिवकाले शरीरों

क्र० मं० १ सू० ६२ मं० ९ ( १५८८ )

से उपा, दोनों भिन्न रूपवाली स्त्रियां अपनी रगतियों द्वारा धारंवार उत्पन्न होती हुई प्राचीनकाल से द्युलोक (और) पृथिवी के चारों ओर अलग २ क्रम से घूमती हैं ॥ ८ ॥

(१) यहां पर उपा से दिन का तात्पर्य है ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

सनेमि सुख्यं स्वपस्यमानः सुनु-  
दाधारश्वसासुदंसाः । आमासुचि-  
द्वधिषेपकवमन्तः पयःकृष्णासुरु-  
शद्रोहिणीषु । ९॥

सनेमि	पुरातनम् (निर्घ० ३।२७)	पुरानी को
सुख्यम्	मित्रत्वम्	मित्रता को
{ सुऽअप- स्यमानः	शोभनं कर्माऽऽ- चरन्	श्रेष्ठ कर्म का आचरण करता हुआ

सुनुः	पुत्रः	पुत्र ने
दाधार	धारितवान्	धारण किया है
शवसा	बलेन	बल से
सुऽदंसाः	सुकर्मा	सुकर्मा ने
आमासु	अपरिपक्वासु	कठिचयोंमें
चित्	अपि	भी
दधिषे	धारयति (लङ्घ्य लिट्)	स्थापन करते हो
पक्वम्	परिपक्वम्	पके हुए को
अन्तः०	मध्ये	बीच में
पयः	दुग्धम्	दूध को
कृष्णासु	कृष्णवर्णासु	काले रंग वालियों में

रुशत्	श्वेतवर्णम् (धा०को०)	श्वेत रंग वाले को
रोहिणीषु	लोहितवर्णासु	लालरंग वालियों में

संस्कृतार्थः ।

सुकर्मा पुत्रः शोभनं कर्माऽऽचरन् पुरातनं सख्यं बलेन धारतवान् (अस्ति) (हे इन्द्र!) (त्वम्) अपरिपक्वा स्वपिमध्ये परिपक्वं दुग्धं स्थापयसि (त्वम्) कृष्णवर्णासु लोहितवर्णासु (च) श्वेतवर्णम् (दुग्धं स्थापयसि) ॥९॥

भाषार्थः ।

श्रेष्ठ कर्म का आचरण करते हुए सुकर्मा पुत्र ने पुरानी मित्रता को बल से धारण किया है (हे इन्द्र) आप कच्चियों के बीच में भी पके हुए दूध को स्थापन करते हो आप काले (और) लाल रंग वालियों में श्वेत रंग के (दूध को स्थापन करते हो) ॥९॥

(१) "पुत्र" धावापृथिवी के पुत्र इन्द्र ने पुरानी मित्रता को जो हमारे पितरों के और हमारे साथ उनको है बल से धारण किया हुआ है, इसी लिए हमारे शत्रु इस मित्रता को तोड़ नहीं सकते ॥

(२) यद्यपि गोए कच्ची हैं मर्थात् बाहर से ठंडी हैं परन्तु उन में से दूध पका हुआ मर्थात् कोसा निम्लता है ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः १११।११।११।११।

स॒नात्सनी॑ळा॒श्वनी॑रवा॒ता व्र॒ता  
 र॒क्षन्ते॑ अ॒मृताः॑ स॒होभिः॑ । पु॒रुस॒ह-  
 स्त्रा ज॒नयो॑नप्र॒तनी॑ दु॒वस्य॑न्ति॒स्वसा॑-  
 रो॒अ॒क्रया॑णम् ॥१०॥

स॒नात्

चिरकालात्

चिरकाल से

स॒नी॑ळाः

समाननिवास-  
स्थानाःएक स्थान में  
रहने वालों

अ॒श्वनीः

अङ्गुलयः  
(निघ० ११ सू० णामिति  
पूर्वं सवर्णद्विर्णवम्)

अङ्गुलियां

अ॒वा॒ताः

वातंगमन  
तद्रहिताः

गमन से रहित

व्र॒ता

व्रतानि  
(शैलीष)

व्रतों की

कृ० श०	श्वेतवर्णम् (भा० को०)	श्वेत रंग वाले को
रोहिणीषु	लोहितवर्णासु	लाल रंग वालियों में

संस्कृतार्थः ।

सुकर्मा पुत्रः शोभनं कर्माऽऽचरन् पुरातनं सख्यं बलेन धारतवान् (अस्ति) (हे इन्द्र!) (त्वम्) अपरिपन्ना स्वपिमध्ये परिष्ववं दुग्धं स्थापयसि (त्वम्) कृष्णवर्णासु लोहितवर्णासु (च) श्वेतवर्णम् (दुग्धस्थापयसि) ॥ ९ ॥

भावार्थः ।

श्रेष्ठ कर्म का आचरण करते हुए सुकर्मा पुत्र ने पुरानी मित्रता को बल से धारण किया है (हे इन्द्र) आप कच्चियों के बीच में भी पके हुए दूध को स्थापन करते हो आप काले (और) लाल रंग वालियों में श्वेत रंग के (दूध को स्थापन करते हो) ॥ ९ ॥

(१) "पुत्र" आश्विपुत्रियों के पुत्र इन्द्र ने पुरानी मित्रता को जो हमारे पितरों के और हमारे साथ उससे है बल से धारण किया हुआ है, इसी लिए हमारे शत्रु इस मित्रता को तोड़ नहीं सकते ॥

(२) यद्यपि गौप कच्ची है अर्थात् बाहर से ठंडी है परन्तु उन में से दूध पका हुआ अर्थात् कोला निकलता है ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुब्धन्वः ॥११॥११॥११॥११॥

स॒नात् स॒नी॒ळा अ॒वनी॑ र॒वा॒ता अ॒ता

र॒क्षन्ते॑ अ॒मृताः॑ स॒होभिः॑ । पु॒रु॒स॒ह-

स्त्रा॒ज॒न॒यो॒न॒प्र॒त॒नी दु॒र्व॒स्य॑न्ति॒ स्व॒सा-

रो॒ अ॒क्र॒याण॑स् ॥१०॥

स॒नात्	चिरकालात्	चिरकाल से
स॒नी॒ळाः	समाननिवास- स्थानाः	एक स्थान में रहने वालों
अ॒वनीः	अङ्गुल्यः (निघं० ११ सू० १० मिति पूर्व अक्षरपरीक्षणम्)	अङ्गुलियां
अ॒वा॒ताः	वातंगमनं	गमन से रहित
अ॒ता	तद्रहिताः वतानि (कोशोपः)	मैत्री को



र॒क्षन्ते	पालयन्ति (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	पालन करती हैं
अ॒त॒म्याः	दे॒व्यः	दे॒वियां
स॒हः५भिः	व॒लैः	व॒लों से
प॒रु	व॒ह॒नि (बोलों पर)	व॒हुत
स॒ह॒स्रा	सह॒स्राणि (॥)	ह॒जारों को
ज॒नयः	कु॒टु॒म्बि॒न्यः (भा०को०)	कु॒टु॒म्बवा॒लीं
न	इ॒व	जै॒से
प॒त्नीः	प॒त्न्यः (पूर्वस्यर्णदीर्घत्वम्)	स्त्रि॒यां
दु॒व॒स्यन्ति	परि॒चरन्ति (दु॒व॒स्य॒परि॒चरणे)	से॒वा करती हैं
स्व॒सारः	स्व॒सारः	व॒हनें
अ॒क्र॒या॒ण॒स्	अ॒ल॒ज्जि॒त॒ग॒तिम् (निघं०५१२)	न ल॒ज्जा॒से च॒लने वा॒ले को

संस्कृतार्थः ।

चिरकालात् समानं निवास स्थानां गमनरहिता  
 देव्योऽङ्गुलयः (निज-) बलैर्वहूनि सहस्राणि (यज्ञादि-)  
 व्रतानि पालयन्ति, (इमाः) स्वसारः कुटुम्बिन्यो  
 पत्न्य इवाऽलज्जितगतिं (स्वामिनमिन्द्रम्) परि-  
 चरन्ति ॥ १० ॥

भाषार्थः ।

चिरकाल से एक स्थान में रहनेवालीं गमन से  
 रहित देवी अंगुलियां (अपने) बलों से बहुत हजारों  
 (यज्ञआदि) व्रतों का पालन करती हैं (ये सारी) वहनें  
 कुटुम्बवाली स्त्रियों की न्याईं न लज्जा से चलने  
 वाले (अपने स्वामी इन्द्र की) सेवा करती हैं ॥ १०

(१) अंगुलियां गमन से रहित इसलिये हैं कि सदा हाथ में  
 रहती हैं हाथ को छोड़ कर कहीं नहीं जातीं ।

(२) जिस में पुंस्त्व की न्यूनता है, यह लज्जा से बिलम्ब है  
 पूर्ण पुंस्त्व से युक्त होने से इन्द्र अलज्जित गति हैं ।

(३) जिस प्रकार श्रद्धिणी स्त्रियां अपने पति की सेवा करती हैं  
 इसी प्रकार मनुष्यों की अंगुलियों सोम निबोधने आदि कर्म द्वारा  
 अपने स्वामी इन्द्र की सेवा करती हैं ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः १११११११११

सनायुव्रीनमसानव्यो अर्के वसूय-

कोम॒तयो॑दस्मदद्गुः । पति॑नप॒तनी॑-  
रु॒शती॑रु॒शन्त॑ स्पृ॒शन्ति॑ त॒त्वाश॑वसा-  
वन्म॒नीषाः । ११ ।

१. स॒नाऽयु॑वः	प्राचीनधर्म- मिच्छन्तः (धर्माप्यत्ययेनोत्थम)	प्राचीन धर्म की इच्छा करते हुए
न॒मसा॑	नमस्कारेण	नमस्कार के साथ
न॒व्यः	नवीनैः (सुणामिति विभक्ते सुः)	नवीनों से
अ॒कौः	स्तं त्रैः	स्तोत्रों से
व॒सुऽय॑वः	धनकामाः	धन की कामना वाले
म॒तयः॑	मेधाविनः (निघं० १।१५)	ऋषी,
द॒स्म-	= अद्भुत !	हे अद्भुत

द॒द्रुः	त्वरितवन्तः (मा०को०)	शीघ्रता से गए हैं
पति॑स्	पतिम्	पति को
न	इव	जैसे
प॒त्नीः	पत्न्यः (वाछन्स्तेति पूर्व- सवर्णदीर्घः)	परिण्यां
उ॒ग्र॒तीः	कामयमानाः (,,)	प्रेम से भरी हुई
उ॒ग्र॒न्त॑म्	कामयमानम्	कामना करते
स्पर्श॑न्ति	स्पर्शन्ति	हुए को स्पर्श करती हैं
त्वा	त्वाम्	तुझको
श॒व॒सा॒ऽव॒न्	हे बलवन् ! (मत्पर्यायभादेनिष्- प्रत्ययः)	हे बलवाले
स॒नी॒षाः	स्तुतयः (मा०को०)	स्तुतियां

संहृत्तार्थः ।

हे अद्भुत ! प्राचीनधर्ममिच्छन्तो धनकामा मेधा

विनो नवीनैः स्तोत्रैर्नमस्कारेण (त्वां प्रति) त्वरित-  
वन्तः, हे बलवन् ! (तत्कृताः) स्तुतयस्त्वां कामयमानं  
पतिं कामयमाना पत्न्य इव स्पृशन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे अद्भुत ! प्राचीन धर्मकी इच्छा करते हुए धन  
की कामनावाले ऋषी नए स्तोत्रों द्वारा नमस्कार  
के साथ (आपकी ओर) शीघ्रता से गए हैं हे बलवाले !  
(उनसे की हुई) स्तुतियां आप को ऐसे स्पर्श करती  
हैं जैसे कामना करते हुए पति को प्रेम से भरी हुई  
पत्नियां ॥ ११ ॥

(१) यद्यपि नए ऋषि नए स्तोत्रों द्वारा इन्द्र की स्तुति करते  
हैं, तथापि प्राचीन धर्म की इच्छा करने वाले होने से उन के साथ  
प्राचीन ऋषियों के भावों से विरक्त नहीं हैं ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥

स॒ना॒दे॒वत॒व॒रा॒यो॒गभ॑स्तौ न॒क्षी-  
य॑न्ते नो प॒दस्य॑न्ति द॒स्म। द्यु॒माँ॑ अ॒सि-  
क्र॑तु॒माँ इन्द्र॑ धीरः शि॒क्षा॑श्च॒चीव॑स्त-

वनःशचीभिः । १२ ।

सुनात्	चिरकालात्	चिरकाल से
एव	एव	ही
तव	तव	तेरे
रायः	धनानि	धन
गभस्तौ	हस्ते	हाथ में
न	न	नहीं
क्षीयन्ते	विनश्यन्ति	नाश होते हैं
न	न	नहीं
उप	उप +	—
दृश्यन्ति	उप + दृश्यन्ति, न्यूनतां- प्राप्नुवन्ति	कम होते हैं

दस्म	हे अद्भुत!	हे अद्भुत
द्युऽमान्	दीप्तिमान्	दीप्ति वाला
असि	असि	तू है
क्रतुऽमान्	ज्ञानयुक्तः	ज्ञानवान
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
धीरः	दृढनिश्चयः	दृढ़ निश्चयवाला
शिख	देहि (निघं० १।३०)	दो
शचीऽवः	हे बलवान्	हे बलवाले
तव	तव	तेरे
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई,
शचीभिः	बलैः	बलों से

सुखकार्यः

हे अद्भुत ! तव हस्ते चिरादेव (विद्यमानानि)

धनानि न विनश्यति न-<sup>(च)</sup> न्यूनतां प्राप्नुवन्ति,  
 हे इन्द्र ! <sup>(त्वम्)</sup> दीप्तिमान्, ज्ञानयुक्तो दृढनिश्चयः  
 (च)असि, हे बलवान् ! त्वदीयैर्वलैरस्मभ्यम् (बलम्)  
 देहि ॥ १२ ॥

मापार्थः ।

हे अद्भुत ! आप के हाथ में चिरकाल से (विद्य-  
 मान) धन न नाश होते हैं (और) न कम होते हैं हे इन्द्र !  
 आप दीप्तिवाले, ज्ञान से युक्त (और) दृढ़ निश्चय  
 वाले हैं, हे बलवान ! अपने बलों द्वारा हमारे ताई  
 (बल को) दीजिये ॥ १२ ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुब्जन्दः ॥ ११॥ ११॥ ११॥ ११॥

सुनायते गोतम इन्द्र नव्य मतक्षुद्

ब्रह्महरियो जनाय । सुनीथाय नः शव-  
 साननो धाः प्रातर्मक्षुधिया वसुर्जग-  
 म्यात् ॥ १३ ॥

सुनायते | सनातन इवाऽऽ- | सनातन के लिये  
 चरते



गो॒त॒मः	गो॒त॒म॒वं॒शी॒यः	गो॒त॒म॒ वं॒शी
इ॒न्द्र	हे इ॒न्द्र !	हे इ॒न्द्र !
न॒व्य॒म्	नू॒त॒न॒म्	न॒वी॒न को
अ॒त॒क्ष॒त्	र॒चि॒त॒वा॒न्	र॒चा है
ब्र॒ह्म	स्तो॒त्र॒म्	स्तो॒त्र को
ह॒रि॒ऽयो॒-	ह॒री, अ॒श्वो यो॒ज-	दो घो॒ड़ों को (रथ
ज॒ना॒य	य॒ति(रथे) तस्मै	में) जोड़॒ने वाले के
सु॒ऽनी॒था॒य	सु॒ष्टु ने॒त्रे	अ॒च्छे ने॒ता के लिये
नः	अ॒स्मा॒क॒म्	ह॒मा॒रे
श॒व॒सा॒न	हे व॒ल॒यन् !	हे व॒ल॒वा॒ले
नो॒धाः	नो॒धाः	नो॒धा ने

प्रातः	प्रातः	प्रातःकाल में
मच्छु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यानसे धनवाला
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! सनातनायाऽस्माकं सुष्ठुनेत्रे हृष्योर्यो-  
जयित्रे (च तुभ्यम्) गोतमवंशीयो नोधा नूतनं स्तोत्रं  
रचितवान् हे बलवान् ! ध्यानेन धनवान् (भवान्)  
शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! सनातन, हमारे अच्छे नेता(और)दोनों  
घोड़ों को जोड़ने वाले(आप के लिए) गोतमवंशी नोधा-  
ने नवीन स्तोत्र की रचा है हे बलवाले ! ध्यान से  
धन वाले (आप) शीघ्र प्रातःकाल में आवें ॥ १३ ॥

यद्यपि स्तोत्र गया है । परन्तु भाव यही है जो सनातन काल  
से प्राचीन नेता इन्द्र के लिए पूर्ण क्षयिया के मन में रहे हैं ।

इति द्वापण्डितमं सूक्तम् ॥

# कृ० सं० ३३-३४ अङ्गयोः शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१४२५	२०	लड )	लुड )	१४८१	८	मृणन्त	गृणन्त
१४३२	१६	गृष्टेप	गृष्टेपु	१४८२	१२	मृगो०	सृगो०
१४३३	४	इयति	इयति	१४८३	३	पुःसि	पःसि
१४३५	६	सृष्टत्	सृष्टत्	१४८४	७	प्राकय	प्रकाश
१४३५	५	स्थिप	स्थिपः	१४८४	१३	वचाप्री	वचाप्री
१४४५	१५	स्फुति	स्फुति	१४८५	१५	देवकी	देवकी
१४४६	४	(यस्य	(यस्य	१४८६	१०	धोवधियो	धोवधियो
१४४६	१५	(यसोऽपः)	(यसोऽलक्)	१४८६	२०	जमे	जमे
१४४९	११	हिरण्ययः	हिरण्यय	१४८५	१२	मृगय	मृगवे
१४५०	५	पृथिवी	पृथिवी	१४८७	१८	चिष्ट	चिष्ट
१४५०	११	लोपा-	लोपा-	१४८७	२०	लट्टो-	लट्टो-
१४५८	३	वज्रिन्	वज्रिन्	१४८८	१२	हेजाताना	हेजाताना
१४५८	५	चक्रतिय	चक्रतिप	१५००	१५	जघन्ना	जघन्ना
१४५८	७	चमज	चमजः	१५०१	११	पञ्चमीय	पञ्चमीय
१४५९	११	युवमानः	युवमानः	१५०४	८	पुरुषमीये	पुरुषमीये
१४६८	११	आयुष	आयुष	१५०४	१०	प्राप्तो	प्राप्तो
१४७४	८	ममह	ममह	१५०५	११	यह सत	यह सत
१४७८	२	प्रयसा	प्रयसा	१५०६	१२	प्रयय	प्रयय
				१५०८	१०	मान	मान
				१५१६	८	परम	परम

# विज्ञापन ।

इस अंक के साथ तीसरा साल पूरा होगया है—जिन स्वाध्याई ब्राह्मणों ने चौथे साल के लिए स्वाध्याय करने के लिए प्रतिज्ञा पत्र नहीं भेजे हैं वे कृपा पूर्वक शीघ्रता करें, जिससे उनकी नाम चौथे साल के रजिस्टरमें लिखे जावें—अंक १ से १० तक दूसरी बार छप गए हैं जिनकी पुस्तक अपूर्ण हो वे पत्र लिखें; तो जो अंक न्यून है वे भेज दिये जावेंगे ॥

मुन्शीजयराम,

मैनेजर ऋग्वेद

संहिता, मलतान